आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य

SATIRE IN MODERN HINDI POETRY
[1930-1960]

The Thesis Submitted to
THE UNIVERSITY OF COCHIN
For the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

J. RAMACHANDRAN NAIR, M. A.

Under the supervision
of

DR. N. RAMAN NAIR
M. A. (Hindi, English & Malayalam) Ph. D.
READER IN HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN - 22

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
Cochin - 22

1978

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carriedout by Shri J. Ramachandran Nair, under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. N. RAMAN NAIR
(M.A. Hindi, M.A. Eng.&
M.A. Mal.) Ph.D.
Reader, Dept. of Hindi.

University of Cochin,
Cochin-682022
16, October, 1978

ACKNOWLEDGEMENT

The work was carried out in the Department of Hindi, University of Cochin, Cochin-22 during the tenure of scholarship awarded to me by the University Grants Commission. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin and the University Grants Commission for the kind help and encouragement.

J. RAMACHANDRAN NAIR
U.G.C. Fellow
University of Cochin.

Cochin-682022
16, October, 1978

प्राक्कथन

सन् "1930 से 1960 तक की हिन्दी कविता में व्यंग्य" विषय की अपनी मौलिकता तथा निजी महत्ता है। विपुल हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विषय पर शोध नितांत नूतन तो नहीं है किन्तु चर्चित चर्वण कम ही है। हिन्दी में हास्य एवं व्यंग्य के बीच की विभाजक रेखा कम ही खींची गयी थी। अतः हिन्दी हास्य पर शोध करते करते शोध कर्ताओं ने हिन्दी व्यंग्य पर भी थोडा बहुत विचार किया है। डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी का शोध प्रबन्ध "हिन्दी साहित्य में हास्य रस" और डा॰ शान्तारानी का हिन्दी नाटकों में हास्य तत्व" इस के प्रमाण स्वरूप उपस्थित किए जा सकते हैं। जी॰पी॰ श्रीवास्तव का "हास्य रस" डा॰एस॰पी॰ खत्री रचित "हास्य की रूप रेखा" प्रेमनारायण दीक्षित और त्रिलोकी नारायण दीक्षित कृत "हास्य के सिद्धांत और आधुनिक हिन्दी साहित्य" जैसे आलोचनात्मक ग्रन्थों में भी हिन्दी साहित्य में हास्य विषयक चर्चा हुई है। अन्य भी कतिपय ग्रन्थों में प्रसंगवश तथा भूमिकाओं में हास्य-व्यंग्य संबन्धी उल्लेख मिलते हैं। "हिन्दी नवलेखन" {डा॰रामस्वरूप चतुर्वेदी} "कविता के नए प्रतिमान" {डा॰ नामवर सिंह} निराला की कुकुरमुत्ता के नए संस्करण की भूमिका {दूधनाथ सिंह} आदि इस के प्रस्पष्ट प्रमाण है। उपर्युक्त सामग्री पर समग्रतः विचार करने पर ज्ञात होगा कि हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विषय के सर्वांगीण अध्ययन से युक्त शोध या आलोचना ग्रन्थ हिन्दी में नहीं के बराबर है। समस्त हिन्दी कविता में व्यंग्य पर शोध भी नहीं हुआ है। डा॰ शेरजंग गर्ग ने इस अभाव की एक हद तक पूर्ति करने का सफल प्रयास अपने शोध ग्रन्थ

"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य" में किया है । इस में भी स्वातंत्र्य पूर्व कालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य केवल पृष्ठभूमि के रूप में ही उपस्थित.है ।

सचमुच हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विषय बृहत है । इस कारण समूचे हिन्दी साहित्य के विषय पर शोध करने पर गहराई में पैठ कर अध्ययन करने की गुंजाइश अधिक नहीं रहेगी । इसी कारण से डॉ॰ गर्ग ने इस विषय पर आंशिक अध्ययन किया होगा ।

हिन्दी कविता के लंबे इतिहास के अध्ययन से यह विदित हो जाता है कि हिन्दी कविता के आधुनिक काल की भूमि व्यंग्य केलिए सर्वदा उर्वरा रही है । इस काल में हिन्दी व्यंग्य अपने परिपुष्ट अवस्था में पहुँच गया । द्विवेदी युगीन एवं छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी युगों की हिन्दी कविता में व्यंग्य अपनी चरमसीमा पर रहा । तत्कालीन व्यंग्य का अध्ययन अलग तौर पर से होना अनिवार्य जंचता है । प्रस्तुत विषय की मौलिकता एवं अनिवार्यता असंदिग्ध है । व्यंग्य का शास्त्रीय अध्ययन, सन् 1930 से 1960 तक की हिन्दी कविता में विद्यमान पुष्कल व्यंग्य का अध्ययन ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य 1930-60" में संपन्न हुआ है ।

सात अध्यायों में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध बना है । प्रथम अध्याय प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की भूमिका के तौर पर बना है । प्रस्तुत अध्याय में व्यंग्य का शास्त्रीय अध्ययन किया गया है । इस सिलसिले में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की व्यंग्य संबन्धी परिभाषा का मैंने विवेचन किया है । भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित तद्विषयक परिभाषाओं का भी मंथन विवेचन और विश्लेषण मैं ने किया है

"सली" "ए. निकोल", "ड्राइडन", "मेरिडिथ" जैसे पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित ह्यूमर, विट, सटायर, ऐरनी आदि के समरूप भारतीय काव्य शास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट हास्य-व्यंग्य - वक्रोक्ति प्रहसन आदि में पाया । व्यंग्य विषय में पाश्चात्य एवं भारतीय पंडितों के मन्तव्यों का पृथक अध्ययन तथा तुलना करने का कार्य भी इस अध्याय में हुआ है । अन्तत: इस अध्याय में व्यंग्य के गुण दोष एवं उसकी उपादेयता पर भी विचार हुआ है । प्रस्तुत अध्याय में परिभाषाओं सहित व्यंग्य के विविध रूपों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास दिया गया है ।

द्वितीय अध्याय में व्यंग्य के आधार पर विचार हुआ है । सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, विसंगतियाँ जैसे प्रबुद्ध कवियों के लिए व्यंग्य का आधार बनती है, इस का विशद विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है । सामाजिक, धार्मिक व्यंग्य में भक्तिकालीन कवि महात्मा कबीर दास के प्रस्पष्ट प्रभाव का भी इस प्रसंग में विवेचन हुआ है । व्यंग्य के विविध आधारों को खोज निकालने के हेतु तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का विचिन्तन जो कि अनिवार्य है उसपर भी विचार हुआ है ।

तृतीय अध्याय में आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कविता के व्यंग्य के प्रसंगों पर विचार किया गया है । यह सन् 1930 तक की कविता में व्यंग्य के अध्ययन केलिए पृष्ठभूमि का काम करता है । आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल हिन्दी कविता में व्यंग्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है । प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक काल तक की हिन्दी कविता में उपलब्ध व्यंग्य का सिलसिलाबद्ध विवरण दिया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य की प्रमुखता पर विचार हुआ है। भारतेन्दुकालीन विविध कवियों की कविता में प्राप्त व्यंग्य भण्डार इस अध्याय में खोला गया है। द्विवेदी युग तथा अनन्तर कालीन कवियों में जिन्होंने व्यंग्य को अधिकाधिक प्रश्रय दिया है उन पर विस्तृत ढंग से विचार किया गया है। सामाजिक कुरीतियों एवं विसंगतियों के विरुद्ध व्यंग्य रूपी औजार का प्रयोग आधुनिक कालीन कवियों ने जिस प्रकार अपनी कविता में किया है; इस का विवेचन भी इस अध्याय में हुआ है।

पंचम अध्याय में मात्र 30 से 60 तक की हिन्दी कविता में व्यंग्य की गहराई से अध्ययन हुआ है। इस समय सीमा के अन्दर प्रकाशित प्रबन्ध काव्यों - महाकाव्यों तथा खण्ड काव्यों, गीतकाव्यों, छोटी-छोटी कविताओं में उपलब्ध व्यंग्य का सर्वांगीण अध्ययन यहाँ संपन्न हुआ है।

छठे अध्याय में सन् 1930 से '60 की प्रमुख व्यंग्य कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन तैयार किया गया है। पूर्व छायावादी हिन्दी कवि, छायावादी कवि, प्रगति, प्रयोगवादी कवियों की व्यंग्य प्रधान कृतियों का समग्र अध्ययन एवं उनमें अभिव्यक्त व्यंग्य का विचिन्तन इस अध्याय में हुआ है। इस अध्याय में फुटकर कवियों द्वारा लिखित व्यंग्य रचनाओं का भी अध्ययन हुआ है। यद्यपि इन रचनाओं में व्यंग्य की मात्रा उतनी अधिक नहीं है तो भी उन्हें अनुपेक्षणीय मानकर उनपर विचार किया गया है। नए कवियों की व्यंग्य रचनाओं का विश्लेषण भी इसी अध्याय में हुआ है।

सप्तम अध्याय निष्कर्ष रूप में बना है । इस में आधुनिक कवियों के व्यंग्य के लक्ष्य, उद्देश्य एवं उपादेयता पर गहन अध्ययन हुआ है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, विसंगतियों के निर्मूलन में किस हद तक व्यंग्य काम कर सकता है तथा इस केलिए जहाँ तक व्यंग्यकार शक्तिशाली रह सकता है तत्संबन्धी विचार भी इस अध्याय में हुआ है । सामाजिक, असंगतियों के विरुद्ध व्यंग्यबाण लगाए हैं, उनका अध्ययन भी इस अध्याय में हुआ है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सामग्री संकलन केलिए अहिन्दी भाषी क्षेत्र के मैंने केरल के विविध विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को अपर्याप्त पाया । अतः उत्तर भारत के विविध विश्वविद्यालयों - दिल्ली, लखनाऊ, इलाहाबाद, आग्रा, साहित्य सम्मेलन, विश्वभारती - के पुस्तकालयों की पुस्तकों का मैं ने भरसक उपयोग किया और आवश्यक सामग्रियों का संचयन किया । इस केलिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मुझे जो आर्थिक सहायता दी, एतदर्थ मैं उनके अधिकारियों का आभारी हूँ । उत्तर भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्रकाण्ड पंडितों, प्रोफ़सरों ने साक्षात्कार का मौका प्रदान करके तथा आवश्यक निर्देश देकर शोधपूर्ति केलिए आवश्यक सहायता दे दी है । उनमें विशेषतः आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ॰ रमानाथ त्रिपाठी, डॉ॰तोमर, डॉ॰प्रतापनारायण टण्डन, प्रो॰ विश्वंभर अरुण, डॉ॰ विजेन्द्रनारायण सिंह, डॉ॰रामकुमार वर्मा तथा अन्य पंडितों के प्रति इस अवसर पर मेरा हृदय कृतज्ञता से भरा है । सुमित्रानंदन पंत, बरसाने लाल चतुर्वेदी, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, बेढब बनारसी, डॉ॰ उदयभानुसिंह, डॉ॰ लक्ष्मी सागर वारष्णेय, डॉ॰ सरला शुक्ल, डॉ॰ शिवकुमार मिश्र, डॉ॰ शेरजंग गर्ग, जैसे हिन्दी के प्रमुख कवियों, व्यंग्यकारों, लेखकों से भी बहुमूल्य उपदेश पाने का जो असुलभ अवसर का अधिकारी मैं हो सका, उनको मेरा सादर प्रणाम समर्पित है ।

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं डीन डॉ॰ राममूर्ति त्रिपाठी डी॰लिट् का मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूं, जिके आशीष सदैव मुझे प्रेरणास्त्रोत रहा है ।

कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर तथा डीन - कला संकाय डॉ॰ एन॰ रामन नायर को अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने में मेरी वाणी असमर्थ है जिन के मार्गदर्शन में मैं ने अपना शोध कार्य पूरा किया है । इस शोध प्रबन्ध के इस रूप में आने का एक मात्र श्रेय उनको है । मेरे परम पूज्य पिताजी राष्ट्रभाषा प्रेमी एवं हिन्दी साहित्य सेवी हिन्दी प्रोफसर आर॰ जनार्दनन पिल्ले की निरन्तर प्रेरणा भी मेरे शोध कार्य के मूल में कार्य करती रही है । उनके प्रति भी सादर अंजली है । अपने सामग्री संकलन के लिए मैं ने जिन जिन ग्रन्थकारों के ग्रन्थों की सामग्री का उपयोग किया उनके प्रति भी मैं आभारी हूं ।

कोचीन - 682022

जे॰ रामचन्द्रन नायर
यू॰जी॰सी॰शोध छात्र
कोचीन विश्वविद्यालय

अ नु क्र म

पृष्ठ

प्रथम अध्याय ...

भूमिका - हास्य रस तथा उसके विविध रूप - संस्कृत आचार्यों के अनुसार हास्य तैत्तरीय उपनिषद् - नाट्यशास्त्रम् - काव्य दर्पण - रसगंगाधर - आदि के आधार पर हास्य - रीतिकालीन आचार्यों के आधार पर हास्य - हास्य के भेद - परिभाषाएं पाश्चात्य पंडितों के अनुसार हास्य के विविध भेद - विट {वाक्वैदग्ध्य} आइरनी {वक्रोक्ति} पारडी - फार्स {प्रहसन} - सटायर {व्यंग्य} - हास्य तथा व्यंग्य - दोनों में अन्तर - भारतीय काव्यशास्त्रियों के अनुसार व्यंग्य - उसकी परिभाषा - पाश्चात्य पण्डितों के अनुसार व्यंग्य - परिभाषाएं - काव्य में व्यंग्य का स्थान व्यंग्य का काव्यशास्त्रीय आधार - विभिन्न रसों में हास्य का स्थान - व्यंग्य के आधार- णीकरण की क्षमता - व्यंग्य के प्रकार - प्रेरणा के आधार पर - वैयक्तिक, आत्मव्यंग्य, परस्थ व्यंग्य - निर्वैयक्तिक - राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक, धार्मिक जैसे भेद - प्रभाव के आधार पर - हास्ययुक्त, यथार्थ युक्त एवं करुणव्यंग्य - काव्य में व्यंग्य का स्थान ।

पृष्ठ

द्वितीय अध्याय ...

व्यंग्य का आधार - व्यंग्य के मूल में विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक परिवेशों का योगदान - सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध व्यंग्य - परंपरागत रुढ़ियों के विरुद्ध व्यंग्य - सामाजिक व्यंग्य - राजनीतिक व्यंग्य - साहित्यिक व्यंग्य - व्यंग्य का मनोवैज्ञानिक आधार ।

तृतीय अध्याय ...

आदिकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य - वैदिक साहित्य में व्यंग्य का उल्लेख रामायण, महाभारत जैसे पौराणिक ग्रंथों में व्यंग्य का पुट - आदिकालीन काव्यों में व्यंग्य - रासो काव्यों में व्यंग्य - पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो जैसे रासो ग्रंथों में व्यंग्य, भक्तिकालीन काव्यों में व्यंग्य- कबीर - मध्यकाल के सशक्त व्यंग्यकार - कबीर का व्यंग्य - तुलसी, सुर जैसे कवियों की कृतियों में व्यंग्य - रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका, जैसी तुलसी कृत रचनाओं में व्यंग्य - रीतिकालीन कवियों के व्यंग्य - केशवदास, बिहारी, घनानन्द जैसे कवियों का व्यंग्य - आधुनिक व्यंग्य की पृष्ठभूमि के रूप में आदिकालीन व्यंग्य ।

पृष्ठ

चतुर्थ अध्याय ...

आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य की प्रधानता - सन् 1930 तक की हिन्दी कविता में व्यंग्य - प्रमुख व्यंग्यकार कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायणमिश्र, बालमुकुन्दगुप्त, शिवनाथ शर्मा, नाथूरामशंकरशर्मा, ईश्वरीप्रसाद वर्मा, मैथिलीशरणगुप्त, सियारामशरण गुप्त - रामनरेश त्रिपाठी - अन्य कवि - आधुनिक काल - भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग के कवियों द्वारा प्रयुक्त व्यंग्य - तत्कालीन व्यंग्य का योगदान ।

पंचम अध्याय ...

आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय अध्ययन - काव्य की विविध विधाओं में व्यंग्य - प्रबन्धकाव्यों में व्यंग्य - महाकाव्यों में व्यंग्य - प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, रामचरितचिंतामणि, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, कृष्णायन, आर्यावर्त, जौहर, साकेत संत में व्यंग्य - खण्डकाव्यों में व्यंग्य - जयद्रथवध, पंचवटी, मिलन, पथिक, स्वप्न, आत्मोत्सर्ग, उन्मुक्त, गंगावतरण, उद्धवशतक, प्रेमपथिक, ग्रंथी तुलसीदास जैसे खण्डकाव्यों में व्यंग्य

मुक्तक काव्यों में व्यंग्य - हरिऔध, माखन
लाल चतुर्वेदी, बालकृष्णशर्मा नवीन, जैसे
कवियों की मुक्तक कृतियों में व्यंग्य -
प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी जैसे
छायावादी कवियों की मुक्तक रचनाओं में
व्यंग्य - अज्ञेय, भवानी - प्रसाद मिश्र, जैसे
प्रयोगवादी कवियोंकी मुक्तक कृतियों में
व्यंग्य, दिनकर, नागार्जुन, बच्चन, शिव
मंगलसिंह सुमन की कृतियों में व्यंग्य -
परंपरावादी, स्वच्छन्दतावादी, छायावादी,
प्रगतिवादी, प्रयोगवादी या नये कवियों की
कृतियों में व्यंग्य - कविता के मूलस्वर के रूप
में व्यंग्य

छठा अध्याय ...

आधुनिक हिन्दी कविता की
मुख्य व्यंग्य कृतियों का आलोचनात्मक
अध्ययन - प्रमुख व्यंग्यकार तथा व्यंग्यकृतियाँ
काकाहाथ रसी, बेढब बनारसी, छायावादी
कवियों की कृतियों में व्यंग्य - प्रमुख छाया-
वादी व्यंग्यकार - महाप्राण निराला,
जयशंकर प्रसाद, रामधारीसिंह दिनकर,
बच्चन, उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन, रामविलास
शर्मा तथा अन्य कवियों की कृतियों में व्यंग्य

प्रयोगवादी कवियों में व्यंग्य - तारसप्तक के कवि - अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, गिरजा - कुमार माथुर जैसे कवियों में व्यंग्य - नये कवि तथा उनके व्यंग्य - धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर - दयाल सक्सेना की कविताओं में व्यंग्य ।

सप्तम अध्याय ...

व्यंग्य के लक्ष्य, उद्देश्य तथा उपसंहार - साहित्य में व्यंग्य का स्थान व्यंग्य की लक्ष्य - व्यंग्य का प्रयोजन - व्यंग्यकार की जीवन दृष्टि - व्यंग्य के प्रकार - सन् 30 से 60 तक के व्यंग्य की अनुपम उपलब्धियाँ - व्यंग्य कृतियों में कृतिकारों के व्यक्तित्व की छाप- काव्य-शिल्प रचना में क्रांति - व्यंग्यकारों का लक्ष्य - सुधारवादी दृष्टिकोण तथा मानव मंगल की भावना ।

88888888

पहला अध्याय

भूमिका

हास्य रस तथा उसके विविध रूप

भारतीय काव्यशास्त्र में रस की बड़ी महत्ता है । काव्य के तो ये प्राण हैं । काव्याध्ययन का परमलक्ष्य ही रसास्वाद है । रस का शास्त्रीय एवं सांगोपांग प्रतिपादन करनेवाला प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ भरतमुनि का नाट्शास्त्र है । वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में तो पहले ही व्यापक अर्थ में रस शब्द प्रयुक्त हुआ था । "रसो वै स:"[1] /वह {ईश्वर} रस-रूप है/ - प्रसिद्ध उपनिषद् वाक्य इस का उत्तम उदाहरण है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अपने पूर्व रस सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करनेवाले पण्डितों का उल्लेख किया है । आप के अनुसार द्रुहिण नामक किसी महात्म ने पहले ही आठ रसों का वर्णन प्रस्तुत किया था[2] । भरत मुनि ने "नाट्यशास्त्र" में आठ रसों का उल्लेख किया है तथा रस को नाटक का अनिवार्य अंग ठहराया है :-

"श्रृंगार हास्य करुणारौद्रवीर भयानका: ।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा:स्मृता:"[3] ।।

---

1. तैत्तरीय उपनिषद् 2.7
2. "एतेह्यष्टौ रसा: प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना" -
   -- नाट्शास्त्रम् अध्याय 6 श्लोक: 97 {चौखंभा संस्कृत सीरीज़ 1972}
3. नाट्शास्त्रम् - अध्याय 6 - श्लोक 16 {

"न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते"[1] ।

भरतमुनि ने चार मूल रसों से आठ रसों का उद्भव स्वीकार किया है

शृङ्गारादि भवेद्हास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद् भुतोत्पत्ति बीभत्साच्च भयानकः ।।[2]

"शृङ्गारादिभवेद्हास्यो" - के अनुसार शृंगार से हास्य की उत्पत्ति होती है । नाट्यशास्त्रकार के अनुसार शृंगार का अनुकरण करने की प्रवृत्ति (अनुकृति) हास्य कही जाती है -

"शृङ्गारानुकृतिर्या तु सं हास्यस्तु प्रकीर्तितः"[3] ।

शृंगार से हास्य की उत्पत्ति होती है - भरत मुनि के इस विचार का विरोध होना स्वाभाविक ही है । भरतमुनि ने सचमुच नाट्यरसों का वर्णन किया है । भारतीय काव्यशास्त्र में मुख्यतया नव रसों की गणना है । ये नौ ही रस स्वतंत्र अस्तित्ववाले हैं । हर एक का स्थायी भाव अलग - अलग है तथा हर एक का स्थायीभाव परिपुष्ट होकर अलग-अलग रसरूप को धारण कर लेता है । इस दशा में एक रस से दूसरे रस का उद्भव मान लेना समीचीन नहीं हैं । अतः शृंगार से हास्य रस की उत्पत्ति मान्य नहीं है । विद्यावाचस्पति पण्डित रामदहिन मिश्र जी का मन्तव्य यहाँ उल्लेखनीय है - "···· किन्तु हास्य की विस्तृत सीमाक्षेत्र को देखकर उसे केवल शृंगार में ही सीमित नहीं किया जा सकता"[4] ।

1· नाट्यशास्त्रम् - अध्याय 6, कारिका 31 का परवर्ती गद्यांश ।

2· नाट्यशास्त्रम् - अध्याय 6, श्लोक 40

3· वही " 41

4· काव्यदर्पण - (चतुर्थ संस्करण) पृ· 198-199

भरतमुनि के अनुसार विपरीत स्थान पर अलंकारों के धारण करने, विकृत व्यवहार, वाक्य तथा वेष के प्रदर्शन करने और विकृत अंगों {विकारों} और चेष्टाओं द्वारा हंसाने पर हास्य कहलाता है[1]। तथा "इसलिए कि वह अपने विकृत व्यवहार, वाक्य, अंगों की क्रियाओं तथा विकृत वेष के द्वारा मनुष्यों को हंसता है, अतः यह हास्य कहा जाता है"[2]।

सचमुच जहाँ विकृत वेष भूषा, रूप, वाणी आदि के देखने - सुनने से हास नामक भाव परिपुष्ट हो जाता है वहाँ हास्य रस होता है।

हास्य के प्रकार -

भरत मुनि के अनुसार हास्य के दो भेद होते हैं -
{1} आत्मस्थ {2} परस्थ।

"द्विविधश्चायमात्मस्थः परस्थश्च। यदा स्वयं हसति तदात्मस्थः। यदा तु परं हास्यति तदा परस्थः"[3]।।

स्वयं हंसता है तो वह आत्मस्थ तथा दूसरे को हंसाता है तो वह परस्थ है। इसमें दूसरा मत भी है। हास्य के विषय को देखने से जो हास्य होता है वह आत्मस्थ तथा दूसरों को हंसता देखकर जो हास्य होता है वह परस्थ है[4]।

---

1. विपरीतालङ्कारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च।
   विकृतैरङ्ग विकारैर्हसतीति रसःस्मृतो हास्यः।।
   - नाट्यशास्त्रम् अध्याय 6 - श्लोक 50 {चौ॰सं॰सी॰ 1972 - पृ॰319}
2. विकृताचारैर्वाक्यैरङ्ग विकारैश्च विकृतवेषैश्च।
   हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्यः।।
   नाट्यशास्त्रम् 6, 51 पृ॰319
3. नाट्यशास्त्रम् - चौ॰सं॰सी॰ 1972 - पृ॰316
4. आत्मस्थो द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षणमात्रतः। हसन्तमपरं दृष्टवा विभावश्चोपजायते। यो/सौ हास्यरसः तज्ञः परजुस्थः परिकीर्तितः"
   - रसगंगाधर - पृ॰131, अभिनवगुप्त

आश्रय के प्रकृति भेद के आधार पर भरतमुनि ने हास्य के फिर छः भेद किये हैं :- §1§ स्मित §2§ हसित §3§ विहसित §4§ उपहसित §5§ अपहसित §6§ अतिहसित ।

आपने उत्तम प्रकृति में स्मित तथा हसित, मध्यम प्रकृति में विहसित और उपहसित तथा अधम प्रकृति में अपहसित तथा अतिहसित को माना है । हास्य जब कम हो तो स्मित कहा जाता है, जब बढ़ जाता है तो हसित कहा जाता है । उससे भी अधिक बढ़े तो उसे विहसित कहते हैं, उसकी मात्रा और बढ़ जाय तो अपहसित तथा इससे भी अधिक हो जाने पर अतिहसित कहलाता है ।

स्मित :-

जिस हास्य में कपोल थोड़ा विकसित हो जाता है सौष्ठवयुक्त कटाक्ष हो, तथा दान्त न दिखाई दे, वह स्मित कहा जाता है ।

हसित :-

मुँह एवं आँखें खिल उठे, कपोल अधिक विकसित हो जाय, दान्त थोड़ा-थोड़ा दिखाई दे, वह हसित है ।

विहसित :-

इस प्रकार के हास्य में आँख और कपोल संकुचित हो जाते हैं, मुख लाल-लाल हो जाता है तथा ही - ही - ही की मधुर ध्वनि भी निकलती है ।

उपहसित :-

जिस हास्य में नासिका फूल उठे, आँखें तिरछी हो जावें, अंग व सिर झुक जाय, उसे उपहसित कहते हैं ।

---

1. नाट्यशास्त्रम् - अध्याय ", कारिका 31 का परवर्ती गद्यांश ।

अपहसित :-

इस प्रकार के हास्य में असमय का हंसना, हंसते समय आँखों में आँसू का आ जाना तथा कन्धे एवं केश का हिलना होता है ।

अतिहंसित :-

जिस हास्य में आँखों में आँसू आ जावे, जिस में पसलियाँ हाथ से दबानी पड़े, वैसा अत्यन्त वेगपूर्ण और कर्णकटु ध्वनि निकालने वाला हास्य अतिहसित है । - "ये सभी भेद आत्मस्थ और परस्थ दोनों प्रकार के हास्य रूपों में होते हैं । इस तरह सब मिलाकर हास्य के बारह भेद हुए"[1] । डॉ॰ रामकुमारवर्मा ने भी हास्य के सभी प्रकारों को मिश्रित करके लिखा है - "वस्तुत: अपने प्रभाव की दृष्टि से हास्य तीन प्रकार का माना गया - उत्तम, मध्यम, एवं अधम । इन तीनों प्रकारों में प्रत्येक के दो - दो भेद हैं । उत्तम के भेद हैं स्मित और हसित, मध्यम के भेद हैं विहसित और उपहसित तथा अधम के भेद हैं - अपहसित और अतिहसित । ये प्रत्येक भेद आत्मस्थ और परस्थ हो सकते हैं"[2] ।

इस प्रकार हास्य या हंसने की क्रिया के निम्नलिखित बारह भेद हो सकते हैं । यथा :-

- हास्य
  - उत्तम
    - स्मित
      - आत्मस्थ
      - परस्थ
    - हसित
      - आत्मस्थ
      - परस्थ
  - मध्यम
    - विहसित
      - आत्मस्थ
      - परस्थ
    - उपहसित
      - आत्मस्थ
      - परस्थ
  - अधम
    - अपहसित
      - आत्मस्थ
      - परस्थ
    - अतिहसित
      - आत्मस्थ
      - परस्थ

---

1. रस सिद्धांत - डॉ॰नगेन्द्र {नेशनल पब्लिशिंग हाउस} पृ॰249 - 1969
2. दृश्य काव्य में हास्य तत्व - डॉ॰ रामकुमार वर्मा - आलोचना जनवरी 1965 - पृ॰ 64

भरतमुनि के बाद के संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने हास्य के अधिक भेद न माने हैं। -. "किन्तु श्रृंगार की भांति हास्य के भी अभिनव की दृष्टि से तीन अतिरिक्त भेद होते हैं - वचनात्मक, वेषात्मक और क्रियात्मक। सौभाग्य से हास्य भेदों का विस्तार और आगे नहीं हुआ। धनंजय और भानुदत्त आदि को छोड़ अधिकांश विद्वानों ने तो आत्मस्थ और परस्थ भेदों का भी उल्लेख नहीं किया - अग्निपुराणकार ने अपहसित और अतिहसित को भी अस्वीकृत कर दिया है"[1]।

रीतिकाल के काव्यशास्त्री आचार्य केशवदास ने हास्य के चार भेद माने हैं[2] -

हास्य रस

मन्दहास | कलहास | परिहास | अतिहास

उन्होंने मंदहास के बारे में लिखा है -

> विगसहि नयन, कपोल कछु दसन-दसन के बास।
> मंदहास तासों कहै कोविद केसवदास[3]।

अर्थात् मंदहास में दांत, कपोल तथा नेत्र विकसित दिखाई पड़ता है। यहां आचार्य केशवदास ने रसगंगाधर के हसित एवं स्मित हास्य को समेट लिया है। इसलिए रसगंगाधर के अनुसार विस्तृत व्याख्या ये समा नहीं सके।

---

1. रस-सिद्धान्त - डॉ. नगेन्द्र - पृ.249
2. मन्दहास कलहास पुनि, कहि केसव अतिहास।
   कोविद कवि बरनत सबै, अरु चौथो परिहास ।।
   - रसिकप्रिया {प्रियाप्रसाद तिलक} टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
   चतुर्थ प्रभाव, पृ.255
3. रसिक प्रिया का प्रिया प्रसाद तिलक - टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
   चतुर्थ प्रभाव - पृ.255

जहे सुनियो कल ध्वनि कछु कोमल विमल विलास।
केसव तन मन मोहिए बरनहु कवि कलहास[1]।

कलहास में कोमल ध्वनि शरीर एवं मन को मोहित कर लेती है। यह भी रस गंगाधर के अनुसार विहसित हास्य से बिलकुल मिलता है।

जहाँ परिजन सब हँसि उठै, तजि दंपति की कानि।
केवल कौन हूँ बुद्धिबल सो परिहास बखानि[2]।

यहाँ नायिका की प्रीति परिजनों के परिहास का कारण बन जाती है। ऐसे परिहास का वर्णन बुद्धिबल भी नहीं कर सकता है।

जहाँ हसहि निरसंक ह्वै, प्रगटहिं सुख मुख वास।
आधे-आधे बरन पर उपजि परत अतिहास[3]।

अतिहास में निःसन्देह हंसने से मुख की नैसर्गिक सुगन्ध निकलती है। एवं इस सन्दर्भ में अस्फुट शब्द भी निकलता है। यह भी विहसित हास्य से मिलता जुलता है। आचार्य केशवदास ने करीब उपहसित, अपहसित एवं अतिहसित हास्य को छोड़ कर हास्य को चार भागों में विभक्त किया। उक्त तीनों भावों को कहीं समेटने का प्रयत्न भी इन्होंने नहीं किया है। इसलिए रसगंगाधर के सन्दर्भ में आचार्य केशवदास की व्याख्या बिलकुल कमज़ोर है।

---

1. रसिकप्रिया का प्रिया प्रसाद तिलक - टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
   चतुर्थ प्रभाव - पृ.258
2. वही - पृ.262
3. वही - पृ.260

हास्य रस के लक्षण पर दृष्टिपात करते हुए आचार्य केशवदास ने लिखा है -

"नयन नयन कछु करत जब, मन को मोद उदोत ।
चतुर चित पहिचानियो, तहाँ हास्य रस होत ।[1]

अर्थात् नेत्रों एवं शब्दों को कुछ करने से जब मन में प्रसन्नता का उदय होता है वहाँ हास्य रस होता है ।

इस संदर्भ में रसगंगाधर की व्याख्या काफी विस्तृत है । उसमें हास्य की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है -

"वागङ्गादि विकार दर्शन जन्मा विकासाख्यो हास:"[2] ।

अर्थात् दूसरों के अङ्ग - वचन - वेष एवं भूषण में अन्यथा भाव या गड़बड़ी के दर्शन से कहीं कहीं श्रवण से भी उत्पन्न होनेवाली विकास नामक चित्तवृत्ति "हास" कहलाती है । असंगत बात भी कभी कभी हास्यास्पद है ।

हास्य रस का स्थाई भाव हास है । सहृदय दर्शक विभिन्न भावाभिनयों से व्यंजित एवं वाणी, अंङ्ग, सत्व [तीव्र तल्लीनता] से युक्त स्थाई भाव का आस्वादन करते हैं ।

"नाट्यशास्त्र" में हास्य का देव "प्रमथ" [शंकर का गण] कहा है[3] ।

---

1. रसिकप्रिया का प्रिया प्रसाद तिलक - टीकाकार विश्वनाथप्रसाद मिश्र चतुर्थ प्रभाव - पृ.265
2. रस गंगाधर - हिन्दी व्याख्या श्री मदन मोहन झा - पृ.133
3. "हास्य: प्रमथ दैवत" नाट्यशास्त्र अध्याय 5, पृ.44

नाट्यशास्त्र के आधार पर हास्य रस निम्न पुरुषों एवं स्त्रियों में अधिक मात्रा में दिखाई देता है ।

"स्त्री नीच प्रकृतावेष भूयिष्ठं दृश्यते रसः" [1]

संस्कृत के साहित्याचार्यों ने हास्य रस का विवेचन पर्याप्त मात्रा में किया है । भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने हास्य रस के वस्तु पक्ष पर ‖विषय-पक्ष‖ ही अधिक ध्यान दिया । पाश्चात्य समीक्षकों ने "हास्य रस" के व्यंजना पक्ष पर भी अपना ध्यान खींच लिया । हास्य रस के व्यंजना पक्ष पर ज़ोर देने वाले पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों ने उसके पांच प्रमुख भेद माने हैं - हास्य ‖Humour ‖ वाग्वेदग्ध्य ‖Wit‖ व्यंग्य ‖Satire ‖ वक्रोक्ति ‖Irony ‖ प्रहसन ‖ Farce ‖
पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों के आधार पर ह्यूमर आदि हास्य के विविध भेदों का विवरण देना यहां वांछनीय है -

हास्य ‖ Humour ‖

यही हास्य का सर्वोत्तम रूप माना जाता है । भारतीयों के "स्मित" ह्यूमर से बिलकुल मिलता जुलता रूप है । हास्य एक तरल मानवीय प्रवृत्ति है; शायद इसलिए उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं मिलती है । हास्य की प्रकृति का निर्माण संयम, सहानुभूति, चिन्तन एवं करुणा - इन चारों गुणों द्वारा संपन्न है । ए॰ निकाल लिखते हैं कि

---

1. नाट्यशास्त्र - अध्याय - 6, श्लोक 51

"स्मित केलिए समझदारी आवश्यक है जब कि हंसना बेसमझदारी का हो सकता है । इस केलिए एक विशेष प्रकार के चिन्तन की भी आवश्यकता है जो कि रूखा चिन्तन ही न हो वरन् मनुष्यत्व पर सहानुभूतिपूर्ण विचार करने के उपरान्त उत्पन्न हुआ हो"[1] । "स्मित" का संबन्ध हास्यास्पद के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति से है ।

जब हास्य में कटुता आ जाएगी या हास्य सोद्देश्य हो जाएगा तब वह व्यंग्य अथवा वक्रोक्ति हो जाएगा । वह स्मित नहीं रह सकेगा ।

जहाँ हास में ममता रहती है जिस पर हम हंसे वह हमारा प्रिय भी होता है वही तरल हास "स्मित" कहा जाता है । मेरिडिथ ने लिखा है - हास्यास्पद के प्रति उस की हंसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने में सन्तुलन नहीं खोना चाहिए । उसकी हंसी उड़ाई जाय तो उसे प्रेम भी किया जाय"[2] । मेरिडिथ आगे लिखते हैं कि हास्य के साथ साथ आलंबन के प्रति करुणा के भाव भी आवश्यक है[3] ।

प्रस्तुत संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का मत उल्लेखनीय है । वे लिखते हैं -

---

1. If insensibility is demanded for pure laughter, Sensibility is rendered nec essary for true humour. However we shall fin it is often related to melancholy of a peculiar kind, not a fierce melancholy and a melancholy that crises out of pensiv thoughts and a brooding on the ways of mankind.
   _ An Introduction to Dramatic Theory - A. Nicol
2. If you laugh all reound him, tumble him roll hom about, deal him a smack, and drop a tear on him own his likeness to you and yours to your neighbour, spare him as little on you shan pity him as much as you expose, it is a spirit of homour tha is moving you - An essay on Comedy - Maredith - p.79
3. The stroke of the great humourist is world-wide with lights of tragedy in his laughter - An essay on Comedy -Meridth p.84

जो बात हमारे यहाँ की रस-व्यवस्था के भीतर स्वत: सिद्ध है वही यूरोप से इधर आकर एक आधुनिक सिद्धान्त के रूप में यों कही गयी है कि उत्कृष्ट हास वही है जिस में आलम्बन के प्रति एक प्रकार का प्रेमभाव उत्पन्न हो अर्थात् वह प्रिय लगे। यहाँ तक तो बात बहुत ठीक रही पर यूरोप में नूतन प्रवर्तक बनने केलिए उत्सुक रहने वाले चुप कब रह सकते हैं। वे दो कदम आगे बढकर आधुनिक "मनुष्यतावाद" या "भूतदयावाद" का स्वर बुलन्द करते हुए बोले - "उत्कृष्ट हास वह है जिस में आलंबन के प्रति दया एवं करुणा उत्पन्न हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह होली - मुहर्रम सर्वथा अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक और रस विरुद्ध है। दया या करुण दु:खात्मक भाव है, हास आनन्दात्मक। दोनों की एक साथ स्थिति बात ही बात है। यदि हास के साथ ही आश्रय में किसी और भाव का सामंजस्य हो सकता है तो प्रेम या भक्ति का है"[1]।

रस पद्धति के अनुसार हास्य रस एवं करुण रस में विरोध है किन्तु पाश्चात्य लेखकों की धारणा है कि हास्य के साथ करुणा का संगत सोने में सुगंध का कार्य करता है। इस बात को पुष्ट करते हुए "सली" लिखते हैं -

हसी तथा रुदन पास ही पास है। एक से दूसरे पर जाना आसान है। जब कि वृत्ति एवं कार्य में पूर्ण रीति से संलग्न हो तो कुछ उसी के समान दूसरे कार्य पर बडी जल्दी जा सकती है"[2]। करुण एवं हास्य रस में कोई संबन्ध नहीं है, भारतीय रस शास्त्रियों का यही मत समीचीन लगता है। यहाँ पाश्चात्य विद्वानों का कहना असंगत है। खैर, दु:ख के संदर्भ में हास्य केलिए कुछ तथ्य मिल जावें तो अलग बात है। हास्य एवं करुणा में कोई संबन्ध नहीं है। शायद दोनों का सम्बन्ध भ्रम के कारण हुआ होगा।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्रशुक्ल- पृ.475

2. The fact is that tears and laughter be in close proximity. It is but a slip from one to other. The motor centres engaged when in full swing of one mode of action may readily

भारतीय शास्त्रकारों ने रस मैत्री के प्रकरण की व्याख्या करते हुए करुण रस को हास्य रस का शत्रु बतलाया है जब कि जार्ज मेरीडिथ हास्य की भावना में करुण रस की झलक पाते हैं । साहित्य दर्पण कार कहते है -

आद्यः करुणा वीभत्सरौद्रो वीर भयानकै ।[1]
भयाकेत करुणेष्यपि हास्यो विरोधभावा ।

इन के अनुसार हास्य रस के प्रयोग आधुनिक दृष्टि से निर्जीव तथा असफल होगा । मेरिडिथ लिखते हैं -

"हंसने केलिए प्रेम को कम करना पड़ता हो ऐसा मनोविज्ञान कभी नहीं कहता । हास्य-मनोवृत्ति सामाजिकता तथा प्रेम भावना को लिए हुए हैं । फिर हंसने पर प्रेम-पात्र में प्रेम कम हो एवं वही हास्य शक्ति का मापक हो, यह कदापि संगत नहीं लगता । शरीर विज्ञान तो हास्य को बढ़ती हुई प्रेम की शक्ति का ही परिवर्तित रूप मानता है"[2] ।

इस संदर्भ में बरसाने लाल का मंतव्य भी उल्लेखनीय है । "यदि आलम्बन इतना निर्लज्ज तथा चिकना है कि प्रेम द्वारा उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो उसके प्रति घृणा का जाग्रत करना अनिवार्य सा हो जाता है । दूसरे जब जीवन में सदैव से हंसने रोने का साथ रहा है, मनुष्य एक क्षण रोता है दूसरे क्षण हंसने लगता है तो क्या कारण है साहित्य में इन दोनों का ऐसा विरोध रहे । इस के अतिरिक्त गंभीर नाटकों आदि में हास्य का पुट रेगिस्तान में नखलिस्तान का काम देता है इस विरोध का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि भारतीय शास्त्रीय पद्धति में हसन क्रिया के भेद मिलते हैं, गुण और प्रभाव की दृष्टि से वर्गीकरण पाश्चात्य साहित्य में ही मिलता है"[3] ।

---

1. साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - पृ. 152
2. An essay on Comedy - Meredith - p.28
3. हिन्दी साहित्य में हास्य रस - बरसानेलाल चतुर्वेदी - पृ. 40

समग्रत: विचार करने पर ज्ञात होगा कि करुण रस एवं हास्य रस अलग अलग हैं । हाँ, कभी कभी करुणामिश्रित स्मित संभव है । यहाँ हास्य एवं व्यंग्य के बीच के अन्तर को स्पष्ट करना है । हास्य का कोई उत्कृष्ट प्रयोजन नहीं रहता । यदि उसका कोई प्रयोजन होता तो वह केवल हास्य ही है । लेकिन व्यंग्य कभी निष्प्रयोजन नहीं होता । उसका कोई न कोई गूढ़ एवं मर्मस्पर्शी प्रयोजन अवश्य रहेगा । हास्य और व्यंग्य में एक अन्तर, यह भी है कि व्यंग्य में चाहे हास्य की सृष्टि हो या न हो, किन्तु हास्य में उसका होना अनिवार्य है ।

2. वाक् - वैदग्ध्य (Wit)

शब्दों में विवेक की मितव्ययिता वैदग्ध्य को जन्म देती है । विदग्धता के कारण जो उक्ति - चमत्कार होता है उसे "विट" कहते हैं । उक्ति - चमत्कार यानी वाक् वैदग्ध्य हास्य का एक बौद्धिक स्त्रोत है ।

वाक् - वैदग्ध्य के सन्दर्भ में "एडिसन" लिखते हैं कि "परिहास" व "विनोद" के महत्वपूर्ण घराने का मूल पुरुष "सत्य" है । सत्य को शोभनार्थ नामक लडका हुआ । "शोभनार्थ" के यहाँ उक्तिचमत्कार नामक लड़का हुआ । "उक्ति चमत्कार" ने अपने वंश की "आनन्दी" नामक लडकी से विवाह किया । इस दम्पति से "विनोद" नामक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ । विनोद का जन्म भिन्न-भिन्न स्वभावों के माता-पिता से हुआ था । इसलिए उसका स्वभाव भी विलक्षण हो गया है । कभी वह देखने में गंभीर, कभी चंचल और कभी विलासी जान पड़ता है । लेकिन उस में विशेषत: उसकी माता के स्वभाव का ही अधिक अंश आया है, इसलिए वह स्वयं चाहे

जिस चित्त वृत्ति में रहे, दूसरों को वह बिना हंसाए नहीं रहता"[1] ।
इस कहानी का तत्पर्य यह है कि एडिसन के मत के अनुसार वचन वैदग्ध्य में सत्य एवं प्रौढ़ अर्थ होना चाहिए ।

वचन वैदग्ध्य में सत्य एवं प्रौढ़ अर्थ की ज़रूरत है । हास्यकारों ने वाग्वैदग्ध्य को दो भागों में विभक्त किया है ।

वाग्वैदग्ध्य
- 1. चमत्कार वैदग्ध्य
- 2. रसात्मक वैदग्ध्य

प्रथम में वाक्य के प्रयोग की पटुता एवं विचारों का आरोप है । प्रयोगपटुता जब जीवन में कोई ऐसी परिस्थिति उपस्थित करती है जिस में भाव संचारण की क्षमता हो तो उक्ति का गुण रसात्मक हो जाता है । वाग्वैदग्ध्य की एक विशिष्टता उसकी सामाजिकता है ।

हास तथा हास्य के विपरीत इस में तीन पात्रों की आवश्यकता होती है ।

1. जिसके द्वारा प्रयोग किया जाय
2. जिस केलिए प्रयोग हो
3. जिस केलिए सुना जाय ।[2]

---

1. Truth was the founder of the family and the father of good sense. Good sence was the father of wit who married a lady of a collateral line called Mirth, by whom he was issue humour. Humour being the youngest of this illustrious family and desended from parents of such various dispositions as very various and un equal in his tenper. Some times you see him putting on grave looks and a solemn habit, sometimes airy in his behaviour and fantastic in his dress, in so much that at different times he appears as serious as a judge and as jocular as a meery Andrew. But as he has a great deal of the mother in him, whatever mood .... his company laugh. Edison-Six papers on wit (Humour)
2. हास्य के सिद्धांत तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य - त्रि·ना·दीक्षित पृ-78

यह हास्य का अत्यन्त कलापूर्ण तथा महत्वपूर्ण अंग है । वैदग्ध्य का प्रयोग शैली तथा भाषा पर पूर्ण अधिकार की अपेक्षा रखता है ।

मुख्यत: "शब्द-वैदग्ध्य" यमक के आश्रित है । प्रथमत: इस में शब्द अपने निश्चित अर्थ को सूचित करता है एवं दूसरी बार वह उस शब्द को विभक्त कर नया अर्थ प्रकट करता है । दोनों भिन्न अर्थ वैदग्ध्य तथा हास्य के कारण ही होते हैं ।

वैदग्ध्य का प्रयोग अर्थ एवं शब्द दोनों में होता है अत: अलंकार की भांति उस में भी अर्थ वैदग्ध एवं शब्द वैदग्ध्य के दो भेद किए जा सकते हैं । वाक्वैदग्ध्य अपनी कलित कल्पनाशक्ति तथा बौद्धिक कलाबाजी के कारण कभी - कभी व्यंग्य की सीमा को स्पर्श कर लेता है । वाक्वैदग्ध्य और व्यंग्य के बीच का अन्तर यह है कि वाक्वैदग्ध्य स्वयं में व्यंग्य नहीं बन सकता, व्यंग्य की संवेदना, करुणा, गंभीरता आदि द्वारा ही वह व्यंग्य की सीमा को पहुंचता है ।

3. <u>वक्रोक्ति</u> :

वक्रोक्ति से तात्पर्य कुन्तल की वक्रीकृता उक्ति से है । जब हम वाक्य एक अर्थ में कहें एवं उसका अर्थ दूसरा निकले, तो उसे वक्रोक्ति कहते हैं । यह बहुत तीव्र भी होती है । ए. निकाल ने वक्रोक्ति की परिभाषा यों की है - "वक्रोक्ति में जिस वस्तु में हम विश्वास नहीं करते उसमें विश्वास दिखाते हैं तथा हास्य में जिस वस्तु में हम वास्तव में विश्वास करते हैं उसमें अविश्वास दिखाते हैं । वक्रोक्ति एक प्रकार का बहुरूपिया है अमृत में जहर डालना या फूल में कीट बनकर पहुंचना इसी का काम है"[1] ।

---

1. In Irony we pertendto belive what we do not belive in humour we pertand to disbelive what we actually belive.

_ An Introduction to Dramatic Theory - A Nocol.

मेरिडिथ ने वक्रोक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है - "यदि आप हास्यास्पद पर सीधा व्यंग्य बाण न छोडें वरन् उसे ऐसा उमेठ दें एवं किलकारी निकलवा दें, प्यार के आवरण में उसे डंक मारें जिससे वह अन्तर्द्वन्द्व में पड जाये कि वास्तव में किसी ने उस पर प्रहार किया है अथवा नहीं, तब आप वक्रोक्ति का उपयोग कर रहे हैं"[1]।

मेरिडिथ ने अपनी उक्ति स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है -

वक्रोक्तिकार जो कुछ लिखेगा अपनी मानसिक प्रवृत्ति से लिखेगा। वक्रोक्ति व्यंग्य का हास है। यह कठोरतम भी हो सकता है जिसमें साथ में नैतिक लक्ष्य भी हो एवं "गिबन" की भांति गंभीर भी हो सकता है जो द्वेष पूर्ण है। एक वक्रोक्ति वह है जो कि ऊपर से दिखाई देती है तथा दूसरी वह है जिसके उद्देश्य में तिरस्कार की भावना होती है तथा जो व्यंग्यात्मक उद्देश्य में तिरस्कार की भावना होती है तथा जो व्यंग्यात्मक उद्देश्य में असफल हो गई है तथा जिस में भ्रम के खजाने हों[2]।

बरगसाँ ने Irony की परिभाषा इस प्रकार की है - "कभी कभी हम यह कहते हैं कि यह होना चाहिए एवं दिखाते भी हैं कि जो कुछ किया जा रहा है उसमें हमारा विश्वास भी है, वहाँ वक्रोक्ति होती है - वक्रोक्ति में हम को ऊपर से ऊँचे उद्देश्य की भलाई दिखाने का बहाना करना पड़ता है, इस प्रकार वक्रोक्ति अन्दर से इतनी तीव्र हो सकती है कि हमें मालूम पडे कि वह शक्तिशाली वक्तव्य है[3]।

---

1. If instead of falling foul of the ridiaulous person with a satric rod, to make him writhe and shrick doud, you prefer to sting him under semi-caren by which he shall in his angerish be rendered dubious, whether indeed anything has hurt him, you are an engine of Ireny. The Idea of Comedy-Meridith p.79
2. The Ironisk is one thing or another, according to his caprice. Irony is the humour of satire, it may be savage as in swift, ... pretending to the treasures of ambiguity. The idia of Comedy - Meridth p.82
3. Sometimes we state what ought to be done and pretend to believe that this is just what is actually being done, ... a kind of high pressure eloquence.

प्रो॰ जगदीश पाण्डे ने "हास्य के सिद्धांत" में वक्रोक्ति के भेद इस प्रकार बतलाए हैं -

1. आधार के तिरोभाव
2. विरोधाभास
3. व्याजनिन्दा
4. व्याजस्तुति
5. असंगति
6. द्विविधा
7. प्रत्यावर्तन
8. ध्रुव विपर्यय व्यंग्य
9. पृष्ठाघात की वक्रोक्ति
10. अभिन्न हेतुक विभिन्नता
11. निंद्य की साधु स्तुति ।[1]

वक्रोक्ति को मधुमक्खी कह सकते हैं क्योंकि इस का प्रभाव मधुमक्खी के डंक सा ही तीव्र होता है । इसलिए वक्रोक्ति की उपमा मधुमक्खी से की जाती है । व्यंग्य केलिए वक्रोक्ति का प्रयोग अक्सर होता है । लेकिन प्रत्येक वक्रोक्ति व्यंग्य नहीं हो सकती । वस्तुतः हर व्यंग्य वक्रोक्ति भी नहीं बनता । वक्रोक्ति में सीधी बात कभी कही नहीं जाती, परन्तु व्यंग्य में सीधी बात कहकर भी प्रहार और आलोचना की जा सकती है। दरअसल वक्रोक्ति व्यंग्य के संप्रेषण में आवश्यक योगदान देती है

4. परिहास (Parody)

पैरोडी अंग्रेज़ी का शब्द है । अन्य शब्दों की भांति हिन्दी में स्वच्छता से उपयोग में लाया जा रहा है । परिहास हमारे जीवन की यातना को उच्छवास में परिणत कर उसे मुस्कान से अनुरंजित कर देती है, जीवन-सागर को पार करने केलिए हमारे हाथ में पतवार देती है, एवं मानवता को जागृत कर जीवन से पूर्ण आनन्द लेने का आग्रह करती है ।

---

1. हास्य के सिद्धान्त - प्रो॰जगदीश पाण्डे - पृ॰99

पैरोडी में किसी भी विशिष्ट शैली या लेखक की ऐसी हास्यास्पद अनुकृति होती है कि वह गंभीर भावों को परिहास में परिणित कर देती है ।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा लिखते हैं - परिहास [पैरोडी] उदात्त मनोभाव को अनुदात्त संदर्भ से जोड़कर हास्य को उत्पन्न करता है[1]।

शाब्दिक पैरोडी अत्यंत सरल होती है जो शब्दों व पंक्तियों के परिवर्तन द्वारा की जाती है जिस से मूल रूप उसका नष्ट न हो एवं भिन्न अर्थ प्रकट हो । शैली की पैरोडी उच्च प्रकार की होती है । इस प्रकार से तीन प्रकार की पैरोडी हो सकती है -

1॰ आकार प्रकार संबन्धी पैरोड़ी
2॰ शाब्दिक पैरोड़ी
3॰ भावना संबन्धी पैरोडी

पैरोडी की विषय वस्तु कभी कभी किसी सामाजिक, राजनीतिक व सामान्य असंगतियों - सम्बन्धी होती है वहाँ पैरोडी व्यंग्य का एक सफल उपकरण बन जाती है । वास्तव में वही पैरोडी प्रभावकारी व्यंग्य बन सकती है जो उस वस्तु को नष्ट कर दे जिसकी नकल करके वह बनी है । कठिनाई यह है कि पैरोडीकार उसी वस्तु की पैरोडी बनाता है जिसे वह प्रेम करता है इसलिए व्यंग्यकार के उद्देश्य को पूरा करने में यह असफल हो जाती है । पैरोडी किसी विकृति पर हंसा सकती है, उसे नष्ट नहीं कर सकती ।

1॰ रिमझिम - भूमिका - चतुर्थ संस्करण 1964
- डॉ॰रामकुमार वर्मा P. 12

इसलिए यह उतनी ही महत्वहीन है जितनी बैठक में जलाई जाने वाली फुलझड़ियाँ, जिन्हें बच्चों के मनोरंजन केलिए प्रयोग किया जाता है । जिन से किसी की भावनाओं को ठेस लगने की अथवा जिन से फर्नीचर में आग लग जाने की आशंका नहीं रहती, किन्तु, यदि यहाँ पेरोडी के स्थान पर व्यंग्य का प्रयोग किया जाय तो मकान ढह जाय ।

निष्कर्ष यह है कि वही पेरोडी व्यंग्य का सशक्त साधन बन सकती है जिस में हास्य गोण हो तथा आलोचना एवं घृणा के तत्व अधिक हों ।

5· प्रहसन :-

हिन्दी में प्रहसन का आरंभ भारतेन्दु युग से होता है । "अन्धेर नगरी", एवं "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" भारतेन्दु के प्रमुख प्रहसन है ।

प्रहसन को अंग्रेज़ी में "कामदी" कहते हैं । अंग्रेज़ी साहित्य में दु:खान्तक एवं सुखान्तक दो ही नाटक के भेद माने गए हैं । सुखात्मक नाटक जिस में हास्य भी हो "कामदी" के अन्तर्गत आता है । हाल ही में दु:खान्तक प्रहसन (Tragic Comedy) भी चले हैं ।

प्रहसन का अर्थ अब संस्कृत की पारिभाषिक सीमा के अन्दर नहीं रह जाता है । इसलिए कामदी या "फारस" का पर्यायवाची शब्द प्रहसन माना जाता है । हिन्दी में प्रहसन के संदर्भ में किसी भी ऐसी नाटक लिया जा सकता है जो हास्य एवं व्यंग्य के विचार से लिखा गया है । भारतेन्दु की "नाटक" नामक पुस्तक में जो कि भारतीय नाट्यशास्त्र के आधार पर लिखी गई है, प्रहसन की व्याख्या इस प्रकार की गई है -

"हास्य - रस का मुख्य खेल - नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो । इस में अनेक पात्रों का समावेश होता है । यद्यपि प्राचीन रीति से इस में एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते"[1] ।

"प्रहसन लिखने का उद्देश्य मनोरंजन भी है और धर्म के नाम पर पाखण्ड का मूलोच्छेदन भी । काने को भी काना" कहने से काम नहीं बनता वरन वह और बुरा मानता है । इसलिए समाज की बुराई को यदि केवल बुराई मात्र कहकर उससे आशा की जाय कि समाज उस बुराई को दूर कर देगा तो यह व्यर्थ है । व्यंग्य और वक्रता द्वारा इस प्रकार की बुराई को प्रकट करना एक प्रकार की कला है और बहुत ही उच्च कला है । इस में साँप भी मर जाता है और लकडी भी नहीं टूटती[2] ।

मेरिडिथ ने कामडी के उद्गम के विषय में लिखा है कि "प्रहसन" का कलाओं में कभी उच्च स्थान नहीं था । प्रारंभ में यह नाटकों से नीची वस्तु थी जिस में अविकसित सभ्यता की प्रबल अभिव्यक्ति मिलती थी । इन्होंने भाव को प्रहसन की आत्मा माना है । प्रहसन केलिए वास्तविक संसार का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है[3] ।

बरबर्सा ने कामडी का वर्णन इस प्रकार किया है - "प्रहसन में हमारे जाने पहचाने चरित्रों का ही चित्रण होता है । साम्य का इस में सदेव ध्यान रखा जाता है । यह विभिन्न प्रकार के वर्गों को हमारे सम्मुख रखता है । कभी कभी नए वर्गों का सृजन भी इस में किया जाता है, इस भाँति इस में अन्य कलाओं से विभिन्नता स्पष्ट प्रतीत होती है[4] ।

---

1. भारतेन्दु नाटकावली - पृ. 793
2. हिन्दी नाटकों का इतिहास - डॉ. सोमनाथ - पृ. 53
3. Comedy, we have to admit, was never one of the most honoured of the Muses. She was in her origin, short of slaughter, the loudest expression of little civilization of men.
 - The Idea of Comedy - Meridith. p.11

कामदी का लेखक बुराइयों की दुनिया में रहता है, जीवन के प्रपंचों, अनाचार एवं अत्याचार को देखता है फिर भी निरपेक्ष होकर कलात्मक ढंग से, विनोद के भाव से दुनिया का चित्र खींचता है। स्वानुभूति एवं निरपेक्षता तथा बाह्य रूप एवं वास्तविकता के द्वन्द्वों का प्रत्येक हास्य लेखक प्रयोग करता है। कामदी का हास्य अवैयक्तिक, सार्वजनिक एवं शिष्ट होता है।

ए॰निकाल ने प्रहसन में चार प्रकार की हास्य-अभिव्यक्ति मानी है। हास्यास्पद का आधार केवल एक हास्य तत्व ही नहीं होता बल्कि इन का ऐसा सम्मिश्रण होता है कि उनको अलग-अलग करना कठिन होता है। प्रहसन का यद्यपि हास्य एक आवश्यक गुण है तथापि प्रहसन एक मात्र हास्य पर ही आधारित नहीं होता। इनमें हास्य एवं व्यंग्य स्पष्ट भी हो सकता है एवं गुप्त भी[1]।

निकाल ने प्रहसन के संदर्भ में कामदी के निम्न भेद किए हैं -

1. प्रहसन (Farce)
2. व्यंग्य प्रधान प्रहसन (The Comedy of Satire)
3. श्रृंगार रस प्रधान (Comedy of Romance)
4. कोमलता प्रधान प्रहसन (Gentle Comedy)
5. भावुकता प्रधान प्रहसन (Sentimental Comedy)
6. वचन विदग्धता प्रधान प्रहसन (Comedy of Wit)
7. अन्तर्द्वन्द्व प्रधान प्रहसन (The Comedy of Intrigeres)
8. करुण रस प्रधान प्रहसन[2] (Tragic-Comedy)

---

1. There are four types of comic expression used by dramatists the unconscious ludicrous, the conscious wit, humour and Satire. - An Introduction to Dramatic Theory - A.Nicol. p. 15
2. An Introduction to Dramatic Theory - A.Nicol - p,158

प्रहसन के अन्तर्गत वैदग्ध्य (Wit) हास्य (Humour) व भ्रान्ति (Nonsense) तीनों का प्रयोग किया जाता है । हास्य का क्षेत्र कार्य, अवस्था एवं चरित्र है, इन्हीं के द्वारा प्रहसन हास्य की वस्तु को प्रकाश में लाता है । कामदी का हास्य सार्वजनिक तथा अवैयक्तिक एवं शिष्ट होता है ।

व्यंग्य तथा प्रहसन में अन्तर करते हुए मेरिडिथ ने लिखा है - व्यंग्य का हास्य तो किसी के मुख अथवा पीठ पर घाव के समान है । प्रहसन का हास्य व्यक्तिगत नहीं होता, उसमें असाधारण नम्रता होती है जो अधिक से अधिक एक मुस्कान भर ला देती है । प्रहसन का हास्य निर्वैयक्तिक होता है चूंकि बुद्धि से इसका संचारण होता है इसलिए इसे मस्तिष्क का हास्य कहा जा सकता है[1] ।

~~किन्~~ प्रहसन और व्यंग्य में बड़ा अन्तर है । प्रहसन नाटक का एक रूप है, व्यंग्य में नाटकीयता की अनिवार्यता नहीं । व्यंग्य में सीधी तथा प्रत्यक्ष चोट भी हो सकती है । किन्तु प्रहसन में असाधारण नम्रता के ज़रिए प्रहार किया जाता है, इसकारण आलंबन मुस्कुरा सकता है । व्यंग्य का उद्देश्य मुस्कुराहट की अपेक्षा कहीं अधिक गंभीर होता है, केवल मुस्कुराहट पैदा करना व्यंग्य का उद्देश्य नहीं ।

व्यंग्य :-

मानवीय इतिहास में जीवन का संतुलित विकास अत्यन्त आवश्यक भूमिका निभाता रहा है । मनुष्य के स्वभाव व उसके आसपास के जीवन एवं उसकी परिस्थितियों से निरन्तर संघर्ष चलता रहा है । चाहे वे परिस्थितियां राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक हों या वैयक्तिक,

---

1. The laughter of Satire is a blow in the back or the face. The laughter of Comedy is impersonal and of unirivalled politenss; nearer a smile; often no more than a smile. It laughs through the mind, for the mind directs it, and and it might be called the humour of the mind.
   The Idea of Comedy - Meridth - p.8

मनुष्य केलिए सर्वदा यही स्वाभाविक रहा है कि वह इन परिस्थितियों में व्याप्त बेडौलपन, असंतुलन व विसंगति से लोहा ले । अभिव्यक्ति के क्षेत्र में यह संघर्ष व्यंग्य के रूप में व्यक्त होता है ।

व्यंग्यकार का उत्तरदायित्व है कि वह अपने समय एवं युग की समस्त विसंगत स्थितियों की आलोचना करें । कटु एवं तिक्त, करुण व कभी कभी अत्यंत गंभीर शैली में व्यंग्य को माध्यम बनाकर सड़ी-गयी रूढियों एवं जर्जरित मान्यताओं की समीक्षा निश्चय ही की जा सकती है ।

मधुकर गंगाधर लिखते हैं - "किसी उस्ताद जर्राह के हाथ की नश्तर लगाने की छुरी लोहे की होती है एवं तेज़ धार से मांस काटती है । दर्द देने वाली वह छुरी जिन्दगी केलिए नियामत है । साहित्य के व्यंग्य के साथ भी कुछ वैसी ही बात है । व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की चेतना के कलुष को काटकर अलग करना ही व्यंग्य की सार्थकता है । इस वाणी की छुरी से क्षणभर केलिए आखेट कांप उठता है, किन्तु निष्कर्ष हमेशा महत् रहता है"[1] ।

व्यंग्य द्वारा समाज की बुराइयों को सुधारने का कार्य भी युगों से जारी है । प्रचलित बुराइयों को प्राय: व्यंग्य का विषय बनाया जाता है । आदिकाल में कायर, भक्तिकाल में पाखण्डी, रीतिकाल में सूम, भारतेन्दु युग में विदेशी शासन, अंग्रेज़ी भाषा, देशी काहिलों एवं जाहिलों को व्यंग्य का आलम्बन बनाया गया । सामाजिक सुधार, परिवर्तन एवं जाहिलों को व्यंग्य का आलम्बन बनाया गया । इसे ही आगे बढ़कर सामाजिक सुधार, परिवर्तन तथा बदलाव की संज्ञा दी गयी है । कबीर एवं भारतेन्दु जैसे कवियों ने समाज की बुराईयों एवं राजनीतिक भ्रष्टाचारों को सुधारने केलिए व्यंग्य को अपना लिया ।

---

1. निराला : जीवन और साहित्य - मधुकर गंगाधर - पृ.76

यदि व्यंग्य तीखा हो जाय एवं उसकी मार गहरी हो तो व्यंग्य से आहत व्यक्तियों अथवा पक्षों की शत्रुता का जोखिम भी उठाना पड़ जाता है। जिन व्यक्ति व पक्षों को व्यंग्य का शिकार बनाया जाता है, समाज में उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से भी देखा जाने लगता है। इसलिए सब व्यक्ति व्यंग्यकार से अपना दामन बचाकर चलना चाहते हैं।

व्यंग्य मूलतः समाज के हित में होता है। इसलिए उसकी दृष्टि समग्र रूप से मानवीय कल्याण की कामना से ओत प्रोत होती है। साधारणतः व्यंग्यकार के साथ समाज का बहुत बड़ा हाथ होता है, क्योंकि व्यंग्य अगर कुछ लोगों को उत्साहित न करके निराश, पराजित एवं हतोत्साह बनाता है, तो कुछ लोगों को प्रेरित तथा आह्लादित भी करता है।

व्यंग्य या व्यंग्यकार को, "वल्गर" एवं "अशिष्ट" कहकर विसंगतियों का पर्दाफाश करने की प्रवृत्ति पर रोक लगाने के प्रयत्न किए गए। इस प्रकार के आरोप समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था एवं धार्मिकता के स्वनाम धन्य ठेकेदारों द्वारा ही लगाए गए। काले बाज़ार में अपना सामान बेचने वाला, रिश्वत लेने वाला तो यही चाहेगा कि वह तो चोर-बज़ारी करते रहे, रिश्वत लेते रहे एवं बुद्धिजीवी पत्नी तथा रिश्तेदारों से शिष्ट मजाक करते रहे, बैंगन, उल्लू, मोटापे, बेलन एवं प्याज़ पर कविताएं सुन सुनकर तालियां बजाते रहें एवं जहां प्रहार किया जाता है उस ओर से समूचे समाज आंख मूंद कर मौन बैठे रहे। क्या भ्रष्टाचारियों, पीड़कों, स्वार्थलोलुपों, हत्यारों, सूदखोरों, मुनाफाखोरों, काले बाज़ार के बेताज बादशाहों एवं नौकरशाहों से मात्र शिष्ट हास्य करना उनके माध्यम से अपना उल्लू सीधा करना नहीं होगा संवेदन शील, ईमानदार एवं सच्चा कलाकार क्या इन सब पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार नहीं करेगा।

काव्य में व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति को पिछले युगों में लगातार एक विशिष्ट मान्यता प्राप्त रही है । यद्यपि ऐसे कवि एवं आलोचक भी थे, और हैं जो व्यंग्य को उसकी बौद्धिक संवेदन शीलता के कारण घटिया कोटि का काव्य मानते रहे हैं ।

हिन्दी कविता में व्यंग्य को महत्व एवं मान्यता प्राप्त करने केलिए पूर्वाग्रहों की एक लंबी अवधि तथा मार्ग से गुजरना पडा है । शताब्दियों से ऐसे कवि प्राय: विद्यमानरहे हैं, जिन्होंने व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर समाज की पीडाओं, आकांक्षाओं, कुरीतियों एवं विडम्बनाओं को व्यक्त किया, व्यक्ति की निजी अभिव्यक्तियों में पैनेपन एवं प्रहार को प्रतिष्ठत किया । भारतेन्दु ने अपने समय की विसंगतियों को हास्य एवं करुणा के माध्यम से, राष्ट्रवादी कवियों ने कठोर होकर विसंगतियों की करुणा को उभारते हुए एवं निराला ने विविध रंगी व्यंग्य के माध्यम से अपने युग को अभिव्यक्ति दी । व्यंग्य में जिन गंभीर बातों को अगंभीर ढंग से कहना माना जाता है, उसे बहुत बाद तक मान्यता प्राप्त नहीं हुई । निराला की श्रेष्ठ व्यंग्य रचना को उस में मिश्रित हास्य के कारण ही कुतूहल कहकर संबोधित किया गया था । "काव्य प्रकाश" में मम्मट द्वारा बताए गए काव्य के प्रयोजन "कांतासम्मित तयोपदेशयुजे" के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि उपदेशात्मकता निश्चय ही काव्य का महत्व-पूर्ण प्रयोजन है । मृदुल, सरस एवं मर्मस्पर्शी होने के कारण उपदेशात्मकता को काव्य में स्थान दिया गया । मर्मस्पर्शिता के अभाव में उपदेशात्मकता केवल बौद्धिक निष्कर्ष मानी गयी एवं यह भी स्वीकारा है कि इससे काव्य निष्प्रभ हो जाता है । व्यंग्य का कार्य हमेशा मृदुता एवं सरसता पैदा करना भले ही न रहता हो, किन्तु उसे मर्मस्पर्शी अवश्य होना चाहिए ।

नीतिकार कवियों में रहीम, गिरिधर एवं वृंद को अपने रचनात्मक एवं उपदेशात्मक उपहास्य व्यंग्य के कारण भी महत्त्व दिया गया। काव्य की मृदुता एवं सरसता जैसे गुणों को सावधानी एवं दृढ़ता के साथ अपनाया गया है ताकि कविता में तिक्तता आ जाने पर उसे काव्य की कोटि से ही बहिष्कृत न किया जा सके। यही कारण है कि बहुत से कवियों ने अनैतिकता आदि पर भी मात्र शालीनता की परिधि में ही व्यंग्य किया है। प्राचीन कवियों में कबीर ने अपने व्यंग्य में तिक्तता आ जाने की चिन्ता नहीं की।

व्यंग्यमय काव्य - रचना में गंभीर बातों को अगंभीर ढंग, गंभीर बातों को प्रहारात्मक संवेदना के साथ या करुणा की सृष्टि करते हुए कहा जाता है एवं उस में तिक्तता या कटुता का समावेश हो सकता है।

पूर्ववर्ती काव्य में व्यंग्य को उतना महत्त्वपूर्ण स्थान निश्चित ही प्राप्त नहीं था, जितना नई काव्य चेतना के उदय से प्राप्त हुआ है। आचार्य शुक्ल ने भी इस अभाव की ओर अपने इतिहास में संकेत किया था।[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर के निष्कलुष एवं व्यंग्य "साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सबकुछ कह देने वाली शैली और अत्यंत सादी किन्तु अत्यंत तेज प्रकाश - भंगी[2] - के कारण ही उन्हें अपने समय का श्रेष्ठ संत एवं कवि स्वीकार किया है। रसवादी आलोचक नगेन्द्र ने प्रयोगवादी कविता को "अनगढ़ता" और "भदेस" से अत्यधिक आग्रहयुक्त पाया था, विजयनारायण साही और भारत भूषण अग्रवाल की बारीक व्यंग्य वक्रताओं को अपनी चेतना को गुदगुदाने में समर्थ पाते हैं।[3]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.474
2. कबीर - पाँचवाँ संस्करण - पृ.164
3. उभरते प्रश्न - साप्ताहिक हिन्दुस्तान - 17 सितम्बर 1967 - पृ.12

अज्ञेय ने व्यंग्य के सिलसिले में स्पष्ट दृष्टि का परिचय किया । भवानी प्रसाद मिश्र की व्यंग्य कविता "गीत फरोश" के सम्बन्ध में उनकी मान्यता है : "नाटकीयता तो खैर इस में है, पर असल विशेषता यह है कि इस में गंभीर बातों को हलके - फुलके ढंग से कहा गया है"[1] । अज्ञेय ने व्यंग्य को गंभीर बात अत्यन्त अगंभीरता से कहने के साथ साथ क्रीडा एवं लीला भाव भी माना है । इस क्रीडा एवं लीला भाव के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है " क्रीडा और लीलाभाव भी सत्य हो सकते हैं - जीवन की ऋजुता भी उन्हें जन्म देती है और संस्कारिता भी । देखना यह होता है कि वह सत्य के साथ फ्लर्टेशन मात्र न हो"[2]।

काव्य में व्यंग्यात्मकता के महत्त्व पर लक्ष्मीकांत वर्मा ने भी "गीतफरोश" का सन्दर्भ देते हुए कहा है "आज कवि अथवा बुद्धिवादी किस प्रकार से जीवन के सत्यों को देखने की चेष्टा करता है - यही बात महत्त्व की है । ······· इसलिए बहुत से नए कवि जो केवल आकार पर बल देते हैं और कला को केवल कला केलिए मानते हैं, वह किसी स्थाई साहित्य का निर्माण नहीं कर सकेंगे । जैसे कोरे नारावादी कवि पूंजीवादी को साहित्यिक गालियां देकर समाज का कल्याण कर सकने में सदैव असफल रहे हैं, वैसे ही काव्य को केवल दार्शनिक महत्त्व देनेवाले भी असफल रहेंगे"[3] ।

इस तथ्य से सर्वथा मुंह नहीं मोडा जा सकता है कि जीवन के सत्यों को काव्य में सफल अभिव्यक्ति देने केलिए व्यंग्य से अधिक सफल कोई भी माध्यम नहीं हो सकता । यह बात अवश्य है कि विसंगतियों - विडम्बनाओं के कारण काव्य में आ जाने वाले व्यंग्य के महत्त्व को अभी तक पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया है । डॉ॰ नामवरसिंह ने इस के पीछे के साहित्यिक एवं साहित्येतर कारणों को स्पष्ट करते हुए कहा भी है कि इसका सबसे बडा कारण है - "इन कविताओं की आक्रमण क्षमता का भय ।

1· हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - पृ·152
2· तीसरा सप्तक - पृ·16
3· नए प्रतिमान पुराने निष्कर्ष - पृ·172

किन्तु संरचना की सघनता, शब्दों की मितव्ययिता, भावों की विडम्बना - निर्मित जटिलता, भावावेश-हीनता एवं विचारों की तीक्ष्णता आदि के कारण ही इस प्रकार की कविताएं आज के काव्य में महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारी हो जाती है"[1]।

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल एवं डॉ॰ नगेन्द्र द्वारा सहज भाव से व्यंग्य को काव्य केलिए आवश्यक मानने के साथ साथ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा तथा डॉ॰ नामवर सिंह ने आज की जटिल एवं कुटिल अनुभूतियों तथा 'स्थितियों को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किए जाने के महत्व को मुक्तभाव से स्वीकार किया है। व्यंग्य का महत्व जीवन में है ही, काव्य में भी व्यंग्य का अभाव उसे जीवन की सच्चाइयों एवं वास्तविकताओं से दूर रख सकता है एवं जीवन की सच्चाईयों एवं वास्तविकताओं के बगैर काव्य भी मात्र हवाई उडान या कपोल-कल्पना बनकर ही रह जाता है।

व्यंग्य की शास्त्रीय व्याख्या में संस्कृत आचार्यों द्वारा व्यंग्य के अर्थ को असीम बना दिया गया है, किन्तु मुख्यत: 'शब्द का व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट होने वाला अर्थ[2] या किसी भी शब्द का परतदार अर्थ या वृत्तानुगामी संस्कारमय व्यंजना व्यंग्य होती है।

अंग्रेज़ी के सटायर के आधार पर किसी व्यक्ति या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढे शब्दों में व्यक्त किया जाना व्यंग्य है। बोलचाल में इसे चुटकी कहा जा सकता है।

1· कविता के नए प्रतिमान - पृ·174

2· नालंदा विशाल शब्द सागर - पृ·1308

प्रस्तुत संदर्भ में व्यंग्य के प्रथम अर्थ को छोड़कर द्वितीय अर्थ में विचार करना अधिक उपयुक्त जंचता है। वही व्यंग्य है जिसमें व्यक्ति या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढे शब्दों में व्यक्त करता है, जो नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विसंगतियों, मिथ्याचारों, अन्तर्विरोधों, अन्याय अविचार आदि को पकड़ता है। इन पर लोग हंसते भी हैं किन्तु वह हंसी अक्सर प्रसन्नता की नहीं होती बल्कि कसक की होती है।

व्यंग्य की व्युत्पत्ति वि + अंग = व्यंग्य से है[1]। व्यंग्य शब्द प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अंग्रेज़ी के "सटायर" के पर्याय के रूप में प्रचलित नहीं था। "ऐसे तो व्यंग्यात्मक आवेश वेदों में मिल सकते हैं, किन्तु नाट्यशास्त्र में व्यंग्यात्मकता के स्पष्ट संकेत हैं। सिद्ध साहित्य में पूजा पाठ करने वाले पंडितों, गंगास्नानादि को पुण्य कर्म मानने वाले पौराणिक धर्मावलम्बियों पर व्यंग्य किए गए है"[2]।

पुराने कवियों में व्यंग्य के सर्वाधिक समर्थ एवं आधुनिक अर्थों में पूर्णतः सार्थक कवि कबीर रहे थे। रामचरित मानस में नारद-मोह का प्रसंग, राम के वनगमन का समाचार सुनकर आश्रम वासियों का "हुवे है सिला सब चन्द्रमुखी" आदि कहना, सूर के कई पदों एवं बिहारी के अनेक दोहों को परिहास के अंतर्गत ही रखा जा सकता है, व्यंग्य के नहीं। "सटायर" द्वारा किए गए चुहुल और परिहास का संबन्ध गीति से बाद में हो गया। सटायर गीति का भेद नहीं है, बल्कि कुछ गीत व्यंग्यात्मक होते हैं"[3]।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग - 1, रामखेलावन पाण्डे - पृ. 74।
2. वही पृ. 74।
3. वही पृ. 74।

निष्कर्ष यह है प्राचीन भारतीय वाङ्मय में व्यंग्य हमारे अभीष्ट अर्थ में लिखा तो गया, किन्तु इस संज्ञा का अस्तित्व इस अर्थ में नहीं था । शुद्ध व्यंग्य लेखन की परंपरा भारतेन्दु युग से विकसित हुई, क्योंकि वे कबीर की भांति सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों एवं विद्रूपों के प्रति खड्गहस्त थे ।

प्राचीन वाङ्मय में व्यंग्य को परिहास के रूप में मान्यता प्राप्त थी । क्योंकि आज कविता एवं साहित्य सृजन की सीमा व्यापक होती जा रही है । इसलिए आज इनकी अथ अभिव्यक्तियां सूक्ष्म एवं जटिल संदर्भों से जुड़ गई है । व्यंग्य के समकालीन एवं आधुनिक अर्थ में शब्द को व्यंजना वृत्ति द्वारा प्रकट करना ही अभीष्ट होता है एवं स्तरीय अर्थ हो सकते हैं, लेकिन नवीन अर्थों का व्यंग्य प्राचीन परिहास के समान प्रयोजन हीन नहीं होता । सोद्देश्यता व्यंग्य का प्राण है । इस के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन वाङ्मय का परिहास आधुनिक युग के व्यंग्य से भिन्न हो जाता है ।

विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने व्यंग्य की परिभाषा अपने अपने ढंग से की है । कई भारतीय विद्वानों ने व्यंग्य को हास्य के प्रभेद के रूप में स्वीकार किया है । लेकिन पाश्चात्य आलोचकों की परिभाषा इससे भिन्न है । वस्तुतः व्यंग्य मात्र हास्य की सृष्टि नहीं करता बल्कि करुणा एवं अमर्ष का संचार करता है । व्यंग्य का स्वरूप हास्य से भिन्न है । उसका प्रयोजन भी अलग है । ऐसी स्थिति में व्यंग्य को हास्य का प्रभेद मानना उसके अर्थ एवं परिभाषा को अत्यधिक सीमित एवं

---

1. रिमझिम - डॉ॰रामकुमार वर्मा - पृ॰13

संकुचित कर देना होगा । इस प्रसंग में विभिन्न भारतीय विद्वानों द्वारा निर्धारित व्यंग्य सम्बन्धी परिभाषाओं पर विचार आवश्यक लगता है - "आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उस से हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है"[1] ।

आपने हास्य की उत्पत्ति व्यंग्य केलिए अनिवार्य माना है । सचमुच यद्यपि हास्य व्यंग्य का एक अंश है तो भी यह व्यंग्य केलिए अनिवार्य नहीं है ।

व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो[2]।

इन की मान्यता यह है कि सुननेवाले को तिलमिलाने वाला ही व्यंग्य है । स्पष्ट है कि व्यंग्य सुननेवालों को आनन्ददायी कदापि नहीं । जहाँ आनंद नहीं वहाँ हास्य की स्थिति कम है ।

"जब किसी व्यक्ति या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त किया जाता है, तब व्यंग्य की सृष्टि होती है । ...... व्यंग्य एक प्रकार की आलोचना है किन्तु जब व्यंग्य में क्रोध आ जाता है, तब हास्य की मात्रा कम हो जाती है[3] ।

---

1. रिमझिम - डॉ॰रामकुमार वर्मा - पृ॰11
2. कबीर - हजारीप्रसाद द्विवेदी - पृ॰164
3. नागरी पत्रिका - बेढब स्मृति अंक, जनवरी 1969 - बेढब बनारसी

यहाँ इन्होंने व्यंग्य को जीवन की आलोचना माना है। ऊपर लिखित दो विद्वानों की व्याख्याओं से एक कदम आगे है। व्यंग्य में क्रोध की संभावना को ये मानते ही हैं। लेकिन क्रोध के संदर्भ में हास्य समझ के परे हैं। अगर क्रोध में हास्य आ जाय तो असमय का रहेगा एवं फीका भी।

व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है। ... यह नारा नहीं है। मैं यह कह रहा हूँ कि जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है जितनी गंभीर रचनाकार की, बल्कि ज्यादा ही। वह जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव करता है। जिन्दगी बहुत जटिल चीज़ है। इसमें खालिस हंसना या खालिस रोना जैसी चीज़ नहीं होती। बहुत सी हास्य रचनाओं में करुणा की धारा है। .... अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सब से उत्कृष्ट रूप होता है[1]।

जहाँ व्यंग्य आक्रोश का रूप लेता है, बुराइयों को हटाने की चेष्टा करता है, विसंगतियों की ओर प्रश्नचिह्न है वहाँ सहानुभूति की गुंजाइश शून्य ही है।

व्यंग्य - मतलब ऐसी अर्थव्यंजना, जिस में सत्य की आत्मा है, निर्भीकता की काया है, हास्य का झीना वस्त्र है और असत्य पर प्रहार करने की तत्परता है। वाङ्-वैदग्ध्य और विलक्षणता दो नासापुट हैं। युद्धोद्धत, प्रहारधर्मी व्यंग्य धीरोदात्त हाथ में जयी अस्त्र होता है, सींकिया प्रयोगी इसे फेंककर अपना ही दांत गंवाता है[2]।

---

1. सदाचार का तावीज़ (कैफियत) पृ. 10 - हरिशंकर परसाई
2. निराला : जीवन और साहित्य - मधुकर गंगाधर, पृ. 76

निराला के सन्दर्भ में उपर्युक्त व्याख्या ठीक है । सचमुच व्यंग्य सत्य की आत्मा है । इस लिए यह व्याख्या ऊपर कथित अन्य विद्वानों से काफी स्पष्ट मालूम पड़ता है ।

"जब घने कष्ट में मन गंभीर हो उठे, तब व्यथा में जो व्यंग्य है, वह भी वहां हो - नहीं तो व्यथा ही वहां कैसे रहेगी"[1] ।

व्यंग्य का वास्तविक उद्देश्य समाज या सोसाइटी की बुराइयों, कमज़ोरियों और त्रुटियों को हंसी उडाकर पेश करना है, मगर इसमें तहज़ीब का दामन मज़बूती से पकडे रहने की ज़रूरत है, वरना व्यंग्यकार मक्कैती की सीमाओं में प्रवेश कर जाएगा"[2] ।

लेखक ने यहां व्यंग्य की वास्तविक उद्देश्य पर काफी प्रकाश डाला है । वास्तव में व्यंग्य सोद्देश्य होता है । इसके द्वारा लेखक सदैव हंसी द्वारा दण्ड देना चाहा करता है, अतः स्वभावतः उस में कुछ चिड़चिड़ापन आ जाता है[3] ।

व्यंग्य के संबन्ध में पाश्चात्य आलोचकों की परिभाषाएं भी यहां उल्लेखनीय है :- "व्यंग्य वह पद्यमय अथवा गद्य रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का, कभी कभी कुछ अतिरंजना के साथ मज़ाक उडाया जाता है । इस का अभीष्ट किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है अर्थात् जो एक व्यक्तिगत आक्षेप = लेख के समान होता है[4] ।

---

1. सीढियों पर धूप में - रघुवीर सहाय - पृ.257
2. तजो - मज़ाह - गुलाम अहमद फुरकत - पृ.17-18
3. हिन्दी साहित्य में हास्य रस - बरसानेलाल चतुर्वेदी - पृ.46
4.

"साहित्यिक दृष्टि से व्यंग्य उपहासास्पद अथवा अनुचित वस्तुओं से उत्पन्न विनोद या घृणा के भाव को समुचित रूप से अभिव्यक्ति करने का नाम है, बशर्ते कि उस अभिव्यक्ति में हास्य का भाव निश्चित रूप से विद्यमान हो तथा उक्ति को साहित्यिक रूप मिला हो। हास्य के अभाव में व्यंग्य गाली का रूप धारण कर लेता है तथा साहित्यिक विशेषता के बिना वह विदूषक की ठिठोली मात्र बन कर रह जाता है[1]।

"ऐसी साहित्यिक रचना जो मानवीय एवं व्यक्तिगत दोषों, मूर्खताओं एवं कमजोरियों - अभावों को आलोचना अथवा निन्दा, उपहास, ठिठोली, ठट्ठे, वक्रोक्ति व अन्य माध्यम द्वारा रोकती है एवं यह आलोचना एवं निंदा कभी कभी सुधार के आशय से की जाती है"[2]।

मैरिडिथ के अनुसार यदि आप हास्यास्पद का इतना अधिक मजाक उड़ाते हैं कि उस में दयालुता ही समाप्त हो जाय तो आप व्यंग्य की सीमाओं में प्रवेश कर जाते हैं"[3]।

---

1. A poem, or in modern use sometimes a prose composition, in which prevailing vices or follies are held up to ridicule, s[ome]times less corr變ectly applied to composition in verse or pros[e] intended to ridicule a particular person or class of persons a lampo on. Oxford English Dictionary Vol.IX p.119

' Satire in its literary aspect may be difined as the expression in adequate term of sense of amusement or disgust excited by the riduculous or tunseemly, provided that humour i[s] a distinctly recognizable element and that the utterance is inverted with literary form. Without humour satire is invective, without literary form, it is mere clownigh feelin[g]
Encyclopaedia, Britannica, Vol.20, p.5

2. Literary composition holding up humour or individul vices, folly abuses or short comings to censure by means of ridicul[e] derision, burlesque, Irony or other method sometimes with an indent to bring about improvement.
Webster's Third New International Dictionary - p.2017

3. If you detect the ridicule and your kindlyness is chilled by you are slipping into the grasp of satire - Idea of Comedy

ए॰ निकाल की राय में व्यंग्य इस सीमा तक कटु हो सकता है कि वह किंचित भी हास्य जनक न हो । व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है । इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता । इस में दया, विनम्रता एवं उदारता का लेश भी नहीं होता । यह व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है । यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है । यह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियां किसी को भी क्षमा किए बगैर उड़ाता है" । स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य विद्वानों ने भी व्यंग्य पर काफी प्रकाश डाला है ।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य प्रचुर मात्रा में मिलता है । धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य सुधारों केलिए इस का प्रारंभ से ही प्रयोग किया गया है । सुधारने की प्रवृत्ति ही व्यंग्य का मुख्य ध्येय है । ए॰ निकाल की परिभाषा के अनुसार व्यंग्य किंचित हास्य जनक हो सकता है। इन परिभाषाओं के प्रकाश में व्यंग्य की परिभाषा यों देना उचित होगा ।

"व्यंग्य समाज एवं व्यक्ति की दुर्बलता, विसंगति, मिथ्याचार, असामंजस्य, अन्याय, अविचार आदि पर प्रहार करता है एवं इन पर हंसता भी है, लेकिन इस हंसी में आनंद की मात्रा कम होती है एवं अधिकतर पीड़ा ही होती है । व्यंग्य कोरा हास्य नहीं है, इसका मूल प्रयोजन मनोरंजन, भी नहीं होता है । व्यंग्य का उद्देश्य समाज एवं व्यक्ति का सुधार करना होता है । व्यंग्य में व्यथाएं उत्पन्न करने वाली विडम्बनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है" ।

---

1. Satire can be so bitter that it ceases to be laugh able in the very leart. Satire falls heavily. It has no moral sen It has no pity, no kindlyness, no maganænimity. It lashed the physical appearance of person; sometimes with unmitigated cruelty. Mx It attacking the charactes of men. It strikes at the manners of the age with a hand that spare not' - An Introduction to Dramatic Theory (New Edn.. Theory of Drama) p.212.

व्यंग्य एक ऐसी कड़ुवी दवा है जिस के द्वारा समाज एवं व्यक्ति की बुराइयों का शमन किया जा सकता है ।

वेब्सटर्स कोश, मेरिडिथ, ए. निकाल एवं रघुवीर सहाय की परिभाषाओं में व्यंग्य में हास्य को कोई महत्व नहीं दिया गया है । आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, बेढब बनारसी एवं गुलाम अहमद फुरकत की परिभाषाओं में हंसी भी व्यंग्य में अनिवार्य सी मानी गयी है । इस सन्दर्भ में हरिशंकर परसाई एवं निकाल की परिभाषाएं अधिक व्यापक एवं संतुलित है।

डा.शेरजंग गर्ग ने भी सभी व्याख्याओं को समेट कर अपनी एक व्याख्या बनाने की कोशिश की । उनकी मान्यता है कि व्यंग्य में आक्रमण की उपस्थिति अनिवार्य है । यही बात ए. निकाल भी प्रस्तुत कर चुके है । पाश्चात्य एवं भारतीय व्याख्याओं से यह समझ में आता है कि हास्य, उपहास, परिहास, वाक्वैदग्ध्य, पैरोडी, वक्रोक्ति, प्रहसन उपालम्भ आदि व्यंग्य को न्यूनाधिक मात्रा में संप्रेषित करते है । इन में से कोई भी रूप व्यंग्य के व्यापकत्व को अपने में समाहित नहीं कर पाता । प्रत्येक रूप किसी न किसी बिंदु पर व्यंग्य के समान होने के बावजूद किसी अन्य बिंदु पर व्यंग्य से भिन्न हो जाता है ।

इस दृष्टि से व्यंग्य का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य रहता है। व्यंग्य "हास्य" से भिन्न हो जाता है । अर्थात् निष्प्रयोजन हास्य कभी व्यंग्य की दायरे में प्रवेश नहीं कर सकता ।

"उपहास" से व्यंग्य इस कारण भिन्न है कि उस में उपहास की आलोचना भी मानवीय करुणा के आवरण में लिपटी हुई मिलती है ।

"परिहास" हास्य के बिलकुल निकट है तो भी उसका व्यंग्य से अन्तर खुद ही स्पष्ट है । व्यंग्य में वाक्वैदग्ध्य निश्चय ही है, होता भी है, बल्कि कोरा वाक्वैदग्ध्य व्यंग्य को कहीं नहीं ले जाता, जब तक उस में सत्य न हो, प्रहार न हो एवं सबसे बढकर मार्मिकता न हो । वाक्वैदग्ध्य में वास्तविक प्रयोजनता की भी ज़रूरत नहीं है । "पैरोडी" में व्यंग्य का होना आवश्यक नहीं है, उसमें निरर्थक हास्य भी हो सकता है, साथ ही पैरोडी की सबसे बडी सीमा है- उसके किसी मूल कृति से जुडा होना । "व्यंग्य" में यद्यपि "वक्रोक्ति" का सहारा लेकर आलंबन पर प्रहार किया जाता है तथापि उसमें सत्य की आभा अवश्य होनी चाहिए, अन्य या वह वाक्चातुर्य से अधिक कुछ नहीं रह जाती । सर्वप्रथम "प्रहसन" नाट्रूप होता है, जब कि व्यंग्य उसकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक होता है । दूसरे, प्रहसन {कामदी} की निर्वैयक्तिकता एवं उसका हास्य के निकट होना उस व्यंग्य की गहराइयों से दूर ले जाता है । जब कि व्यंग्य में स्थितियों के बहंगी को उभारते हुए उसमें हास्य का पुट दिया जा सकता है । इस से उत्पन्न होने वाली हँसी भी प्रसन्निता की नहीं होती । इसलिए "व्यंग्य" को "ट्राजिक कामदी" भी कहा जा सकता है । "उपालंभ" में शिकायतें की जाती हैं, वह भी प्रिय की है । उसमें आलोचना की संभावना नहीं होती है । परिणामत: यह रूप भी व्यंग्य से नितांत भिन्न होता है । निष्कर्ष यह है कि "व्यंग्य" समान लगने वाले इन रूपों से किन्हीं बिंदुओं पर मेल होते हुए भी अपने मूल रूप में प्रतिपल अलग है । उसकी कोई न कोई विशेष्ता उसे इन सभी रूपों से हमेशा अलग स्थिति प्रदान करती है ।

व्यंग्य के काव्यशास्त्रीय आधार पर चर्चा करना भी यहाँ समीचीन लगता है । भरतमुनि ने श्रेष्ठ काव्य के ये लक्षण माने हैं - मृदुललित पदावली, सर्वसुगमता युक्तिमत्ता, नृत्य में उपयोग किए जाने की उपयोगिता, रस के अनेक स्त्रोतों को बहाने का गुण एवं सन्धियुक्तता । इनमें नृत्य में उपयोग किए जाने की योग्यता एवं संधियुक्तता लक्षण पूर्णत: दृश्य-काव्य को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं ।

अग्निपुराण में कहा गया है "काव्य ऐसी पदावली है जो दोष-रहित, अलंकार-रहित एवं गुणयुक्त हो तथा जिस में अभीष्ट अर्थ संक्षेप में भली भाँति कहा गया हो[1]।

भामह एवं दण्डी ने भी काव्य के सिलसिले में यही आदर्श स्वीकारा है । भामह ने "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्[2]" अर्थात् शब्द एवं अर्थ का मेल ही काव्य है ऐसा बताया एवं दण्डी ने शरीरं तावदिष्टार्थ व्यच्छिन्ना पदावली[3]" अर्थात् इष्ट अर्थ से विभूषित पादवली को काव्य का शरीर माना है। वामन की मान्यता है "काव्य अलंकार सहित एवं दोष रहित होता है । उनके अनुसार "सौंदर्य अलंकार[4]" अथात् सौन्दर्य ही अलंकार है । उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा ‖रीतिरात्मा काव्यस्य‖ एवं शाब्दार्थ को काव्य शरीर माना है ।

रुद्रट ने काव्य-लक्षण देते हुए भामह की स्थापनाओं का ही समर्थन किया है, लेकिन आनन्दवर्धन ने पूर्ववर्ती लक्षणों को बेकार एवं अनुपयुक्त मानकर ध्वनि सिद्धान्त को अपनाया एवं उन्होंने ध्वन्यार्थ को ही काव्य की आत्मा ‖काव्यस्यात्मा ध्वनि:‖ सिद्ध की है । आगे बढ़कर कुन्तक ने "वक्रोक्तिजीवित" में वक्रोक्ति अभिहित काव्यार्थ को काव्य माना है ।

काव्य संबन्धी महत्त्वपूर्ण विवेचन विश्वनाथ के "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्[5]" और जगन्नाथ के "रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्[6]"

1· अग्निपुराण - पृ·337 1:6-7
2· काव्यालंकार - भामह - पृ·1-16
3· काव्यादर्श - दण्डी - पृ·1:10
4· काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - वामन - 1,1,2,‖आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली - प्रथम संस्करण
5· साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 1:3
6· रसगंगाधर - जगन्नाथ - ‖निर्णय सागर प्रेस, बंबई षष्ठ संस्करण‖पृ·4

द्वारा हुआ है । उपर्युक्त आचार्यों ने काव्य को अपने अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है किन्तु ये आचार्य काव्य के संबन्ध में सर्वग्राही दृष्टिकोण प्रकट करने में असमर्थ हो गए । भरतमुनि ने नाटकीयता एवं रस, भामह ने समवाय वृत्ति, दण्डी ने सौन्दर्य, वामन ने रीति तथा आनन्दवर्धन ने ध्वनि जैसे सूक्ष्म तत्वों की ओर संकेत किया है । आचार्य मम्मट ने काव्य में रस, गुण एवं अलंकार की स्थिति स्वीकार की है, परन्तु इन में भी रस को सर्वोपरि माना है । मम्मट के अनुसार -

ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः[1] ।।

अर्थात् "मनुष्य के शरीर में प्रधान आत्मा के, जैसे शूरता आदि, गुण होते हैं, वैसे ही काव्य में प्रधान रस के उत्कर्ष का बढ़ावन देने वाले जो धर्म हैं, वे ही गुण कहलाते हैं एवं इनकी स्थिति अचल और नियत रहती है"। अलंकार के संबन्ध में भी मम्मट का यही मत है, यद्यपि उन्होंने अनलंकृत वाक्य को भी काव्य माना है । अलंकार रस के धर्म नहीं है, इसलिए वे रस के साक्षात् उत्कर्ष न होकर शब्दार्थ द्वारा परस्पर संबन्ध से रस का उत्कर्ष करते हैं।

आचार्यों ने काव्यप्रयोजन के संबन्ध में प्रायः व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है एवं काव्य को अर्थ, धर्म एवं काम के अतिरिक्त मोक्ष का साधन भी माना है । भामह ने कला-वैलक्षण्य, प्रीति एवं कीर्ति को भी कला का प्रयोजन कहा है"[2] । लेकिन काव्य प्रयोजन के संबन्ध में इन का मत हैं कि "यश की प्राप्ति, सम्पत्ति-लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा,

---

1· काव्य प्रकाश - उल्लास - 8:66

2· काव्यालंकार - 1,2

अमंगल का विनाश, तुरन्त ही उच्चकोटि के आनन्द का अनुभव एवं प्यारी स्त्री के समान मनभावन उपदेश देने केलिए काव्य ग्रंथ प्रयोजनीय है"[1] । तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मम्मट काव्य को लोकोपजीवी ही मानते हैं । रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था पर बल देते हुए कहा है कि "बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर शक्ति के संवरण में भी उत्साह, क्रोध, करुणा, भय, घृणा इत्यादि की पूरी तन्मयता देखने वाले कवि ही पूर्ण कवि है, क्यों कि जीवन की अनेक परिस्थितियों के बीच ये सौन्दर्य का साक्षात्कार करते हैं[2] । काव्य के संबन्ध में डॉ· नगेन्द्र ने कहा है " "रमणीय भाव, उक्ति वैचित्र्य और वर्णलय संगीत तीनों ही मिलकर कविता का रूप धारण करते हैं"[3] ।

अरस्तु ने कहा है कि काव्य एक कला है - चित्रकार अथवा किसी भी अन्य कलाकार की तरह कवि अनुकर्ता है[4] । त्रासदी एवं कामदी को काव्य के प्रमुख रूप मानते हुए त्रासदी एवं कामदी का अन्तर करते हुए आपने कहा है " कामदी का लक्ष्य होता है यथार्थ जीवन की अपेक्षा मानव का हीनतर चित्रण और त्रासदी का भव्यतर चित्रण"[5] । प्लेटो तो काव्य को नकल की नकल कहते हैं ।

प्रख्यात व्यंग्यकार होरेस के मतानुसार "समस्त उत्तम साहित्य का रहस्य है सद्विवेक"[6] । काव्य के लक्षणों एवं आचार्यों के काव्य संबन्धी विचारों एवं पाश्चात्य विचारकों द्वारा प्रकट की गई ~~मान्यताओं~~ ~~के काव्य संबन्धी विचारों एवं पाश्चात्य विचारकों द्वारा प्रकट की गई~~

1· काव्यं यशसे/र्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।। काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास
2· चिन्तामणि - पहला भाग - पृ·214
3· कविता क्या है - डॉ·नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध - पृ·22
4· अरस्तु का काव्यशास्त्र - अनु·नगेन्द्र - 66
5· वही ।।
6· पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परंपरा - होरेस : सं·सावित्री सिन्हा -

मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि इस संबन्ध में प्राय: सब के भिन्न भिन्न विचार हैं। किसी ने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है तो किसी ने रस को, किसी ने वक्रोक्ति को काव्य केलिए अनिवार्य माना है तो किसी ने शब्द एवं अर्थ की समवाय वृत्ति को। आधुनिक युग में जहाँ रमणीय भाव, उक्तिवैचित्र्य एवं वर्णलय संगीत को कविता मानने की प्रवृत्ति है, वहाँ दूसरी ओर " शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे" को कविता क्यों न माना जाय - इस पर भी बहस उठाई जा रही है। डॉ॰ नगेन्द्र लिखते हैं कि - कोई भी भाव, जिस में हमारे मन को रमाने की शक्ति हो, रमणीय है"।[1]

अब यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या व्यंग्य में रस है? हाँ निश्चय ही व्यंग्य में रस की स्थिति होती है एवं इसलिए व्यंग्य रस सिद्धांत की कसौटी पर खरा उतर सकता है। व्यंग्य में यथार्थ चित्रण होता है। डॉ॰ नगेन्द्र रस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए यथार्थ चित्रण में निहित व्यंग्य के संबन्ध में कहते हैं, "यथार्थ चित्रण में भी रस होता है और व्यंग्य से रस का क्या विरोध। उसमें तो करुण, हास्य, अमर्ष आदि भावों की सत्ता निश्चित रूप से रहती है जो मानवीय संवेदना पर आश्रित होते हैं"।[2] अत: व्यंग्य में नि:संदेह रस मौजूद है जो कि भारतीय काव्यशास्त्र का मूलाधार है। इसके बावजूद काव्य में निहित प्रयोजनीयता, जिसे मम्मट से लेकर पश्चिम के अनेक विचारकों ने काव्य केलिए आवश्यक माना है, व्यंग्य को काव्य-शास्त्रीय आधार प्रदान करती है।

1• कविता क्या है - डॉ॰नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध - डॉ॰नगेन्द्र - पृ॰22

2• रससिद्धांत - डॉ॰नगेन्द्र - पृ॰349

व्यंग्य की जड़ें भारतीय काव्य शास्त्र में ही नहीं अपितु अरस्तु की काव्य मान्यताओं पर बहुत सीमा तक आधारित है । अरस्तु ने त्रासदी एवं कामदी को काव्य के प्रमुख रूपों में स्वीकार किया । अरस्तु के अनुसार "कामदी का लक्ष्य होता है यथार्थ जीवन की अपेक्षा मानव का हीनतर चित्रण और त्रासदी का लक्ष्य होता है भव्यतर चित्रण"[1] ।

व्यंग्य व विडम्बना के काव्य में त्रासदी को एक नाटकीय अंदाज़ में कामदी के रूप में अथवा अगंभीरता से प्र स्तुत किया जाता है । "कामेडी के चरित्रों की सृष्टि जीवन के निरीक्षण एवं अनुभव के फलस्वरूप होती है । उस का हास्य व्यक्तिगत स्तर पर न होकर संपूर्ण सामाजिक स्तर पर होता है और परिहास के उन्मुक्त क्षणों में भी हमें सोचने को विवश कर देता है"[2] ।

यह सत्य है कि कामदी में यथार्थ स्थितियों का अतिरंजना पूर्ण चित्रण किया जाता है, लेकिन व्यंग्य में यथार्थ स्थितियों को सही परिप्रेक्ष्य में, गहरे स्तर पर विडम्बनाओं एवं त्रासदी हो उभारते हुए किंचित अगंभीरता से नाटकीयता का सहारा लेते हुए व्यक्त किया जाता है । यह यह स्वीकार किया जा सकता है कि व्यंग्य में पूरी कामदी नहीं होती, खैर, इस सिलसिले में पूरी गासदी हो सकती है एवं ~~त्रासदी हो सकती है~~ त्रासद-कामदी भी । यह भी हो सकती है कि व्यंग्य में उभारी हुई विडम्बनाएं इतनी कटु, दुःखद और निर्मम हो कि पाठक या श्रोता को तनिक भी हंसी न आए, बल्कि इसके विपरीत वह सोचने को तो विवश ह तथा उसमें क्रोध, आक्रोश एवं अमर्ष के भाव भी उभर आएं । अतः अकेली

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - पृ.223
2. अरस्तु का काव्य शास्त्र - अनु.नगेन्द्र - पृ.11

कामदी से, जब तक उसमें त्रासदी का योग न हो, व्यंग्य का काम नहीं चलेगा। ऐसी स्थिति में व्यंग्य को हास्य से भिन्न मानना पड़ेगा । उसे हास्य की श्रेणी में स्थान ही नहीं । वैसे ही व्यंग्य में हास्य का होना कदापि वर्जित नहीं, लेकिन शुद्ध हास्य को कदापि व्यंग्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता । व्यंग्य का प्रयोजन विसंगतियों की खोज करके उनकी आलोचना इस प्रकार करना होता है कि वे दूर भी हो जाएं ।

डॉ॰ नामवर सिंह ने व्यंग्य के मूल में नाटकीयता को एक बहुत बड़ी संभावना के रूप में देखा है । वे भरत मुनि के "क्रीड नायक" के क्रीडा भाव से उत्पन्न होने वाली विडम्बना को व्यंग्य केलिए बहुत आवश्यक मानते हैं।[1] इस सिलसिले में उन्होंने कविता के प्रतिमान में अब तक इस क्रीडा भाव को उचित स्थान न दिए जाने के कारण "इन कविताओं की आक्रमण क्षमता का भय" भी माना है, पर संरचना की सघनता, शब्दों की मितव्ययिता, शब्दों की विडंबना विनिर्मित जटिलता, भावावेश हीनता एवं विचारों की तीक्ष्णता आदि काव्य गुणों[2] के कारण इन व्यंग्य रचनाओं को महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी मानते हैं ।

निष्कर्ष यह है कि व्यंग्य का काव्यशास्त्रीय आधार हम सब का जाना पहचाना है एवं एक ओर वह प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र की काव्य संबन्धी मान्यताओं को अंगीकार करता है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित काव्य मान्यताओं का समर्थन भी करता है ।

1· कविता के नए प्रतिमान - पृ·172 - 74

2· वही पृ·175

भारतीय काव्यशास्त्र में कहा गया है कि वाक्यं रसात्मकं काव्यम्[1] मतलब यह है रसात्मक वाक्य काव्य होता है । आज भी रसात्मकता को काव्य का आवश्यक अंग समझा जा रहा है । नाट्य शास्त्र कार ने उचित ही कहा है "जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों आदि के संयोग से ‖भोज्य‖ रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से "षाडवादि" रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थाई भाव भी ‖नाट्य‖ "रस" रूप को प्राप्त होते हैं[2] ।

डा॰ नगेन्द्र ने इस की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "रस आस्वाद नहीं हैं, आस्वाद्य है, - अर्थात् अनुभूति नहीं है अनुभूति का विषय है: नवीन शब्दावली में, रस विषयीगत नहीं है, विषयगत है" । एवं "विविध भावों अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव से संयुक्त एवं त्रिविध अभिनयों द्वारा व्यंजित स्थाई भाव ही रस ‖या नाट्य रस‖ में परिणत हो जाता है । जिस प्रकार व्यंजन आदि से संस्कृत अन्न ही भोज्य रस ‖षाडवादि‖ का रूप धारण कर लेता है, इसी प्रकार नाट्य सामग्री ‖विविध भाव + त्रिविधि अभिनय‖ द्वारा प्रस्तुत स्थाई भाव ही नाट्य रस बन जाता है । यहाँ स्थाई भाव अन्न के समकक्ष है और नाट्य-सामग्री व्यंजन, औषधि ‖मसाले‖ आदि के"[3] ।

1· साहित्य दर्पण - 1:3

2· रससिद्धान्त - डा॰ नगेन्द्र - पृ॰79

3· वही -पृ॰79-80

आधुनिक आलोचकों में रस सिद्धांत को लेकर पर्याप्त मत-भेद रहा है एवं नए आलोचकों ने नए यथार्थ वादी तथा जीवन की विसंगतियों की व्याख्या करने वाले साहित्य पर रस सिद्धांत के लागू न होने एवं उसका साधारणीकरण न होने का आक्षेप लगाया है एवं कहा है कि आधुनिक काव्य पूर्णतः नहीं तो अंशतः रस-विरोधी ही है । डॉ॰जगदीश गुप्त ने रस सिद्धांत की रसानुभूति के स्थान पर नए काव्य में उसे सह-अनुभूति कहे जाने पर बल दिया है और कहा है "रसानुभूति के समकक्ष इस सह-अनुभूति की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि इस में रसानुभूमि की तरह व्यक्तित्व और विवेक का परिहार होना आवश्यक नहीं है । कवि और भावक दोनों के व्यक्तित्वों के सह-अस्तित्व में अनुभूति की प्रेषणीयता सम्भव होने के कारण इसे "सह-अनुभूति" कहना न निराधार है, न अनुपयुक्त"[1] ।

इस के आधार पर अब प्रश्न यह उठता है - क्या व्यंग्य में, जिसकी प्रवृत्ति सदा यथार्थ - चित्रण एवं स्थितियों की आलोचना की ओर रहती है, रस होता है॰ क्या व्यंग्य में रसनिष्पत्ति संभव है॰ डॉ॰जगदीश गुप्त ने उक्त पंक्तियों में उचित संकेत दिया है कि रस सिद्धांत की रसानुभूति में क्यों कि व्यक्तित्व एवं विवेक का परिहार हो जाता है, इसलिए सह अनुभूति अधिक उपयुक्त होती है एवं उसमें कवि और भावक दोनों के व्यक्तित्वों, के सह-अस्तित्व में अनुभूति की प्रेषणीयता संभव हो सकती है । स्वयं नगेन्द्र ने भी यह स्वीकारा है कि यथार्थ चित्रण में भी रस होता है और व्यंग्य का रस से क्या विरोध॰ उस में तो करुणा, हास्य, अमर्ष आदि भावों की सत्ता निश्चित रूप से रहती है, जो मूलतः मानवीय संवेदना पर आश्रित होते है"[2] ।

---

1. नई कविता स्वरूप और समस्याएं - पृ॰95
2. रस सिद्धांत - पृ॰249

मुख्यत: व्यंग्य तीन कार्य करता है, यथा आलोचना करता है, मानवीय करुणाओं को उभारता है एवं उपहास करता है, किन्तु उसके मूल में आक्रमण का भाव निश्चित रूप से विद्यमान रहता है । ऐसी स्थिति में यह स्वीकार किया जा सकता है कि व्यंग्य द्वारा चार रसों की निष्पत्ति संभव है, यथा करुणा, रौद्र, वीभत्स एवं हास्य । इन चारों के स्थाई भाव क्रमश: शोक, क्रोध [अमर्ष], जुगुप्सा [ग्लानी] एवं हास है । करुण रस की स्थितियों से करुणा का संचार होता है जो अन्तत: शोक की अनुभूति कराती है, रौद्र रस से स्थितियों, व्यक्तियों आदि के प्रति क्रोध का भाव उत्पन्न होता है, वीभत्स में स्थितियों और व्यक्तियों के आचरणों अथवा विचारों के प्रति ग्लानि का भाव व्यक्त होता है तथा हास्य में स्थितियों, व्यक्तियों की हास्यास्पदता का आनन्द प्राप्त हो सकता है । व्यंग्य की आक्रमण-शीलता में विनोद अथवा हास्य का पुट भी आ सकता है । अत: कभी कभी रस निष्पत्ति की दृष्टि से व्यंग्य में रस का दोहरापन आ जाता है । रस की दृष्टि से व्यंग्य को परखने पर कभी कभी खट्टे, मीठे, चरपरे स्वाद का अनुभव होता है । चार रसों का सम्मेलन व्यंग्य में है, चारों से जो अनुभूति प्राप्त है वह अनुभूति व्यंग्य अकेले कर सकता है ।

जब परिवेश की मार्मिकता को उभारते हुए उसमें व्यंग्य को पिरो दिया जाता है तब करुण रस की निष्पत्ति हो जाती है । करुण रस से ओतप्रोत व्यंग्य मनुष्य मात्र में उदात्त भावनाओं की सृष्टि करता है । यह व्यंग्य को साहित्य की पराकाष्ठा एवं गहराइयों में भी ले जाता है ।

रौद्र रस का स्थाई भाव क्रोध होताहै । क्रोध में आंख एवं मुख का लाल होना, कठोर वचन बोलना इत्यादि अनुभव रौद्र रस के अन्तर्गत ही आते हैं । व्यंग्य में रौद्र रस की स्थिति का सुन्दर उदाहरण "सरोजस्मृति" की वे पंक्तियां हैं, जिन में कवि ने कान्यकुब्जों पर तीख आक्रमण किया है --

ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद

इस विषम बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल - नहीं सुजल ।[1]

प्रस्तुत व्यंग्य भाग में सहानुभूति का लेश भी नहीं होता है । व्यंग्यकर्ता व्यंग्य के आलम्बन के प्रति रौद्र रूप धारण कर लेता है एवं पास में तलवार व बन्दूक न होने के कारण शब्दों से ही निर्ममतापूर्वक प्रहार करता है, तब रौद्र रस की निष्पत्ति होती है ।

वीभत्स रस का स्थाई भाव जुगुप्सा है । इस के द्वारा ग्लानि व घृणा के भाव की अभिव्यक्ति होती है । भ्रष्टाचार, व्यभिचार, नैतिक पतन, सामाजिक बुराइयाँ, छुआछूत, शोषण, रिश्वत आदि अनेक सामाजिक समस्याओं पर व्यक्त होने वाली प्रतिक्रिया जुगुप्सा के भावों की ही निष्पत्ति करती है । इन समस्याओं एवं बुराइयों की आलोचना व्यंग्य द्वारा संपन्न होता है । नतीजा यह निकलता है कि इस प्रकार की बुराइयों पर किये जाने वाले व्यंग्य में जुगुप्सा का भाव स्वयमेव व्यक्त हो जाता है । प्रस्तुत बात की पुष्टि डाॅ॰कृष्णदेव झारी के निम्नांकित विचार द्वारा होती है "जब आलम्बन के प्रति तिरस्कार या भर्त्सना, निन्दा या उपेक्षा का भाव तीव्र होता है, रंजन या आनंद का भाव छिपा रहता है, तो वह व्यंग्य हास्य रस की परिधि में नहीं लिया जाना चाहिए । ऐसा व्यंग्य व्यंग्यमिश्रित घृणा कहलाएगा और वीभत्स रस का विषय होगा[2] । हास्य रस की सीमा को लाँघते हुए वीभत्स युक्त व्यंग्य बुराइयों से लड़ाई करता है, एवं उस में निरत भी है । "भारत-भारती" के कवि ने अपने युग के समाज की आलोचना एवं भर्त्सना करते हुए घृणा का पूर्ण आलम्बन प्रस्तुत कर दिया है --

1· अनामिका - 129
2· वीभत्स रस और हिन्दी साहित्य - पृ॰132

"छाई अविद्या की निशा, हम निशाचर बन रहे,
हा ! आज ज्ञानाभाव से वीभत्स रस में सन रहे,
विद्या बिना अब देख लो, हम दुर्गुणों के दास हैं,
हैं तो मनुज हम किंतु रहते दनुजता के पास हैं,
दायें तथा बायें सदा सहचर हमारे चार हैं,
अविचार, अंधाचार, व्यभिचार, अत्याचार हैं।[1]

प्रस्तुत काव्यांश में वीभत्स रस है, जिस में घृणित, निंद्य, आलोच्य स्थितियों एवं व्यक्तियों को आलम्बन बनाया गया है।

यद्यपि व्यंग्य एवं हास्य की प्रकृति में मूलतः अन्तर है, तथापि साहित्य में घृणा, आलोचना, निन्दा आदि की अभिव्यक्ति के ऐसे बहुत से उदाहरण उपलब्ध हैं, जहां घृणा को हास्य की मखमल में लपेट कर प्रस्तुत किया गया है। डॉ॰कृष्णदेव झारी ने व्यंग्य में हास्य रस की उपस्थिति को हास्यमिश्रित घृणा की संज्ञा दी है[2]।

हास्य रस का स्थायी भाव हास है। व्यंग्य में आलोचना की उपस्थिति के कारण हास्य का यह स्थाई भाव सदा बना नहीं रहता। फिर भी यह निर्विवाद है कि व्यंग्य में हास्य रस भी होता है, हो सकता है।

1· भारत भारती - पृ·122

2· वीभत्स रस और हिन्दी साहित्य - पृ·132

उदा :-

"दिल्ली
हर डिज़ाइन के आदमीनुमा जानवरों का
एक बहुत बड़ा जू है,
एक छोटा
फिर बड़ा
फिर और बड़ा क्यू है।

ऊपरी दृष्टि से पढ़ने पर यह रचना अच्छे-खासे हास्य की निष्पत्ति करती है, तथापि दुबारा गहरे में जाने पर राजधानी दिल्ली में मनुष्य का हर डिज़ाइन का जानवर बनकर इस चिड़ियाघर में होने एवं पंक्तिबद्ध जीवन की नियति * भोगने पर ध्यान जाता है, तो पाठक अथवा श्रोता उदास भी हो सकता है। इसलिए इस व्यंग्य रचना में रस की दृष्टि से हास्यरस और करुण रस का मिला - जुला प्रभाव दृष्टिगत होता है एवं ऐसा ही व्यंग्य ट्रेजिक - कॉमदी का रूप धारण कर लेता है।

उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि व्यंग्य में करुण, रौद्र एवं वीभत्स रस अपने पूरे गुणों के साथ विद्यमान रह सकते हैं, जब कि हास्य रस के साथ यह स्थिति नहीं है। हास्य एक सुखात्मक भाव है, जब कि व्यंग्य में दु:ख, क्षोभ एवं पीडा के भावों की अभिव्यक्ति होती है। हास्य का प्रयोजन आनन्द एवं सुख की सृष्टि करना है, जबकि व्यंग्य मानवीय दु:खों को उजागर करने का काम करता है।

1· धर्मयुग * 12 जुलाई 1970 - सुरेन्द्र तिवारी

निष्कर्ष यह है कि व्यंग्य हास्य की अपेक्षा करुण, रौद्र एवं वीभत्स रसों के अधिक निकट होता है, जबकि हास्य रस से व्यंग्य का नैकट्य आंशिक है, लेकिन वह अनिवार्य नहीं। व्यंग्य में हास्य रस हो सकता है। मगर करुण, रौद्र अथवा वीभत्स रस में से किसी एक का पुट लिए हुए, जबकि शुद्ध हास्य रस में ऐसी किसी मिलावट की गुंजाइश नहीं है।

व्यंग्य के साधारणीकरण पर चर्चा भी यहाँ उचित है। साधारणीकरण का सामान्यत: यही अर्थ है कि रचना एवं रचनाकार के अभीष्ट अर्थ का तादात्म्य दर्शक, श्रोता या पाठक से हो जाय। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - "साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति विशेष या वस्तु विशेष आती है, वह जैसे काव्य में वर्णित "आश्रय" के भाव का आलम्बन हो जाती है, वैसे ही सब सहृदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलम्बन हो जाती है। जिस व्यक्ति-विशेष के प्रति किसी भाव की व्यंजना कवि या पात्र करता है, पाठक या श्रोता की कल्पना में वह व्यक्ति-विशेष ही उपस्थित रहता है"[1]

इसके साथ साथ शुक्ल जी ने यह भी कहा है कि "काव्य का विषय सदा विशेष होता है, सामान्य नहीं, वह व्यक्ति सामने लाता है जाति नहीं"[2]। आपके अनुसार साधारणीकरण मूलत: आलंबन का ही होता है - आलम्बन का अर्थ है भाव का विषय। उसका साधरणीकरण इस प्रकार होता है कि पहले वह कवि के भाव का विषय बनता है और फिर समस्त सहृदय समाज के भाव का विषय बन जाता है"[3]।

---

1. चिन्तामणी भाग - 1 - पृ.229 - 230
2. वही पृ.228
3. रससिद्धांत पृ.202

डॉ॰ नगेन्द्र ने आलम्बन के साधारणीकरण के प्रसंग में अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए कहा है कि " आलम्बन के साधारणीकरण का अर्थ यह नहीं कि उसका व्यक्तित्व ही तिरोहित हो जाता है - अर्थात् वह व्यक्ति न रहकर जाति बन जाता है, उसका व्यक्तित्व तो बना रहता है, पर उस में कुछ ऐसे गुणों का समावेश हो जाता है, जिन के कारण वह समस्त सहृदय-समाज के उसी भाव का विषय बन जाता है - अर्थात् सीता कामिनी मात्र बनकर रह जाती है, यह बात नहीं, वरन् वे अपने शील सौन्दर्य और सामान्य गुणों के कारण सभी के प्रेम का विषय बन जाती है"[1]।

डॉ॰ तारकानाथ बाली ने साधारणीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है - "इस का अर्थ हुआ साधारण करना । काव्य में रामादि विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्पन्न पात्र आते हैं । जब तक उनके वैशिष्ट्य का तिरोभाव न हो, तब तक सामाजिक और उनके बीच व्यवधान बना रहेगा और इस व्यवधान के होते हुए रसानुभूति संभव नहीं, क्योंकि सामाजिक के मन में निज और पर की भावना बनी रहेगी"[2]।
डॉ॰ बाली ने यह भी स्वीकारा है कि "साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है, अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उस में साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है[3]।

1· रससिद्धांत - पृ॰202
2· साधारणीकरण - संप्रेषण और प्रतिबद्धता - पृ॰2
3· वही पृ॰41

व्यंग्य के मूल में आक्रमण एक अनिवार्य शर्त है अथवा स्थिति इसलिए उसके आक्रमण का पूर्णत: साधारणीकरण किस सीमा तक संभव है, यह समझ लेना आवश्यक है । आचार्य शुक्ल के अनुसार काव्य व्यक्ति को सामने लाता है, जाति नहीं, जब कि व्यंग्य व्यक्ति के साथ साथ जाति को भी सामने ले आता है । व्यंग्य में व्यक्तियों के साथ साथ जातिगत दुर्बलताओं पर भी प्रहार किया जाता है, यथा, जवाहरलाल नेहरू, विनोबा आदि नेताओं पर व्यक्तिगत रूप से व्यंग्य किए जाने के साथ साथ नेताओं की जाति गत विशेषताओं एवं दुर्बलताओं पर अगणित व्यंग्य हिन्दी काव्य में उपलब्ध है व्यक्तियों पर किए गए व्यंग्यों में निश्चय ही तीखेपन की धार अपेक्षाकृत ती होती है ।

डॉ॰ बाली के कथन का प्रश्न है कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है, यह संदिग्ध भी है कि कवि की प्रत्येक व्यंग्यानुभूि का साधारणीकरण अवश्य हो जाय । व्यंग्य का विषय गतिशील समाज होत वर्तमान काल के व्यक्ति होते हैं, भ्रष्ट मानसिकतायें होती हैं एवं निश्चय ही व्यंग्य न तो भूत कालीन पात्र होता है नहीं भावी की कल्पनाओं से युक्त । इस परिवेश में कवि या रचनाकार जिन स्थितियों पर, व्यक्तियों पर व्यंग्य करता है, उनसे सम्बन्धित या जुड़े हुए लोगों का साधारणीकरण सहज संभव नह यदि किसी रचना में नौकरशाही, दफ्तरशाही एवं लालफीता शाही पर व्यंग किया गया है, तो उस पर सब पाठकों की प्रतिक्रियाएं एक समान नहीं हो सकतीं । नौकरशाही में पिसने वाले व्यक्ति को अपनी अनुभूति रचनाकार क अनुभूति से मेल खाती मिलेगी, पर वह नौकरशाही के झण्डावरदारों को बुरी तरह तिलमिला सकती है एवं वे उसे निरी बकवास की संज्ञा भी प्रदान कर सकते हैं । नागार्जुन की व्यंग्य रचना "तुम रह जाते दस साल और" में साधारणीकरण असंभव है । क्योंकि सभी व्यक्ति यह स्वीकार नहीं कर सकते कि नेहरू जी के युग में कोई प्रगति हुई ही नहीं, मात्र भ्रष्टाचार फैला है ।

लेकिन दूसरी ओर जहाँ व्यथा, पीडा एवं वेदना को या भ्रष्ट वातावरण को सामान्यीकृत करके उस पर व्यंग्य करने का प्रयत्न है, वहाँ व्यंग्य का साधारणीकरण निश्चय ही संभव हो सकता है। समूचे परिवेश में व्याप्त कोढ को व्यक्त करने वाले कवि अपनी रचनाओं को बूढा, कृतियों को गंजा एवं कविताओं को लंगडा बताकर अपनी नपुंसकता को स्वीकार करता एवं लोगों की अच्छाई एवं आत्मीयता पर भी हमला बोल देता है।

आधुनिक युग के काव्य तथा व्यंग्य केलिए साधारणीकरण को वास्तव में एक समस्या के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। व्यंग्य असाधारण को साधारण बनाने की प्रक्रिया है। क्योंकि यह विशिष्ट एवं महान तक को भी साधारण बना देता है, उसके बडप्पन पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा देता है। भारतीय काव्यशास्त्र के मूल अर्थ में व्यंग्य का साधारणीकरण पूर्णत: संभव नहीं है। तीखा, कटाक्षयुक्त, पैना एवं सच्चा व्यंग्य करने केलिए वास्तव में किसी को आहत करना ही होगा एवं ऐसी स्थिति में कवि की अनुभूति से आलम्बन तो क्या, श्रोता अथवा पाठक का साधारणीकरण भी सहजरूप में संभव नहीं है। व्यंग्य के साधरणीकरण के प्रसंग में, अज्ञेय के साधारणीकरण सम्बन्धी विवेचन के इन शब्दों को स्वीकार किया जा सकता है - "आज जो भी कवि एक क्षेत्र के सीमित सत्य को दूसरे क्षेत्र में भी अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता है, तो उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उसके सम्मुख बस यही मार्ग बनता है कि वह प्रयत्न छोडकर सीमित सत्य को, सीमित क्षेत्र में, सीमित मुहावरे द्वारा व्यक्त करे। इस प्रकार साधारणीकरण करते हुए साधारण के क्षेत्र को संकुचित कर दें।

---

1. प्रयोगवाद और अज्ञेय - शैल सिन्हा - पृ. 140

आक्रामक, कटाक्षयुक्त, क्रांतदर्शी व्यंग्य का साधारणीकरण ठीक उसी प्रकार संभव नहीं है, जिस प्रकार किसी व्यक्ति को दी जानेवाली गाली का साधारणीकरण पूर्णत: असंभव है ।

व्यंग्य की अभिव्यक्ति कई प्रकार से होती है, अत: व्यंग्य के प्रकार भी कई तरह से होते हैं । एक ओर ये प्रकार व्यंग्य करने अथवा लिखने की प्रेरणा पर निश्चित किए जा सकते हैं तो दूसरी ओर उन्हें निश्चित करने में व्यंग्य में पडनेवाले प्रभाव भी एक आधार हो सकते हैं । प्रेरणा के आधारों में वैयक्तिक स्थितियां व्यंग्य किए जाने में पूर्ण रूप से सहायक हो सकती है, तो दूसरी ओर ऐसी निर्वैयक्तिक स्थितियां भी प्रेरक हो सकती हैं, जिनमें किसी व्यक्ति-विशेष का हाथ नहीं होता । वैयक्तिक स्थितियों में व्यक्ति अपने साथ साथ अपने निकट संबन्धियों व व्यक्तियों का सीधे मज़ाक उडाता है, उनपर प्रहार करता है एवं निर्वैयक्तिक स्थितियों में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिवेश व्यंग्य की प्रेरणा दे सकता है, साथ ही निर्वैयक्तिक व्यंग्य में ऐसी स्थितियों की विडम्बना को भी उभारा जात जिन पर किसी व्यक्ति का कोई वश नहीं होता तथा जिनपर नियति की मार अथवा देवी विपत्तियों का दर्द होता है । प्रभाव के आधार पर व्यं के प्रकार निश्चित करने में हमें यह देखना होगा कि व्यंग्य द्वारा पाठक, श्रोता व प्रेक्षक पर कौन सा प्रभाव पडता है । ऐसा व्यंग्य हास्य की सृि करता है, कटु यथार्थ को प्रस्तुत करता है या मानवीय करुणा को उजागर करता है । व्यंग्य में मानवीय दुर्बलताओं पर हँस हँस कर प्रहार किया जा तो कटु-गंभीर होकर यथार्थ विसंगतियों का मुखौटा भी उतारा जाता है । इसके अतिरिक्त व्यंग्य में मनुष्य मात्र के दु:ख दैन्य के प्रति सहानुभूति शील करुणा होती है । इस प्रकार प्रेरणा एवं प्रभाव के आधार पर व्यंग्य का वर्गीकरण संभव है । यथा :-

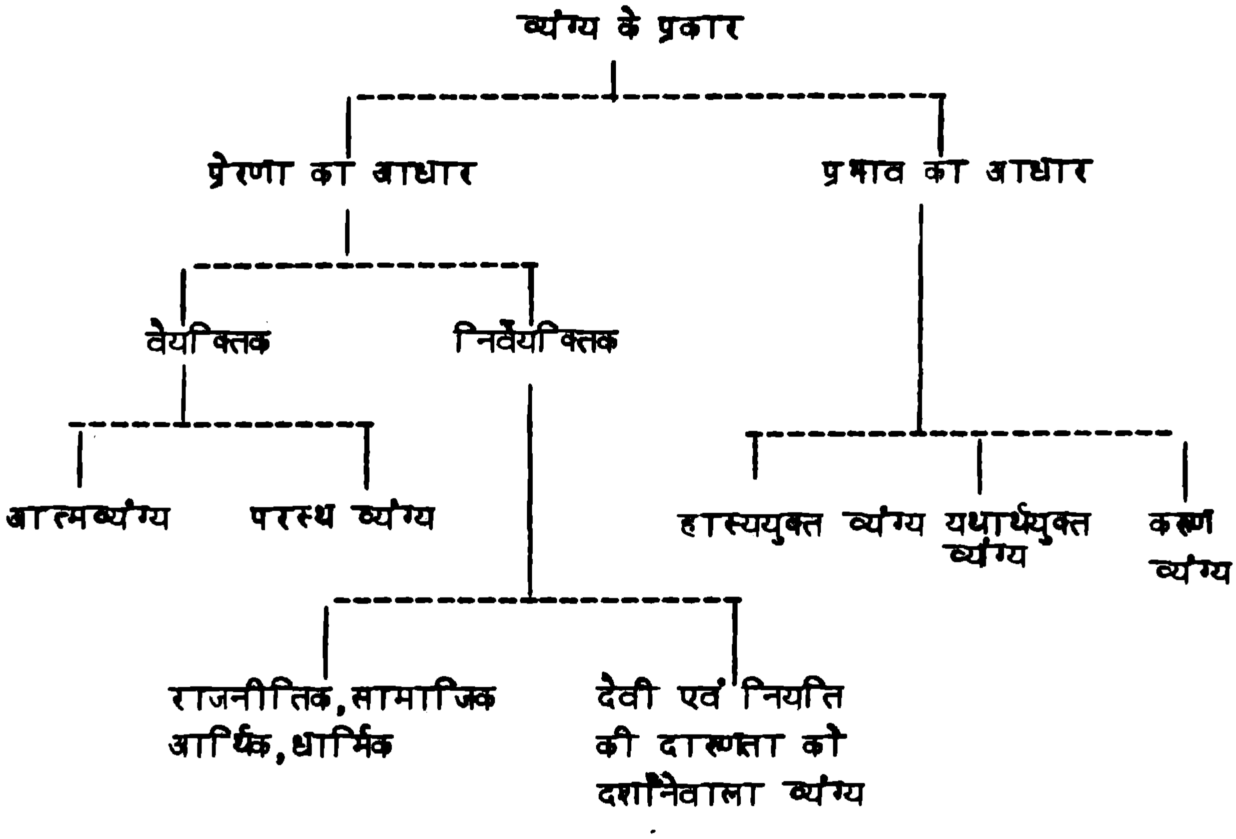

उपर्युक्त तालिका से व्यंग्य के प्रकारों को सहज ही समझा जा सकता है । हर प्रकार के व्यंग्य का अध्ययन आगे के अध्यायों में अलग अलग किया जायगा ।

सफल एवं उत्कृष्ट व्यंग्य वही होता है जिसमें संवेदनशीलता, गंभीरता, बौद्धिकता, सांकेतिकता शिष्टता तथा तटस्थ विश्लेषण है । येह गुण व्यंग्य को तीक्ष्ण, प्रयोजनकारी तथा जीवन की मर्मस्पर्शी विडंबनाओं क छूनेवाला बनाते हैं । हृदय एवं मस्तिष्क के समन्वय के कारण व्यंग्य शिष्ट एवं मार्मिक बन जाता है । काव्य में ऐसे ही शिष्ट व्यंग्य की महत्ता है यही व्यंग्य शिवेतर की क्षति करके व्यक्ति, समाज एवं विश्व केलिए मंगलका बनता है ।

द्वितीय अध्याय

व्यंग्य का आधार

व्यंग्य की अभिव्यक्ति में जीवन दृष्टि का अत्यधिक महत्व है। जिस रचनाकार ने जैसा जीवन जिया होगा, उसी के अनुसार उसकी जीवन दृष्टि का विकास होगा। इसी जीवन दृष्टि का प्रभाव उसके द्वारा रचित व्यंग्य पर पड़ेगा। सादगी तथा आडंबरहीनता से जीवन-यापन करनेवाला या अपने जीवन में इन तत्वों को आदर देने वाला व्यक्ति फैशनपरस्ती एवं कृत्रिमता पर व्यंग्य करेगा, बेईमानी, धोखा - धड़ी, छल कपट एवं जाल साज़ी से सफलता प्राप्त करने वाला मनुष्य इन हथकंडों को गलत समझनेवालों पर व्यंग्य करेगा एवं इसके विपरीत इन माध्यमों का सहारा न लेकर असफल हो जाने वाला व्यक्ति इस प्रकार से सफलता पानेवालों पर व्यंग्य करेगा। इसी प्रकार सामंती एवं अभिजात जीवन-दृष्टि का व्यक्ति सादगी, भोलेपन एवं दिखावट-रहितता तक को अपने व्यंग्य का निशाना बना सकता है।

महात्मा कबीर दास की मान्यता थी कि पुस्तकें पढ लेने से कोई ज्ञानी या पंडित नहीं हो जाता, मनुष्य में मानवीयता तथा प्रेम जैसे गुण अवश्य होना चाहिए, इसलिए उन्होंने कोरे ज्ञानियों एवं उपदेशकों पर व्यंग्य किया । अकबर इलाहाबादी ने उर्दु में पाश्चात्य सभ्यता के अन्धभक्तों पर जमकर प्रहार किया, क्योंकि स्वयं उनकी जीवनदृष्टि उस सभ्यता या संस्कृति के विरुद्ध पड़ती थी ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सच्चे राष्ट्र भक्त कवि थे । उन्होंने अपने लघु जीवन में यह देख लिया था कि देश का उद्धार तभी संभव है, जब देश का धन बाहर जाना बंद हो एवं अंग्रेज़ यहां से चले जाए, देश की अपनी भाषा हिन्दी का विकास हो । भारतेन्दु ने स्वदेशी जनों के आलस्य के साथ साथ भारत को दुर्दशा के कगार पर खड़ाकर देने वाले अंग्रेजों पर भी व्यंग्य किया है ।

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के आधारस्तम्भ थे एवं अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एवं जातीय जागरण के प्रति कृत संकल्प थे, इसलिए उन्होंने जो व्यंग्य लिखा, वह अत्यंत करुण प्रकार का है एवं उस में नष्ट होने वाले ऐसे जातीय एवं राष्ट्रीय मूल्यों की पीड़ा व्यक्त हुई है, जो मूल्यवान थे एवं नष्ट होने योग्य नहीं थे ।

निराला की जीवन दृष्टि के विकास में उनके समय की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियों के साथ साथ उनका वैयक्तिक जीवन संघर्ष भी बहुत अधिक सहयोगी रहा । साहित्यिक मंच पर राजनीतिक नेताओं का सम्मान किया जाता था एवं ये नेतागण साहित्य के विषय में इधर-उधर की चार बातें कहकर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रवाह में सभी को

बहा ले जाते थे । इस सिलसिले में नागार्जुन ने लिखा है - "निराला को उन साहित्यिक समारोहों से गहरी घृणा थी, जिन में इस प्रकार का अभिनय होता था । बड़े बापों के उन पुत्रों के प्रति निराला का आक्रोश बढ़ता ही गया जो विदेशों में ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के बाद यहाँ आकर नेता बने डोलते थे[1] ।

ये परिस्थितियाँ, गरीब-अमीर के अन्तर, जातिवाद, समाज में व्याप्त दासानुदासी भावना से निराला के मन में पहले तीव्र आक्रोश एवं फिर क्रमशः क्षोभ, ग्लानि एवं निराशा पैदा होती गई । क्षीण आर्थिक स्थिति ने उनके हृदय में तीव्र आक्रोशयुक्त एवं मर्मान्तिक व्यंग्य को जन्म दिया एवं उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण कुछ यों बन गया कि इस में व्याप्त समस्त दुःखों एवं यातनाओं की जड़ गरीबी है तथा यही गरीबी अथवा आर्थिक मजबूरी अधिकांश लोगों को चाटुकार बनाती है तथा इस या उस धनी या राजनीतिज्ञ के चरण चूमने को विवश करती है । यही दुःख कवि को निराश बनाता, तो कभी आक्रमण केलिए तैयार होता हुआ, उसे इस प्रकार का व्यंग्य करने-उभारने को विवश करता है -

.... मैं भी होता
यदि राजपुत्र-मैं क्यों न सदा कलंक ढोता
ये होते-जितने विद्याधर - मेरे अनुचर,
मेरे प्रसाद केलिए विनत-सिर-उद्यत कर;
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
सम्मिलित कंठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,

---

1. एक व्यक्ति : एक युग - पृ.49

जीवन चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र ।
इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब समुद्र पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार
चुनती जनता ही राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा - गा गर्दभ - मर्दन स्वर[1] ।

इस के बावजूद निराला की जीवन दृष्टि उनके समूचे परिवेश की देन थी । गाँधीवादी जीवन दृष्टि से प्रभावित कवि भवानीप्रसाद मिश्र की कई व्यंग्य कविताएं गांधीजी के रास्ते को न अपनाने वालों पर प्रहार करती है । स्वदेशी का उपभोग न करने वालों, मात्र पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में रहनेवालों, सत्य की दुहाई देकर भी उस पर आचरण न करनेवालों, विश्वशांति का नारा लगाकर भीतर से युद्ध की तैयारी करने वाले विश्व एवं देश के शासकों और युद्धान्ध राजनीतिज्ञों पर भवानीजी ने भरपूर व्यंग्य किया है । गाँधीवादी जीवन दृष्टि का प्रभाव उनके व्यंग्य पर यह पड़ा है कि उसमें सत्य एवं अहिंसा दोनों ही विद्यमान रहते हैं एवं भाषा भी सादी है ।

---

1. अनामिका तीसरा संस्करण - पृ.85-86

व्यंग्य की सृष्टि में कवि की जीवन-दृष्टि का निश्चय ही बहुत बडा योगदान होता है । युक्तियुक्त, स्पष्ट एवं प्रबुद्ध जीवन दृष्टि के अभाव में कवि श्रेष्ठ, सार्वजनीन एवं कल्याणकारी व्यंग्य नहीं लिख सकता । जिस रचनाकार की जीवनदृष्टि जितनी उदात्त है, करुण स्थितियों की मार्मिकता को जो रचनाकार जितनी गहराई से समझेगा, वह उतना ही श्रेष्ठ, क्रांतदर्शी, मर्मस्पर्शी एवं साहित्यिक व्यंग्य लिख सकेगा । एकांगी, दुराग्रही अनुदान दृष्टि रखकर कोई व्यंग्यकार श्रेष्ठ एवं सच्चा व्यंग्य नहीं दे सकता ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अतः मनुष्य के मन से ही समाज का मन बनता है । जिस प्रकार व्यक्ति की बुद्धि एवं नैतिक कल्पनाओं की वृद्धि होती है उसी प्रकार सारे समाज की बुद्धि एवं नैतिक कल्पनाओं की वृद्धि होती है । जिन बातों की मदद से इन दोनों विषयों में समाज अधिक सुशिक्षित हो सकता हो वही बातें समाज के लिए लाभदायक होगी । प्रत्येक व्यक्ति के मन का झुकाव किसी विशिष्ट बात की ओर होता है जिसके फलस्वरूप उसकी शिक्षा एकांगी होती है । समाज का निर्माण विभिन्न रुचिवाले मनुष्यों से मिलकर होता है इसलिए समाज की शिक्षा अनेकांगी होती है । प्रायः समाज में सभी अंगों की वृद्धि होने की आवश्यकता हुआ करती है एवं इसलिए उसे अनेक अंगों की शिक्षा की भी आवश्यकता होती है । यदि कोई मनुष्य कोई बढिया सुभाषित अकेला ही पढ अथवा सुन ले तो उस से होने वाला लाभ बहुत ही परिमित होता है लेकिन यदि वही सुभाषित दस आदमी साथ मिलकर पढें या सुनें तो उसका लाभ कहीं अधिक होगा । हास्यविनोद व्यंग्य शीलता एक सामाजिक गुण है । इस का विकास सिर्फ एक दूसरे के संपर्क के कारण ही बढ़ता है । सामाजिक व्यंग्य विनोद से सामाजिक सद्गुण एवं समाजहित वाली दृष्टि की वृद्धि होती है ।

जब व्यक्ति का अहं {Id} अभिव्यक्ति का आश्रय लेता है तो उस की अनजान में भी वह अनेक रूपों में प्रकट होता है । कभी कभी उस का अहं उसे एक ही परिस्थिति में एक ही विषय पर परस्पर भिन्न मनोभावों का शिकार बना देता है क्यों कि व्यक्ति का "अहं" "इदम" से सतत संघर्ष करता है एवं किसी भी रूप में व्यक्ति अपने को "इदम" का विजेता घोषित करने की कामना रखता है । इसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित छायावाद का व्यक्तिवाद उसकी परवर्ती कविता में अहंवाद का रूप लेकर प्रकट हुआ जो पूंजीवाद की विकृतियों का परिणाम है । अहंवादी या समाजद्रोही, उच्छृंखल एवं आत्म केन्द्रित हो जाते है या पराजय की भावना से ग्रस्त हो निराशा एवं मृत्युपूजा की भावना से आक्रांत रहते हैं वे समाज को कोसने में और स्वयं को सृष्टि का महान् व्यक्ति घोषित करने में सार्थकता मानते हैं । अपनी हीन भावना को दबाकर उच्चता की भ्रम पूर्ण भावना से पीड़ित इन व्यक्तियों की व्यक्तिवादी कविता और भी अधिक सिमटकर व्यक्तिगत हो गयी । परिणामतः अहंवाद निम्न तीन रूपों में प्रकट हुआ -

{I} आत्मरति, आत्मप्रशंसा एवं झूठा आत्मविश्वास

{II} व्यक्तिगत निराशा, वेदना, प्रेम की असफलता की कहानी एवं मृत्यु की कामना

{III} मधुचर्या, शारीरिक सौन्दर्य का अश्लील चित्रण, मानसिक व्यभिचार एवं झूठी रोमान्स ।

उपर्युक्त प्रकार की भावनाओं में डूबे हुए इन कवियों की कविता का विषय उन्हें शील, शक्ति एवं सौन्दर्य से विरत कर उद्दाम वासनाओं की लहरों में धकेलने लगे । इन के विषय प्रेम की सफलता, असफलता, प्रेमिका का रूप चित्रण, आलिंगन - चुम्बन, अभिसार, विरह की नाना दिशायें, जीवन की अन्य असफलताएं, निराशा की वेदना, मृत्यु की काली

छाया, मृत्यु-पूजा, मृत्यु के बाद का वर्णन, शराब एवं साकी से दिल बहलाव आदि की प्रधानता रही । इस प्रकार की कविताओं में अफीम जैसा मादक प्रभाव मध्य वर्ग को बेसुध बनाकर बढ़ते हुए संघर्ष से विरत करने लगा ।

आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा के आविर्भाव, विकास एवं प्रयोग के मूल में संचालित शक्ति आधुनिक युग की वैज्ञानिकता है । छायावाद से प्रगतिवाद एवं प्रगतिवाद से प्रयोगवाद की ओर बढ़ती हुई स्वच्छन्द काव्य धारा ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रयाण करते हुए उत्तरोत्तर विकास किया है एवं अति नवीनता के तत्वों से अनुप्राणित उसे "नई कविता" के रूप में प्रतिष्ठित किया है । इन कविताओं में व्यक्तिगत मनोविज्ञान, अनुभव मूलक मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निरूपण किया है । इस स्थिति में मनोविज्ञान के बोध के अभाव में कवि एवं कविता का सम्यक अध्ययन संभव नहीं है । जीवनगत सत्यों के संदर्भ में कविता का यही मूल्यांकन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की अपेक्षा रखता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर प्रमुख रूप से आधुनिक हिन्दी कविताओं का वर्गीकरण तीन विभागों में किया गया है -

1. मन एवं मन की नानावृत्तियां, मनोमय भूमिका, बाह्य परिस्थितियां
2. प्रेम
3. दार्शनिक मनोविज्ञान

प्रत्येक मानव का मन कुछ अपनी विशिष्टता लिए हुए है एवं प्रत्येक कवि की कविता मोटे तौर पर एक सिद्धांत पर आधारित होने पर भी जटिल मन की नानादशाओं एवं अन्तर्दशाओं की सूक्ष्मता के कारण कुछ विभिन्नता एवं विशिष्टता रखती है । इन मनोवैज्ञानिक तथ्यों की बहुलता में व्याप्त एक सर्वसाधारण वास्तविक सूत्र के सहारे समीक्षा की गई है ।

"व्यक्ति का मन विश्व को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण है जहाँ मूल वृत्तियों के रूप में पुरातन पुरुष की मूल प्रेरणायें संचित हैं। समय और समाज से प्रभावित मन से निःसृत अभिव्यक्तियों में मानवता के सुख दुःख प्रकट होते हैं[1]। मन के कारण ही मनुष्य की श्रेष्ठता है। मन उसकी सब से बड़ी शक्ति है।

सब ने शरीर शक्ति भिन्न की ही पाई है।
मन ही के आप से मनुष्य बड़ा छोटा है[2]।

शारीरिक शक्ति भौतिक कोटि की होने के कारण शाश्वत चेतनामय नहीं है। उसके बन्धन को उसे स्वीकार करना पड़ता है किन्तु उसी मानसिक शक्ति से उसकी विशिष्टता है जो उसे कम-अधिक महत्व प्रदान करती है एवं आनुपातिक रूप से उनका गौरव बढ़ाती है।

मनुष्य अपनी इच्छा एवं आशा के मुताबिक अपनी मनोवृत्तियों में परिवर्तन कर लक्ष्य के अनुकूल उन्हें ढाल सकता है और अंत में विजयी होता है[3]। विजयी होने केलिए शर्त है, व्यक्ति खुद को पहचाने। उसका आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, आत्मावलंबन और आत्मबलिदान की प्रबल मनोमय शक्ति उसकी विजय को पराकाष्ठा पर पहुँचा देती है"[4]। मानव की प्रवृत्तियों में आत्मा, मन और देह के प्रतीक स्वरूप प्रकाश, पतिंगे और छिपकलियों की वृत्तिगत लाक्षणिकताएं है। उन्हें समझ लेना श्रेयस्कर है[5]। जितना अधिक हम उसके स्वरूप को समझने की चेष्टा करते हैं हम उत्तरोत्तर उसके अनेक रहस्यों का बोध पाते हैं जिसका कहीं और छो[र] नहीं है -

---

1• चक्रवाल - दिनकर - पृ•324 दर्पण
2• यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त - पृ•55
3• बंगाल का काल बच्चन - पृ•53
4• वही पृ•65
5• अतिमा - पंत - पृ•61-62 प्रकाश पतिंगे, छिपकलियां

द्वार के आगे, और द्वार :
मिलेगा आलोक, झरेगी रस धार[1] ।

आंतरिक मन की यह पहचान कितनी आनन्द प्रद है । प्रत्येक प्रयत्न का परिणाम मानसिक रहस्यों के उद्घाटन स्वरूप सुधावृष्टि है । प्रत्येक द्वार पर ज्योतिवर्षा होती है[2] ।

मानवमन के रहस्यों की थाह पाने केलिए नया कवि कितना विकल है -

कौन सफल अभिनय से अपने,
भेद खोल दे मानव मन के।
निज कौशल से प्रश्न गंठीले,
प्रस्तुत करदे सम्मुख मन के[3] ।

इन पंक्तियों में कवि का आशय स्पष्ट है । मन गंठीले प्रश्नों में उलझ कर रहस्यों को आश्रय देता है । इस के स्वरूप का चित्रण मन का वास्तविक परिचय हो सकता है विवेक के द्वारा मानव मन का सच्चा परिचय मिल सकता है[4] । विवेक की आवश्यकता मन की परस्पर विपरीत सद् असद् वृत्तियों के कारण है ।

दो विरोध का एक समन्वय,
मैं ही हूं यह विश्व मानवता[5] ।

---

1. अरी ओ करुणा प्रभामय - अज्ञेय - पृ.11
2. नाव का पाव - जगदीश गुप्त - पृ.11 "मध्यस्थ"
3. चांदनी रात और अजगर - अश्क - पृ.53
4. पद्म प्रमोद - हरिऔध - पृ.59 "मन"
5. मानसी -उदयशंकर भट्ट - पृ. 55-56 "मानव"

मन के दो भिन्न भिन्न स्वरूपों के कारण मानव दानव एवं दोनों हैं । वह संपूर्ण सद्गुणों से संपन्न एवं अवगुणों से ग्रस्त दो विरोधों का एक समन्वय है । मन में ये दो विरोधी वृत्तियां आन्दोलित होती रहती हैं ।

कभी कभी मन का विघटन, विशृंखलता, असंतुलन और अस्वस्थता एवं कभी निग्रह, विरोध दमन और संतुलन के कारण भीतरी तूफानी स्वरूप दबा रहता है और व्यक्ति बाहर से पूर्ण स्वस्थ मालूम होता है, किन्तु हमेशा बाहर से धीर, शान्त, स्वस्थ दिखाई पडनेवाला व्यक्ति अंतर में विपरीत दशा का अनुभव करता रहता है[1] ।

जब मन केलिए संघर्ष की स्थिति असह्य बन जाती है, वह विशृंखल हो टूटे दर्पण के टुकडों सा बिखर जाता है[2] । टूटे मन के विषय में अनेक उपमाएं मन की शोचनीय स्थिति को लेकर दी जाती है -

जिन्दगी !
दो अंगुलियों में दबी,
सस्ती सिगरेट के जलते हुए टुकडे की तरह,
जिसे कुछ लमहों में पीकर,
गली में फेंक दूंगा[3] ।

कवि जीवन को निरर्थक एवं संतप्त पाकर उसे फेंक दिए गए जलते सिगरेट के टुकडों की उपमा देता है । मन की "हीनता ग्रन्थि" व्यक्ति को इस दिशा में सोचने को विवश करती है -

---

1. चक्रव्यूह - कुंवर नारायण - पृ.126 - स्वयं की अभिव्यक्तियां
2. नरेश मेहता
3. स्वप्न और सत्य - भगवत शरण जोहरी - पृ.6

इन्द्रिय द्वार मुंदे रहे,
सूक्ष्म के प्रति
मन अपने ही से युक्त नहीं[1]।

जहाँ तक मन एवं इन्द्रियाँ परिष्कृत होकर उच्च जीवन केलिए सहयोग से कार्य नहीं करते, मन शंका, अनास्था, अविश्वास आदि के कारण शक्ति को संगठित नहीं कर पाता । परिणामतः मन विघटित हो जाता है । व्यंग्य लेखकों की रीति भी यही हो सकती है ।

आधुनिक कवि का मन विशृंखलित है और युग भी विशृंखलित है । एक व्यक्ति अपने भीतर ही संगठन नहीं कर सकता, अनेक मानवों के बीच संगठन कितना कठिन है । व्यक्ति का व्यक्तिवाद ही इसका मूल है जो विवेक खोकर मूल वृत्तियों से प्रेरित "इडा" के प्रभाव में आकर केवल अपनी लालसा पूर्ति करता है[2]।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक प्रवृत्ति में विघटित व्यक्तित्व की कृत्रिमता के दर्शन हो रहे हैं, स्वस्थ मन की सच्चाई नहीं[3]। ऐसी परिस्थिति कवि केलिए अत्यंत निराशाजनक है । वह कविता कैसे लिखें। कविता केलिए अनुकूल परिवेश, समय, प्रवृत्ति कुछ नहीं है । बेहत्तर है वह कविता न लिखें[4]।

सब अर्थ उत्साह छिन गया जीवन का
जैसे जीने के पीछे कोई अर्थ नहीं[5]।

---

1. काला और बूढा चांद - पंत - पृ॰162 "अंतस्फुरण"
2. ओ अप्रस्तुत मन - भरतभूषण अग्रवाल - पृ॰42
3. धरती और स्वर्ग - डॉ॰देवराज - पृ॰74-76
4. अकेले कंठ की पुकार : अजित कुमार - पृ॰49-50 "विरत होओ"
5. धर्मवीर भारती

पूँजीवाद के साथ विकसित व्यक्तिवाद का प्रतिरूप लेकर मध्यवर्गीय व्यक्तिवादी भावनाएं हिन्दी की छायावादी कविता में अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हुई । इन कवियों ने अध्यात्म, अतीत एवं प्रकृति के एकांत भावना क्षेत्र में पलायन कर एवं राष्ट्रीय कविताओं के रूप में और प्राचीन रूढियों, विचारों आदर्शों और काव्य नियमों के बन्धन तोड कर स्वतंत्र और मुक्त काव्य-प्रवाह के रूप में सीधी एवं प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति द्वारा विद्रोह प्रकट किया । अप्रत्यक्ष रूप में वर्तमान से असंतोष और निराशा, घृणा, विराग और साथ ही भविष्य की आशा, उमंग, प्रेम, सद्भावना, सुख, संतोष आदि की भावना लेकर रहस्यवाद में व्यक्त हुई । शासन के दमन चक्र से सुरक्षित रहने केलिए ही काव्य में राजनीतिक स्वतंत्रता की वाणी को प्रतीकात्मक प्रच्छन्न और व्यंग्यात्मक रूप लेना पड़ा"[1] ।

इस सिलसिले में पुनरुत्थान युग की बाह्यक्रांति की पूर्ति स्वरूप आंतरिक क्रांति को छायावाद में महत्व दिया गया । कवि की सामाजिक पर उसके व्यक्तिगत सुख-दु:ख, इच्छा-आकांक्षा ने अधिकार पा लिया, जिसके फलस्वरूप वह अपने सहज ज्ञान का स्वामी न रह दास बन गया । मध्यवर्गीय व्यक्ति की "स्व" चेतना सजग हो उठी और कविता में कई परिवर्तन शील प्रवृत्तियों के दर्शन हुए । अब सामंती और पुनरावर्तनवादी प्रवृत्तियों का स्थान न रहा । समाज के स्थान पर व्यक्तिवाद और व्यक्ति स्वातंत्र्य के आदर्श स्थापित हुए । स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का और बुद्धि के विरुद्ध हृदय का विद्रोह लक्षित हुआ । यथार्थ के बन्धनों से मुक्त हो प्रकृति, रहस्य, कल्पना और क्रांति के स्वप्न लोकों में पलायन की प्रवृत्ति प्रमुख हो उठी[2] ।

---

1. सान्ध्य गीत - महादेवी वर्मा - पृ.9
2. आधुनिक कवि - महादेवी वर्मा - पृ.27

कलावाद, निराशावाद, अहंवाद आदि ह्रासोन्मुख पूंजीवादी प्रवृत्तियों का विकास होने लगा । इन सब का समूचा प्रभाव सामाजिक प्रगतिवाद के उदयरूप में प्रकट हुआ । ये सब प्रवृत्तियां व्यक्ति-केन्द्रित होने के कारण समाज की प्राचीन रूढियों से अपने को मुक्त करने के स्वतंत्र एवं स्वच्छंदता पूर्ण स्वर की प्रधानता रही ।

व्यक्तिवाद के साथ स्वाभाविक रूप में आध्यात्मिकता का विकास हुआ, जिस से उसके अहं की तृप्ति होती रही । इस समय की सभी प्रतिनिधि रचनाओं में प्रकृति के प्रति तादात्म्य की भावना, उसके आंतरि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उस सौन्दर्य के प्रति आश्चर्य एवं जिज्ञासा की भावना, "मैं" के माध्यम से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवृत्तियों के चित्रण द्वारा आत्माभिव्यक्ति की संतुष्टि आदि लक्षित होते हैं[1] ।

युग धर्म के अनुसार प्रेम - विश्व-बन्धुत्व अतीत के गौरव से अपने स्वप्न लोक का निर्माण कर दर्शनों की घाटियों से प्रेरणास्रोत का स्वच्छ सुन्दर माधुर्य लेकर आध्यात्मिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा भी की जिसका प्रमाण निराला का "जागो फिर एक बार" और "राम की शक्ति पूजा" एवं प्रसाद की "कामायनी" में मिलता है । इसी हेतु की सिद्धि केलिए "स्वर्ग", "नन्दनवन", "आकाश सुमन", "ज्योतिर्मय", "क्षितिज के पारे", "उस पार", "निर्जन-वन प्रान्तर", "स्वर्ण-काल", जैसे शब्दों का पुनः पुनः प्रयोग किया गया । वर्तमान के प्रति कवियों के हृदय का असंतोष "टूटे तारे", विकल-रागिनी, हृदय वीणा, मूक रुदन, विरह वेदना, सुप्त व्यथा मग्न हृदय में फूट पडा । काव्य में कलात्मक सौष्ठव की प्रतिष्ठा द्वारा इन कवियों ने जीवन के अभाव और सौन्दर्य की क्षतिपूर्ति करने का प्रयास किया और उसे ऐश्वर्य से अभिमण्डित करने केलिए ही निराशा में भी आशा का आलोक फैलाते हुए स्वप्न कल्पना और अभिलाषा द्वारा उज्ज्वल भविष्य के ~~फैलाते/हुए/स्वप्न~~ द्रष्टा बनने की चेष्टा की[2] ।

---

1. रश्मि (अपनी बात) महादेवी वर्मा

कोई व्यक्ति किन मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओं के वशीभूत होकर व्यंग्य करता है या कोई रचनाकार किस मनोविकार अथवा मनोवैज्ञानिक कारण से व्यंग्य रचना करता है। व्यंग्य का मनोवैज्ञानिक आधार क्या है। उत्तर स्पष्टत: मिलना काफी मुश्किल है । कई मानसिक अवस्थाएं है; जिनमें कोई व्यक्ति अथवा कलाकार व्यंग्य करता अथवा लिखता है । क्रोध, चिढ, ईर्ष्या, द्वेष, हीनता-भाव, करुणा आदि कई मानसिक अवस्थाएं हैं, जिन में लोगों को व्यंग्य करते पाया गया है ।

आत्महीनता की ग्रन्थी से पीड़ित व्यक्तियों को प्राय: व्यंग्य करते देखा जाता है । जन्म से ही आर्थिक संघर्षों में पलने, उनसे निरन्तर जूझते रहने, समाज में उचित एवं सही प्रतिष्ठा प्राप्त न होने के कारण व्यक्ति अपनी विफलता के कारणों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करना चाहता है । वह दूसरों की श्रेष्ठता व तथाकथित सफलताओं को अपने व्यंग्य के हथियार से मटियामेट करके तोष का अनुभव करता है ।

पारिवारिक सामाजिक स्तर, आर्थिक स्थिति आदि में किसी वास्तविक या काल्पनिक हीनता की भावना से व्यक्ति स्वयं को प्राय: श्रेष्ठ समझता है एवं अपनी इस स्वत: आरोपित श्रेष्ठता से प्रोत्साहित होकर अथवा इस तुच्छता से पीड़ित होकर दूसरों की दृष्टि में अपना सम्मान स्थापित करने के लिए, अपने मानसिक आघात की क्षतिपूर्ति केलिए व्यंग्य करता है । इस सिल सिले में शाब्दिक आक्रमण भी करता है ।

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी ने सिद्ध एवं योगियों की रचनाओं पर विचार करते हुए लिखा है कि "सिद्ध और योगी लोगों की आक्रमणात्मक उक्तियों में एक प्रकार की हीन भावना की ग्रंथी या

इन्फीरियारिटी काॅम्पलेक्स पाया जाता है । वे मानों लोमडी के खट्टे अंगूरों की प्रतिध्वनि है, मानोविलम्ब न पा सकने वालों के आक्रोश हैं ।[1]

मनोवैज्ञानिक नारमन एल॰मन ने दूसरों का महत्त्व घटाकर उन पर दोषारोपण करने को एक प्रकार की क्षतिपूरक प्रक्रिया माना है । इस बारे में उनका कथन है "जिन व्यक्ति की अहंता बुरी तरह आकुंचित हो जाती है, वह उसे यह सोच या बताकर प्रशस्त करने का प्रयास करता है कि जहाँ वह असफल हुआ है, वहाँ सफलता प्राप्त करने वालों में क्या-क्या दोष है ।[2] ऐसे व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के बने रहने केलिए आवश्यक भी है । उसकी मौलिक वृत्तियों एवं स्थायी भावों को सामाजिक तथा शिष्ट ढंग से अभिव्यक्त होने का अवसर मिलता रहे अन्यथा व्यक्ति कुंठित हो जाता है । अनेक मनोग्रन्थियाँ उसके अचेतन को आक्रांत करके उसे शारीरिक रोगों एवं मनोविकारों का शिकार बना देती हैं । इस संदर्भ में कला के माध्यम से अपनी पीडा को व्यक्त करने में व्यंग्य कलाकार की अत्यधिक सहायता करता है । आज की परिस्थिति बिलकुल ही संशयवादी, सिनिक एवं खूंखार बना देने वाली है । लेकिन मनुष्य अपने विवेक एवं बुद्धि का सहारा लेकर इस स्थिति परकाबू पाता है । साहित्यकार इस परिवेश में इस प्रकार की मानसिक विजय तिक्त, कटु, विसंगत एवं क्रूर परिस्थितियों में व्यंग्य करके प्राप्त करता है ।

1· कबीर - पृ॰163

2· मनोविज्ञान {हिन्दी संस्करण} पृ॰190

वैसे ही क्रोध एवं आक्रोश की मानसिक दिशाओं में भी व्यक्ति व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है । इस सिलसिले में यह ज़रूरी नहीं है कि आक्रोशी व्यक्ति सर्वदा व्यंग्य को अपना अस्त्र बनाए, किंतु कलाकार के पास इस से सशक्त हथियार दूसरा नहीं होता । जे.सी.ग्रेगोरी ने यह तथ्य स्वीकार किया है कि एक क्रुद्ध व्यक्ति कई प्रकार की प्रतिक्रियाएं व्यक्त करने के साथ साथ व्यंग्य भी कर सकता है"[1] ।

आत्महीनता और क्रोध आदि दिशाओं में व्यंग्य किया जाना स्वाभाविक है, किन्तु व्यंग्य को जन्म देने वाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति होती है "विसंगति" अर्थात् कहा कुछ जाय, किया कुछ जाय, होता कुछ हो और हो कुछ और रहा हो, श्रद्धास्पद जन हास्यास्पद कार्य कर रहे हों एवं हास्यास्पदों को श्रद्धा की गद्दी सौंप दी गयी हो । अत: आत्महीनता, क्रोध, ईर्ष्या जैसी कोई भी भावना न होने के बावजूद, इस प्रकार की विसंगतियां अथवा विडंबनाएं बुद्धिजीवी कलाकार को व्यंग्य की प्रेरणा देती हैं । "आदमी आदमी की बोली बोले ऐसी संगति मानी हुई है । वह कुत्ते जैसा भौंके तो विसंगति हुई और हंसी का कारण । असामजंस्य, अनुपातहीनता, विसंगति हमारी चेतना को छोड देती हैं । तब हंसी भी आ सकती है और हंसी नहीं भी आ सकती - चेतना पर आघात पड़ सकता है[2] ।

---

1. An angry man may send his children to bed, cut off his son with a shilling, change his politics, bring a little suit, write a satire
Nature of laughter. P. 1

2. हरिशंकर परसाई - सदाचार का ताबीज़ - पृ.8

निष्कर्ष यह है कि आत्महीनता, क्रोध, आक्रोश आदि की मानसिक स्थितियां व्यंग्य की सर्जना में सहायक होती हैं, लेकिन इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार वे विसंगत परिस्थितियां ही होती हैं, जो उदात्त जीवन-दृष्टि के व्यक्तित्वों को व्यंग्य करने केलिए बाध्य करती हैं विवेक एवं बुद्धि का सहारा लेकर व्यक्ति इन स्थितियों पर प्रहार करता है, उनके प्रति जनसाधारण का आक्रोश एवं करुणा जगाता है, उनमें निम्नरुचि की मान्यताओं के प्रति वितृष्णा पैदा करता है ।

कबीर दास ने अपने समय की धार्मिक, साम्प्रदायिक रूढियों पर जो व्यंग्य किए हैं, वे उनकी एकनिष्ठ जागरूकता, सच्चाई, बौद्धिकता एवं फक्कड़पन का ही प्रमाण है, न कि किसी ईर्ष्या एवं आत्महीनता का । तत्कालीन विसंगतियों पर कबीर के प्रहार हमें इस संबन्ध में किसी विशेष मनोवैज्ञानिक खोज के लिए प्रेरित न करके, यही स्पष्ट करते हैं कि उस युग में स्पष्ट दीख रही विषमताओं एवं व्याप्त कठमुल्लापन पर उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया है । हिन्दी के व्यंग्यकारों में इसके दूसरे उदाहरण भारतेन्दु हैं । उनके व्यंग्यों में व्यक्तिगत आत्महीनता का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है । उन्होंने "समाज की मर्म वेदना से आहत होकर व्यंग्य-रचना का आश्रय ग्रहण किया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संपन्न परिवार में जन्म लिया था, किन्तु देश की दयनीय स्थिति से दुःखी थे और इसके लिए उत्तरदायी शासकों के प्रति उन्होंने -

"चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता" - जैसी व्यंग्यमयी रचनाओं की सृष्टि की[1] ।

---

1. हरिनारायण मिश्र - नई कविता - पृ. 97

डॉ॰ शेरजंग गर्ग की मान्यता है कि यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि व्यंग्य की प्रकृति को देखकर ही उसका मनोवैज्ञानिक आधार निश्चित किया जा सकता है । तभी पता चलेगा कि अमुक रचना व्यक्तिगत आत्महीनता, क्रोध, अथवा कुंठा से उत्पन्न हुई है या उसके मूल में कोई अर्थवान पीड़ा, विसंगति या करुण प्रसंग मौजूद है । प्रत्येक रचना के मूल में लेखक की कुंठाग्रस्त मानसिक स्थिति मौजूद रहती है । परिवेश एवं तत्कालीन मानसिक स्थिति को आधार मानकर एक हद तक वे अपनी कृति की रचना करते हैं ।

इस काल के राजनीतिक एवं धार्मिक परिवेश का भी अध्ययन यहाँ वांछनीय है । सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई । इसका उद्देश्य भारतीय प्रशासकीय कार्यों में सहयोग देना था । लेकिन बालगंगाधर तिलक के साथ यह स्वाधीनता संस्था के रूप में बदल गई । 1905 में बंगाल विभजन के कानून से भारतीय स्वतंत्रता की भावना एवं एकता भी तीव्र गति में अग्रसर हो गयी एवं भीतर ही भीतर अंग्रेज़ी राज्य को पलटने केलिए क्रांतिकारी संस्थाओं का निर्माण एवं विकास होने लगा । इन संस्थाओं में भाग लेने वालों में से तिलक, हरदयाल, अरविंदघोष, रास बिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुखदेव एवं राजगुरु उल्लेखनीय हैं ।

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा एवं 1919 में समाप्त हुआ । इस युद्ध में भारतीयों के सक्रिय सहयोग को प्राप्त करने केलिए अंग्रेज़ों ने भारत के नेता वर्ग को नाना सब्ज बाग दिखाया । 1919 में रोलट एक्ट पास करके अंग्रेज़ी सरकार ने भारतीयों की रही सही आशाओं पर पानी फेर दिया । जालियांवाला बाग का निर्मम हत्याकांड लगभग इसी समय की दुःखद घटना है । खिलाफत आन्दोलन भी लगभग इसी समय चलाया गया था ।

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य - पृ.8

1920 में कांग्रेस की बागडोर गांधीजी ने संभाली । उन्होंने हिन्दुओं एवं मुसलमानों को सम्मिलित करके असहयोग आन्दोलन शुरू किया । उसमें मुख्यतः विदेशी कपडों, सरकारी नौकरी, कौंसिलों, न्यायालयों, पाठशालाओं, एवं उपाधियों का बहिष्कार कर दिया गया । ब्रिटीश सरकार के दमन चक्र के फलस्वरूप बडे बडे नेताओं जैसे मोती लाल नेहरू, लाजपतराय, आज़ाद आदि को कैदी बना दिया । इसी अवसर में कांग्रेज़ के कुछेक ऐसे सदस्य थे जिनका असहयोग की नीति पर विश्वास नहीं था । वे कौंसिलों तथा धारासभावों में भाग लेने के पक्षपाती थे । उन लोगों ने स्वराज्य पार्टी नामक एक संस्था की नींव डाली । इस संस्था के प्रवर्तकों में चित्तरंजन दास तथा मोतीलाल नेहरू के नाम उल्लेखनीय हैं । कांग्रेज़ की नीति मुसलमानों को प्रसन्न करने की हो गयी थी । इस के फलस्वरूप मदनमोहन मालवीय एवं लाजपतराय आदि कुछेक नेतावों ने हिन्दु महासभा का साथ दिया ।

करीब इसी समय मुहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस को छोडकर मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गए । 1920-30 तक अंग्रेज़ों की कूटनीति का दमन चक्र भी खूब चला । हिन्दु मुसलमानों में साम्प्रदायिकता हिन्दी-उर्दु संबन्धी भाषा समस्या एवं मुस्लिम लीग की स्थापना आदि उनकी दुर्नीति का कुफल है ।

1930 में एक भयंकर सांप्रदायिक दंगा हुआ जिसमें गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे साधक को प्राण न्योछावर करने पडे । अंग्रेज़ों द्वारा डाली गई बाधाओं का वह परिणाम है कि अन्त में भारत को जो स्वतंत्रता मिली वह भी विभक्त रूप में । 1931-35 तक का समय कमीशनों, एक्टों एवं संधियों का समय है । 1937 में निर्वाचन हुए, उन में भारत के अधिकतर प्रांतों में कांग्रेस के मन्त्रिमंडल बने, किन्तु 1939 में उन्हें इस्तीफा देना पडा क्योंकि अंग्रेज़ सरकार ने भारतीयों की सम्मति के बिना भारत के द्वितीय महायुद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी थी ।

1940 में पाकिस्तान की मांग की गयी । युद्ध में भारतीयों ने सक्रिय सहयोग को प्राप्त करने केलिए 1942 में क्रिप्स महोदय भारतीय संघ निर्माण की एक योजना लेकर भारत आए, जिस के प्रति तोष की अपेक्षा रोष अधिक हुआ । 1942 में कांग्रेस ने "भारत छोडो" का प्रस्ताव पास किया जिस के फलस्वरूप असंख्य गिरफ्तारियां हुई एवं प्राय: कांग्रेस के सभी मुख्य नेताओं को जेल में बन्द कर दिया गया । 1945 में ब्रिटेन में "लेबर पार्टी" की सरकार बनी जिसे भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ काफी सहानुभूति थी । अत: 1946 में भारत में अन्तरिय सरकार बनी । लगभग इस समय मुस्लिम लीग की क्षोभोत्पादक एवं अनुदार नीति के फलस्वरूप कलकत्ता, नोआखली, बिहार एवं पंजाब में भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए । 15 अगस्त 1947 को भारत में स्वतंत्रता का स्वर्ण-विहान आया । इस के बाद नव चेतना नव निर्माण में परिणत हो गई । आज के स्वतंत्र भारत राष्ट्र की राजनीतिक चेतना राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय के रूप में विकसित हो रही है । भारत का पंचशील का सन्देश युद्धों की विभीषिका से ग्रस्त मानवजाति केलिए एक अमर देन है ।

इस राजनीतिक परिवेश ने व्यंग्य कविताओं के सन्दर्भ में बहुत असर डाला । कई कवि गण प्रत्येक सन्दर्भ को जागृत करने केलिए तैयार रहे । इस के बावजूद राष्ट्र प्रेम को केन्द्रित करते हुए एवं नेताओं की खिल्ली उडाते हुए उन कवियों ने व्यंग्य रचनाओं की रचना की । वास्तव में हिन्दी की व्यंग्य कविता ने इस नव जागरण और नव राष्ट्रीय चेतना का केवल अनुसरण ही नहीं किया अपितु उसे प्रेरित भी किया एवं उसका मार्ग भी प्रशस्त किया ।

इसी काल विभाग में राजनीतिक आन्दोलन को चारित्रिक दृढता एवं अगाध विश्वास की भावना की प्राप्ति तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों तथा सामाजिक क्रांति के द्वारा हुई । निष्कर्ष यह है कि

अन्ततोगत्वा इन समूचे आन्दोलनों का उद्देश्य था समाज सुधार एवं भारतीय स्वाधीनता । इस उद्देश्य की पूर्ति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में होती रही । इन आन्दोलनों में प्रमुख है ब्रह्म समाज, आर्य समाज, महाराष्ट्र समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, सनातन धर्म, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द एवं श्री अरविंद के वेदान्त दर्शन तथा गांधीजी का मानवतावाद ।

राजाराम मोहनराय ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक थे । ब्रह्मसमाज का मुख्य उद्देश्य ही समाज की कमज़ोरियां, संकीर्णताओं एवं रूढियों को समाप्त करना था । लेकिन कुछ समय के पश्चात वे स्वयं ईसाई रंग में इतने रंग गए कि भारतीय संस्कृति को हीन दृष्टि से देखने लगे एवं अपने पथ से विचलित हो गए । महादेव गोविन्द रानडे के नेतृत्व में अनेक सामाजिक संस्थाओं की नींव डाली, जिसका उद्देश्य भी मुख्यत: सामाजिक सुधार एवं संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना था । दयानंद के ईसाई धर्म एवं प्रचार की प्रतिक्रिया में आर्य समाज की स्थापना की । उनका व्यक्तित्व भी सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में उतना ही क्रांतिकारी था जितना की राजनीतिक क्षेत्र में तिलक का ।

कांग्रेस के राजनीतिक आन्दोलनों की विजय का बहुत कुछ श्रेय स्वामी द्वारा तैयार किए त्यागी एवं कर्मठ आदमियों को है । स्वामी के दो कार्य अत्यंत श्रेष्ठ हैं, राष्ट्रीयता का संचार एवं राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार । "प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान, वेदों के प्रति श्रद्धा-जागरण, शिक्षा संस्थाओं के निर्माण द्वारा शिक्षा का प्रचार, नारी जाति के प्रति-समादर की भावना, निम्न जातियों के प्रति अस्पृश्यता की भावना का निवारण, पुरातन रूढियों का परित्याग । इन सब कार्यों केलिए भारतीय जनता इस समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद की सदा ऋणी रहेगी"[1] ।

---

1. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - शिवकुमार मिश्र
{आठवां संस्करण} 1973 - पृ.424-425

थियोसोफिकल सोसाइटी के द्वारा ऐनिबेसेन्ट जैसी पूज्या विदेशी स्त्री, जो अपने आपको पूर्वजन्म की हिन्दू तथा हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ भी मानती थीं, ने देश की राष्ट्रीयता को जागृत किया । इन्होंने ने विज्ञान की अति बौद्धिकता का विरोध करके भारतीय आध्यात्मिकता का उत्थान किया । इस सिलसिले में परमहंस रामकृष्ण तथा विवेकानन्द का नाम मशहूर है । इन लोगों ने एक ओर राष्ट्रीयता का प्रचार किया एवं धर्म के सच्चे स्वरूप को व्यावहारिक रूप में मौजूद कर दिया । इनके गहन चिन्तन एवं आध्यात्मिकता की हिन्दी - साहित्य पर खास कर काव्य साहित्य पर गहरी छाप है ।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर का आस्तिकतापूर्ण मानवतावादी दृष्टिकोण एवं रहस्यवाद, परमहंस रामकृष्ण एवं ऐनिबेसेन्ट से प्रभावित है; उन्हें ईसाइयों की देन कहना उचित नहीं रहेगा । इन समूची विचारधाराओं का हिन्दी के छायावादी काव्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । अरविंद पहले क्रांतिकारी राजनीति के नेता और बाद में तत्वदृष्टा परमयोगी थे । इन की रचनाओं में आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति है । इनके योग में कर्म, उपासना एवं ज्ञान का समन्वय है । इनके अतिमानववाद में पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की भावना है । समूचे हिन्दी काव्य पर अरविंद दर्शन का प्रभाव मौजूद है । गाँधीजी का जीवन दर्शन गीता का अनासक्ति योग है । सत्य एवं अहिंसा उन के शस्त्र है जिनके द्वारा उन्होंने भारत-स्वतंत्रता के स्वप्न को सत्य में परिणित कर दिखाया । गाँधीजी ने भारतीय जनता में आत्मबल, नैतिकता, दृढता, उदारता एवं चारित्रिक गुणों का विकास किया । विशेषत: हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के द्वितीय चरण में गाँधीवादी विचारधारा का स्पष्ट ही प्रभाव है । भारतेन्दु भी राष्ट्रीयता-वादी हैं । गुप्त गाँधीवादी, प्रसाद आनन्दवादी तथा पंत क्रमश: गाँधीवादी,

साम्यवादी एवं अरविंदवादी हैं । हिन्दी के काव्य साहित्य इन दर्शनों से भर पूर है । व्यंग्य भी लगभग कई कवियों ने प्रस्तुत किया है, जो राजनीतिक एवं सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों को समाप्त करने केलिए ही था ।

भारत में अंग्रेज़ी शासन की स्थापना से जहाँ एक ओर राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में दयनीय शोषण हुआ, वहाँ दूसरी ओर आंगल भारत संपर्क तथा ईसाई मत प्रसार की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में धार्मिक एवं सामाजिक सुधार में एक नवचेतना भी आई । इन धार्मिक आन्दोलनों तथा सामाजिक क्रांतियों के द्वारा बाल-विवाह, मिथ्या रूढियों, जाति-भेद, धार्मिक मत भेद, समुद्रयात्रा निषेध, दहेज-प्रथा, पूंजीवाद, जमींदारी प्रथा और अन्धविश्वासों का घोर विरोध किया गया । विधवा-विवाह का समर्थन किया गया एवं अछूतोध्दार पर बल दिया गया । शोषित एवं पीडित समाज तथा नारी के प्रति संवेदना प्रकट की गई । मानवतावाद तथा आध्यात्मिकता का प्रचार हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात सबको विकास केलिए समान अवसर मिला ।

अंग्रेज़ों ने रेल, तार, डाक आदि की व्यवस्था अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता की, सुविधा की दृष्टि से की । शिक्षा का प्रचार भी कदाचित् विशाल साम्राज्य के चलाने केलिए सस्ते मुंशियों के उत्पादन के निमित्त था । उनकी यह स्वार्थ-सिद्धि का यह चक्र उलटकर उनका ही मर्मच्छेदी बना । महंगाई, अकाल, टैक्स एवं दरिद्रता भारतेन्दु युग की प्रमुख आर्थिक समस्यायें हैं । इस का हुंकार-नाद तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर है । यही कारण है कि कांग्रेस ने राजनीतिक स्वाधीनता के साथ आर्थिक स्वतंत्रता की भी प्रबल मांग की । 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेज़ों ने अपने आततायियों को तो घसियारा बना दिया एवं अपने समर्थकों को बडी बडी जागीरें प्रदान कर जमींदारी प्रथा का प्रोत्साहन किया ।

किसानों पर मालगुजारी का बोझ लादकर जमींदारों के अत्याचारों को प्रश्रय देकर अंग्रेज़ों ने किसानों को अत्यधिक दीन हीन बना दिया। प्रथम महायुद्ध के बाद कांग्रेस ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के द्वारा अंग्रेज़ों की औद्योगिक नीति तथा आर्थिक शोषण का विरोध किया। प्रेमचंद तथा उनके समकालीन साहित्य में इसकी स्पष्ट छाया है। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात भारत को विश्वव्यापी महंगाई एवं बेरोजगारी का शिकार होना पड़ा। पूंजीवाद का बोलबाला हो जाने के कारण श्रमिक एवं कृषक वर्ग शोषण की चक्की के दो निर्मम पाटों में बुरी तरह पिसे। अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति में कुछ परिवर्तन हुआ। उन लोगों ने अपने साम्राज्यवादी हितों की सिद्धि केलिए भारत की औद्योगिक उन्नति की, किन्तु उससे शोषण बढ़ा कम नहीं हुआ।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश की आर्थिक स्थिति में यथेष्ट सुधार हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य व्यवसायों एवं उद्योग धंधों के प्रचार प्रसार के द्वारा राष्ट्र की आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर है।

आधुनिक काल का हिन्दी साहित्य विषय एवं शैली दोनों क्षेत्रों में अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न है। इस भिन्नता का कारण भी तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक एवं धार्मिक चेतना है, वहां इस दिशा में बाह्य संपर्क तथा विविध साहित्यों के प्रभाव ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

रीतिकाल का अधिकतर साहित्य राजमहलों में पल रहा था जो कि अब सहर्ष झोंपड़ियों में आकर जनता के सुख दुःख की बात कहने लगा। रीतिकालीन साहित्य नारी के कुच कटाक्ष के सीमित कटघरों में

बन्द था जब कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट उदारता, व्यापकता एवं विविधता आई, जिसके फलस्वरूप उसने विशाल जन-समूह को खुली आंख से देखा । अतः बताया जा सकता है कि रीतिकालीन साहित्य में निम्नांकित प्रवृत्तियां दृष्टि गोचर हैं - ऐन्द्रियता एवं रसिकता प्रधान शृंगारिकता, जिस में जीवन के संतुलित दृष्टिकोण का अभाव है, अलंकरण प्रवृत्ति के अनावश्यक मोह, रीति निरूपण, प्रकृति का परंपरा-मुक्त चित्रण, विशिष्ट अभिव्यंजना प्रणाली, सामन्ती वातावरण में पुष्ट होने के कारण जीवन के प्रति अत्यंत सीमित एवं संकुचित दृष्टिकोण, यांत्रिक, रूढिबद्ध तथा अवैयक्तिक जीवन दर्शन, वीर रस, भक्ति एवं नीति संबन्धी कविता, मुक्तक शैली की प्रधानता तथा काव्य के विविध रूपों का अभाव और व्रज भाषा का प्रयोग ।

संक्षेप में रीति कालीन साहित्यिक भाषा, भाव एवं शैली सभी कुछ रूढिग्रस्त थीं जो कि बदले हुए आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थी; अतः आधुनिक हिन्दी साहित्य में इन सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण क्रांति हुई ।

"भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार है, जिस में काफी सीमा तक संधि साहित्य का निर्माण हुआ । भारतेन्दु युग का साहित्य हिन्दी के विकास क्रम को स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता है; किन्तु पुरानी परंपरावों और मर्यादाओं की रक्षा करते हुए ही । द्विवेदी युग के साहित्य में विषयगत और कला गत आमूलचूल परिवर्तन हुआ । छायावादी युग के साहित्य को अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक परंपराओं का प्रतिक्रियात्मक एवं चिरस्मरणीय महान् आन्दोलन समझना चाहिए । प्रगतिवादी साहित्य में विश्व मानवता का स्वर मुखरित है । इस साहित्य के विषय और कलागत अपनी मान्यताएं हैं[1] ।

---

1. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - शिवकुमार मिश्र - पृ.427

आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरंभ उस समय हुआ जब कि रीति भक्ति कानन उजड़ चुका था और रीतिकाल के कवि का कोकिल कंठ नीरस, कुछ कुछ सूना और अवरुद्ध - सा हो गया था । यह सब कुछ बदलते हुए युग का परिणाम था । सन् 1850 से आधुनिक युग का आरंभ होता है जब कि अंग्रेज़ी शासन पूरी तरह प्रतिष्ठित हो जाता है । इस नवीन विदेशी शासन के संपर्क से भारत में एक नवीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं साहित्यिक चेतना का स्वस्थ आर्विभाव होता है[1] ।

यह पृष्ठ भूमि हिन्दी साहित्य में व्यंग्य कविताओं का आधार रहा । भारतेन्दु काल में अंग्रेज़ी शिक्षा, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति के प्रभाव से भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन में बड़ा परिवर्तन आया, जिस के फलस्वरूप साहित्य की परम्परित रूढ़ियों का नाश हुआ एवं साहित्य में नवीन भावधारा प्रवाहित होने लगी ।

भारतेन्दु कालीन कवियों ने पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद, बुद्धिवाद यथार्थवाद एवं नवीन सांस्कृतिक चेतना से प्रेरित होकर काव्य साहित्य को नवीन रूप प्रदान किया । उन्होंने हास्य एवं व्यंग्य का संबल लेकर देश में फैली कुरीतियों की कटु आलोचना की । भारतेन्दु काल से पहले हिन्दी काव्य साहित्य में हास्य एवं व्यंग्य को प्रमुख रूप से काव्य का विषय बनाने की प्रवृत्ति बहुत अल्पस्वरूप में दृष्टिगोचर होती है ।

---

1. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - शिवकुमार मिश्र - पृ.427-428

कबीर ने व्यंग्य को अपने काव्य का विषय बनाकर तत्कालीन धर्माडंबरों एवं विकृतियों की आलोचना की थी, किन्तु उन में हास्य का अभाव होने के कारण उनकी सरसता नहीं आपायी । किन्तु तुलसी के काव्य में जो सामाजिक हास्य का पुट मिलता है वह उनके ग्रन्थों की विशालता देखते हुए नगण्य - सा है । सूर ने उद्धव एवं गोपियों के मध्य मात्र प्रेम व्यंग्य की अवतारणा की । प्राचीन काव्य में कवियों ने रूढ़ि पालन करते हुए कंजूसों अथवा भोजन प्रेमी पेटू ब्राह्मणों के तथा विदूषकों के द्वारा हास्य की व्यंजना की थी, किन्तु यह हास्य लोक मंगल के रूप में मुखर नहीं हो पाया था ।

संवत् 1878 में अलीमुहिब खां {प्रीतम} आगरा निवासी ने "खटमल बाईसी" नामक एक हास्य रस की रचना प्रणीत करके शिष्ट हास्य की अवतारणा की । प्रस्तुत "बाईसी" में क्षुद्र एवं महान में जो मूल अभेद होता है उसकी व्यंजना है, जो कि काव्य गत हास्य परंपरा में एक नवीन स्वर था । भारतेन्दुकाल में साहित्यकारों ने हास्य व्यंग्य को नवीन उपयोगी, लोक मंगलकारी रूप प्रदान किया । इस से जनता का मनोरंजन तथा जनहित, दोनों ही उद्देश्यों की सिद्धि की । नव चेतना से अनुप्राणित भारतेन्दु कालीन कवियों ने पुरानी लकीर के फकीर, नए फेशन के गुलाम, नोच खसोट करने वाले अदालती अमलों, मूर्ख एवं खुशामदी रईस, नाम या दाम के भूखे देश भक्त इत्यादि को अपने हास्य-व्यंग्य परिपूरित काव्य का आलम्बन बनाया और इस के माध्यम से तात्कालिक, धार्मिक मतमतान्तर जनता की कूप मंडूकता, अशिक्षा, मदिरापान, जुआ खेलने की आदत, विलासिता, विदेशी शासन एवं उसके शोषक रूप, अदालत, फेशन रिश्वत, टेक्स, जातिगत वैमनस्य, बालविवाह, वृद्धविवाह, बैर-फूट, रोग, आलस्य, अकाल, महामारी, विद्वेष इत्यादि की कटु आलोचना की ।

भारतेन्दुकालीन कविगण हँसी-ठट्टे के बीच अनेक ऐसी बातें कह गए जिन में, मन पर तीव्र आघात पहुँचा कर, मनुष्य को सुधार के मार्ग पर लाने की शक्ति थी । उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों पर बड़े तीक्ष्ण व्यंग्य किए । समाज में धार्मिक पाखण्डियों के कुकृत्यों की पोल खोल कर कवियों ने उनकी विकृतियों एवं यथार्थता पर बड़ा व्यंग्य किया है । उदाहरण :-

ब्राह्मण सब छिपि पियत जामैं जानि न जाय ।
पोथी के चोंगान भरि बोतल बगल छिपाय ।।
वैष्णव लोग कहा वहीं कण्ठी मुद्रा धारि ।
छिपि छिपि के मदिरा पियहिं, यह जिय माँझ बिचारी ।।
होटल में मदिरा पियें, चोट लगे नहीं लाज ।
लोट लए ठाढे रहत होटल देवे काज[1] ।

भारतेन्दु के अशिक्षित, ज्ञानहीन, लोभी, पाखण्डी पुरोहितों पर किया गया यह व्यंग्य द्रष्टव्य है -

दर्भ गट्ठ दाबे बगल लोटिया लीने हाथ ।
चले जात जजमान के, पीछे पीछे साथ ।
कोउ गंगा तट पहुँचि, तरपन रहे कराय ।
मंत्र न जानेमल रहे, गबड़ गबड़ बतुआय ।
देवालय में बैठि कोउ, पिण्डा रहे पराय ।
बरकत बितावत सुधि के सुंघनी औ मुँह बाय ।
आवे जाय न मन्त्र कछु, पढे लिखे हैं नाहिं ।
धरू पैसा धरु दच्छिना, इतनो बोलत जाहिं ।।
बहुतेरे यजमान के, आर रहे चिल्लाय ।
दे पूरी चण्डाल तैं, रहे सुड पिरवाय[2] ।

---

1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दुग्रन्थावली

भारतेन्दु ने काशी जैसे तीर्थस्थानों में फैले व्यभिचार एवं पाखण्ड तथा काशी में रहने वाले हीन चरित्र निवासियों तथा वहाँ की गन्दगी का बड़ा ही व्यंग्यपूर्ण तथा यथार्थ चित्रण किया है, जैसे -

देखी तुमरी कासी, लोग, देखी तुमरी कासी ।
जहाँ बिराजैं विश्वनाथ विश्वेश्वरजी अविनासी ।
आधी कासी भाँट-भंडेरिया ब्राह्मन औ सन्यासी ।
आधी कासी रण्डी मुण्डी राँड खानगी खासी ।।
लोग निकम्मे भंगी गंजड लुच्चे बे-बिसवासी ।
यहा आलसी झूठे शुहदे बे - फिकरे बदमासी ।
मैली गली भरी कतवारन सड़ी चमारिन पासी ।
नीचे नल से बदबू उबलें मनो नरक चौरासी ।

आर्यसमाजी कवि श्री नाथूराम शंकर शर्मा ने अंग्रेज़ी सभ्यता तथा ईसाई धर्म का अनुकरण करने वाले लोगों की इस प्रकार खिल्ली उड़ाई है -

ईस गिरिजा को छोड़ यीशु गिरजा में जाय,
"शंकर" सलोने "मोन" मिस्टर कहावेंगे ।
बूट पतलून कोट कम्फर्टर टोपी डाटि,
जाकट की पाकट में बाच लटकावेंगे ।
घूमेंगे घमण्डी बने रण्डी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरण्डी मीट होटल में खावेंगे ।
फारसी की छार उड़ाय इंगरेज़ी पढ
मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे ।

---

1. प्रेम जोगिनी - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग-1
पृ॰333

भारतेन्दु काल में पढे लिखे बेकार, सरकारी नौकरियों केलिए केलिए लालायित ग्रेजुएटों की कमी नहीं थी । इनकी बेकारी पर एक तीक्ष्ण व्यंग्य का उदाहरण निम्न लिखित है -

तीन बुलाए तेरह आवें ।
निज निज बिपता रोइ सुनावें ।
आखौ फूटे भरा न पेट ।
क्यों सखि सज्जन नहि ग्रेजुएट[1] ।।

इन दिनों में लोग यशलाभ एवं झूठी प्रशंसा के लाभ में ब्याह, जनेऊ इत्यादि सामाजिक संस्कारों में धन का खूब अपव्यय किया करते थे । इसकेलिए वे घर के बर्तन तक बेच डाला करते थे एवं कर्ज भी लिया करते थे । ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हुए श्री प्रतापनारायण ने लिखा है -

लोटिया थारी कान्हि ही लहनदार लें ढोय ।
होय तारीफ बरात की जन्म सुफल तब होय[2] ।।

बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी "सभ्य बीबी की चिट्ठी" में उन अंग्रेज़ी पढी - लिखी स्त्रियों पर व्यंग्य किया है जो अंग्रेज़ी सभ्यता से प्रभावित होकर भारतीय नारी के गुणों को भूल गयी थी -

---

1. "नए जमाने की मुकरी" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग - 2 पृ.810
2. सभ्य बीबी की चिट्ठी - गुप्त निबन्धावली - भाग-1, पृ.669

कहाँ है टेनीस घर दिखलाव, वहाँ मछली का बना तालाब।
बात वह अगली सब सटकी, बहू में जब थी घूंघट की।
मजा अब सुख का पाया है, स्वाद शिक्षा का अघया है ।
खुले अब नैन नींद गई टूट, बुद्धि के पर आए है फूट[1] ।

भारतेन्दु काल में अंग्रेज़ों के आर्थिक शोषण एवं आए दिन के अकालों, महंगी एवं बेकारी से जनता अत्यन्त दुखित हो उठी थी । इस समय जहाँ एक ओर जनता भूख से तड़प कर अपने बच्चों तक को बेचने केलिए विवश हो रही थी वहीं अंग्रेज़ी सरकार के पिट्ठू झूठे मान-गौरव के आकांक्षी भारतीय अंग्रेज़ों से खिताब तथा झूठा सम्मान प्राप्त करके अपने स्वार्थ के कारण गरीबों का गला घोंट रहे थे । ऐसे उपाधि प्राप्त भारतीय, अंग्रेज़ सरकार के अन्यायपूर्ण शासन के मेरु स्तम्भ थे, जिनके बल पर विदेशी सरकार देशवासियों का कसकर शोषण कर रही थी एवं देशवासी इस शोषण के कारण भूख की ज्वाला तथा अकालों के महायज्ञ में अपने आप की आहुति दे रहे थे । देश वासियों के हितों को कुचल कर अंग्रेज़ों से खिताब प्राप्त करने केलिए लालायित भारतीयों की "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित निम्नांकित कविता में कटु एवं व्यंग्यपूर्ण आलोचना की गयी थी, साथ ही इस में संवत् 1953 के अकाल से पीड़ित जनता का बड़ा ही यथार्थ वर्णन भी हुआ है ।

संवत् उनइस सौ तिरपन माँ पड़ा हिन्द में महा काल ।
घर घर फाके होने लागे, दर दर प्रानी फिरें बेहाल ।
गेहूँ चावल साँवा मकरा, सबे अन्न एक भाव बिकाय ।
बिन पैसा सब छाती पीटे, अब तो हाय रहा नहिं जाय ।।

---

1. सभ्य बीबी की चिट्ठी - गुप्त निबन्धावली भाग - 1, पृ.666

कोई पात पेडन के चाबे कोई माटी कोई घास चबाय ।
कोई बेटवा बेटियाँ बेचैं अब तो भूख सही नहिं जाय ।।
कोई घर घर भीखो मांगो कोई लूट पाट के खाय ।
बहुत लोग जो अन्त देते हैं राम निहोरे करे सबाब ।।
बहुत लोग देते हैं फाँसी अरु मलिका से चहैं खिताब ।
सी·ए·आई· के एस·आई·राय बहादुर केर खिताब[1] ।

भारतेन्दु काल में सरकारी अमले अशिक्षित जन साधारण का घूस के रूप में बड़ा शोषण करते थे । दूसरी ओर अंग्रेज़ सरकार के नित नए टैक्सों से जनता अत्यधिक पीड़ित हो गयी थी । 1942 ई· में इनकम टैक्स लगने पर श्री·बदरीनारायण चौधरी "प्रेमधन" ने होली के नकल या मोहर्रम की शकल में इसकी बड़ी व्यंग्यपूर्ण आलोचना की –

रोओ ! सब मुंह बाल बाल । हय हय टिक्कस हाय हाय ।।
रोज कचहरी धाय धाय । अमलन के ढिग जाय जाय ।।
आमला सब हर खाय हाय । दूना टिकस बताय हाय ।
स्वान सरिस मुंह बाय बाय । घूस भली विधि खाय खाय ।।
पीछे ज्ञता बताय हाय । टिक्कस ले धरिधाय धाय[2] ।।

इसी प्रकार भारतेन्दुजी ने, पहले ही अपने ही अपने उर्दू के स्यापे में उर्दू बीबी का खूब मजाक उड़ाया था । उन्होंने अपनी "बकरी विलाप" कविता में मांसाहारियों की पशुता एवं बकरी की दीनता का

1· भारतेन्दु युग – डॉ· रामविलास शर्मा – पृ·12
2· प्रेमधन सर्वस्व – पहला भाग – पृ·183 {पहला संस्करण}

वर्णन करके मांस भक्षकों पर बडा तीक्ष्ण व्यंग्य किया । अमानत के इन्दर सभा जैसी अश्लील वासनोद्दीपक कृति पर, व्यंग्य करते हुए उन्होंने "बन्दर सभा" की हास्य व्यंग्यपूर्ण रचना की थी । अपनी "नए जमाने की मुकरियों में उन्होंने अंग्रेज़ों की कुटिल राजनीति पर करारा व्यंग्य करते हुए देश की आर्थिक हीनता पर प्रकाश डाला है । अंग्रेज़ जाति की चरित्रगत विशेषताओं एवं उनका आर्थिक शोषण करने में कुशलता पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं -

भीतर भीतर सब रस चूसे,
हँसि हँसि के तन मन धन मूसे ।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन ! नहीं अंगरेज़[1] ।

अंग्रेज़ी पुलीस शाही पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा -

रूप दिखावत सरबस लूटे ।
फन्दे में जो पडे न छूटे ।।
कपट - कटारी जिय में हुलिस ।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस[2] ।।

अंग्रेज़ों ने अपने कानूनी शिकजों में जनसाधारण को बुरी तरह जकड़ लिया था । अदालतों में होने वाले हथकण्डों के एवं स्वार्थपूर्ण अदालती कानूनों के कारण जनता बलहीन होती जा रही थी, ऐसे अंग्रेज़ी कानून पर श्री भारतेन्दु जी ने बडा ही सटीक व्यंग्य किया है -

---

1. नए जमाने की मुकरी - भारतेन्दु ग्रन्थावली - भाग-2, पृ.811
2. वही

नई नई नित तान सुनावे ।
अपने जाल में जगत फंसावे ।।
नित नित हमें करें बल सून ।
क्यों सखि सज्जन नहिं कानून[1] ।।

इस प्रकार भारतेन्दु कालीन कवियों ने हास्य-व्यंग्य का सहारा लें कर, अशिक्षा, बेकारी, सरकारी अमलों की घूस लेने की प्रवृत्ति, पुलीस के हथकण्डों, अंग्रेज़ी अदालतों एवं कानून, खिताब आकृष्टि, शराबखोरी इत्यादि सामाजिक तथा राजनीतिक दोषों की कड़ी आलोचना की । श्री॰ प्रतापनारायण मिश्र ने अपने "लोकोक्तिशतक" में गांवों में प्रचलित कहावतों के आधार पर हास्य - व्यंग्यपूर्ण छंदों की रचना की, जिनमें उन्होंने राजनीतिक तथा सामाजिक एवं धार्मिक विकृतियों पर व्यंग्यपूर्ण आक्षेप किए हैं । उन्होंने उन पढे-लिखे बाबुओं पर व्यंग्य किया जो पढ-लिख कर भी देश सेवा से दूर भागते हैं -

पढि कमाय कीन्हों कहा हरे न देश कलेश
जैसे कन्ता घर रहे तैसे रहे विदेश[2] ।

निम्न लिखित छन्द में अंग्रेज़ों के आर्थिक शोषण की ओर संकेत करते हुए उन्होंने उन कर्तव्य हीन लोगों की खबर ली है जो लम्बे चौडे भाषण देकर जनता पर अपनी झूठी शान का सिक्का जमाया करते हैं -

---

1. नए जमाने की मुकरी - भारतेन्दु ग्रन्थावली - भाग-2, पृ॰812
2. लोकोक्ति शतक - "प्रतापपीयूष" पृ॰217 (पहला संस्करण-1933

सर्वसु लिए जात अंगरेज़, हम केवल लेक्चर के तेज ।
श्रम बिन बातों का करती है, कहूँ टटकन गाजैं टरती है[1] ।।

पुलीस के हथ कण्डों तथा वकीलों की स्वार्थपरता पर उन्होंने इस प्रकार व्यंग्य किया है -

झूठी साखी बेसिहु वारिदात में काय ।
आय भलो मानुष फंसे जन्म सुफल तब होय ।
फूट बढ़ै सब धरन में हारे जीते कोय ।
खुली अदालत नित रहे जन्म सुफल तब होय[2] ।।

अपने "सभावर्णन" में हास्य-व्यंग्य प्रणाली का अवलम्ब लेकर उन्होंने तत्कालीन जनता के आचार-व्यवहार, वेश-भूषा, आदि का यथार्थ परिचय दिया है -

लगी कचेहरी नुनि लाला की, भरमाभूत लगे दरबार ।
रंग बिरंगी कपड़ा झलकैं, शोभा तिलक त्रिपुण्डन क्यार ।
गरे जंजीरैं हैं सोने की, मानो बधुवा कलियुग क्यार ।
बांह अनन्ता कोउ कोउ पहिरे, टड़ियां मनो मेहरियन क्यार ।
छड़ी अंगरखन मां कोउ खोंसे, टिटुना दड़ी धरे को उज्जान ।
भरि-भरि चुटका सुंघनी सूंघैं, कोउ चर चर चाबैं पाने[3] ।

1· लोकोक्तिशतक - प्रतापपीयूष - प्रतापनारायण मिश्र
2· जनम सुफल कब होय - प्रतापपीयूष - पृ·192
3· सभावर्णन - प्रतापपीयूष - पृ·203-203

प्रतापनारायण मिश्र जी ने अपने "दंगल खण्ड" में दंगलों में होनेवाली भीड़-भाड़, जनता की इस ओर उत्कट रुचि, इस को देखने केलिए उसके द्वारा उठाये जाने वाले कष्ट, पहलवानों के दांव-पेंच, विभिन्न श्रेणियों की टिकट-व्यवस्था एवं बैठने की व्यवस्था, बिना टिकट वालों पर डण्डों से पड़ने वाली मार का बड़ा ही यथार्थ एवं हास्य पूर्ण चित्रण किया है ।

भारतेन्दु कालीन हास्य व्यंग्य काव्य में भारतीय जन-जीवन की विकृतियों का बड़ा यथार्थ चित्रण हुआ है, साथ ही ऐसी काव्य रचनाएं तात्कालिक जनसंस्कृति, देश की दशा, समाज, धर्म, परिवार, व्यवस्था इत्यादि पर भी बड़ा विशद प्रकाश डालती है । अपने व्यंग्य काव्य द्वारा भारतेन्दुकालीन कवियों ने जहां एक ओर काव्य साहित्य को नवीन रूप प्रदान किया वहीं उन्हों ने इसके माध्यम से देश को मंगलकारी राष्ट्रीय चेतना भी प्रदान की ।

भारतेन्दु काव्य के व्यंग्यपूर्ण निर्देश एवं सन्देशों ने राष्ट्रीय जागरण को अद्भुत प्रेरणा दी एवं जनता तथा अंग्रेज़ सरकारी को, भारत के प्रति उनके मूल कर्तव्यों का मान कराया । इस प्रकार भारतेन्दु कालीन हास्य-व्यंग्यपूर्ण कविताओं का देश हित, देशोन्नति तथा देश के सांस्कृतिक परिष्कार की दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है । भारतेन्दुकालीन व्यंग्य काव्य को, इस दृष्टि से, "राष्ट्रीय काव्य" में भी परिगणित किया जा सकता है ।

यहां मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन संपन्न हुआ है । इसके साथ भारतेन्दु युग के सन्दर्भ में व्यंग्य का भी अध्ययन हुआ है । सचमुच इस अवधि में ज्यादातर कवियों ने व्यंग्य को अपनाया था एवं उसमें विजयी भी हुए है । स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग आधुनिक कालीन काव्य में व्यंग्य का प्रथम सोपान रहा है ।

भारतेन्दु युग में धार्मिक चेतना पूर्ण विकसित रूप में दृष्टिगोचर होती है। विदेशी लोगों के संसर्ग के प्रभाव से भारत का नवयुवक समाज धर्मविमुख हो रहा था, किन्तु धर्मचेता महापुरुषों की जय दुन्दुभी चारों ओर से सुनाई दे रही थी। राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं विवेकानन्द ने धर्म के जिस उन्नत रूप का प्रणयन किया उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परंपरा एवं विश्वासों का त्याग नहीं, बल्कि पश्चिम की विशिष्टताओं के साथ उनका सामञ्जस्य बिठाना था। धर्म को अन्ध रूढियों से मुक्त कर उसे वेदान्त सम्मत एवं बुद्धिगम्य रूप प्रदान करने के प्रयत्न किए जा रहे थे। क्योंकि भारत की टक्कर उस समय यूरोप के धर्म से नहीं अपितु उसकी वैज्ञानिक बुद्धि वादिता, साहस एवं कर्मठता से थी। भारत ने अपनी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण सदैव अनुभव कियाहै कि जीवन का सुख एवं शांति मानव के शील एवं सौजन्य में निहित है। लेकिन दासता के कारण विवश भारत की चेतना सो रही थी।

इस काल विभाग में यूरोप के भौतिकवाद की टकराहट से भारत की नींद टूटी, लड़खड़ाती हुई सभ्यता ने संभलने की चेष्टा की। स्वामी विवेकानन्द ने आत्मविश्वास एवं आस्था का महान सन्देश दिया। निर्धन एवं गुलाम भारत ने अपने धर्म रूपी गुप्त धन-वैभव को पहचाना एवं अनुभव किया कि जहां हमें अतिभौतिक विज्ञान से बहुत कुछ सीखना है, वहां भौतिकता की अग्नि में झुलसते हुए विश्व को आत्मशक्ति एवं आन्तरिक शांति का अमर सन्देश देना है।

भौतिक आधार पर स्थित विश्व की नितान्त बहिर्मुखी चेतना आनन्द के अभाव में भटक रही थी। शायद इसलिए विवेकानन्द की वाणी तृषित यूरोप केलिए पीयूष वर्षा सिद्ध हुई। भारत में नवोत्थान की प्रक्रिया ज़्यादातर उद्बुद्ध धर्मचेतना पर निर्भर थी। सामाजिक नैतिकता

पर धर्म के अंकुश की बडी आवश्यकता रही है । अतएव भारतेन्दु कालीन काव्य में "निर्बल के बल पर राम" एवं "नैतिकता" की कर्तव्य भावनाएं जुडी हुई हैं । उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण शुद्ध भारतीय होते हुए भी धार्मिकता के पूर्वाग्रह एवं संकीर्णता से मुक्त था । अपने धर्म पर पूर्ण आस्था रखते हुए भी कट्टरता-अनुचित रूप का त्याग एवं आधुनिकता के स्वस्थ रूप का ग्रहण निःसन्देह श्लाघनीय है ।

वस्तुतः हिन्दू समाज अकर्मण्य हो रहा था । तथाकथित धर्म पण्डित विकृतियों से दूर रहने की अपेक्षा जीवन से ही दूर भाग रहे थे । कर्म का त्याग उनके लिए वैराग्य था, और खाने-पीने में विशेष आनन्द का अनुभव करते थे ।

भोजन के डकरत चलें, बूढे बैल समान ।
पाय दच्छिनां टेंट में, घोंसित कचरत मान ।।

लेकिन -

करै न ए उपयोग कछु, महा आलसी होय ।
जास करम आधीन सब, राखे मन में गोय ।।
यद्यपि या ही चाल सों, होत जात बरबाद ।
पै ये जड़ जाने नहीं, हां उद्यम को स्वाद[1] ।।

दूसरी ओर धर्म के ठेकेदार "शिवोहं" की धुन लगाकर जहां भोली जनता को धोखा दे रहे थे, वहां आत्म प्रवंचना भी कर रहे थे । यद्यपि आध्यात्मिक जीवन की चरम स्थिति में तादात्म्य की यह भावना प्राप्त की जा सकती है किन्तु साधारण जीवन में भगवान के प्रति दास्य

1· प्रेमघन सर्वस्व - पृ·153 एवं 160

भावादि ही उचित है । "मैं स्वयं ब्रह्म हूँ" की कल्पना से साधारण जीव अहंकार वश नीति मर्यादा का उल्लंघन करता रहा है । इसलिए भारतेन्दु जहाँ जनसाधारण को धर्म के इस ढोंगमय रूप से सावधान करते हैं, वहाँ उस आत्म वंचक को भी आत्म निरीक्षण के लिए उपदेश देते हैं -

"शिवोहं" भाखन सब ही लोग ।
कहँ शिव कहँ तुम कीट अन्न के यह कैसों संजोग ।।
अरध अंग में पारबती हूँ शिवहिन काम जगावै ।
तुम को नारी के देखत अंग गुदगुदी आवै ।।
तुम सों कहा संबंध ब्रह्म सों क्यों छाटत हो ज्ञान ।
"हरीचंद" मनमथ जागेगी तबै पड़ेगी जान ।।[1]

वस्तुत: भारतेन्दु की धर्मसम्बन्धी नीति भारतीय सन्त-परंपरा से प्रभावित है ।

साधु समाज भारत की धर्मचेतना का विशिष्ट अंग रहा है । देश एवं जाति के आधार स्तंभ रूप साधुओं के कारण ही भारतीय संस्कृति की ज्योतिशिखा अनेक झंझावातों के बीच निष्कंप जलती रही है । इस संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द का नाम उल्लेखनीय है । खेद की बात यह है कि बालमुकुन्द गुप्त जैसे जागरूक कवि युग की महान आत्मा को नहीं पहचान सके एवं उन्हें काव्य में विनोद का विषय बनाने से नहीं चूके हैं । स्वामी विवेकानन्द, भगिनी निवेदिता एवं शिकागो विजय {सर्वधर्म - सम्मेलन} को लक्ष्य बनाकर व्यंग्य-शर छोड़ना कवि की अनुदार एवं संकीर्ण दृष्टि के अतिरिक्त कुछ नहीं ।

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली - पृ. 138

लोक पाताल देस निराला उस में नगर चिकागू ।
तिस में मेला रेलमठेला जाए हुए बड़ भागू ।।
धरम की धूम मचाई पडी सब ओर अवाई ।
जुडे सब गोरे गोरी, मिली मोरी में मोरी[1] ।।

आदि और भी

जती लण्डन से आया ब्रह्म का भेद बताया ।
जैसी रण्डी तैसी सण्डी सोई समय सोई जार ।
ब्रह्म सत्य है ब्रह्म एक है यही वेद का सार ।
एक है पक्का कच्चा, एक है बालक बच्चा ।।
एक है नर या नारी, एक है लोटा थारी ।
रलमिल एक हुए बाबाजी मेहतर डोम चमार ।
एक रकाबी एक ही प्याला सब कुछ एकाकार[2] ।।

यद्यपि साधुत्व के नाम पर ढोंगी एवं पाखण्डी लोग भोली जनता की आखों में धूल झोंकते रहे हैं - किन्तु योगी एवं साधु नाम से ही चिढ कर विवेकानन्द जैसे महात्माओं के प्रति इस प्रकार की उक्तियाँ अनुचित हैं ।

भारतेन्दु युग की युगांतकारी चेतना का हिन्दी व्यंग्य काव्य साहित्य में मौलिक महत्व है । काव्योत्थान के प्रथम चरण में युगचेता भारतेन्दु ने जातीय जीवन के सभी पार्श्वों को निकट से देखा एवं तीक्ष्ण तथा गहरी अनुभूतियों के विभिन्न रंग काव्याकाश की शून्यता में भरने का प्रयत्न किया । भारतेन्दु ने सर्वप्रथम समाज के वृक्षस्थल की धड़कन को सुनाया । आर्थिक जीवन में महंगाई और अकाल, टेक्स और धन का

1• बालमुकुन्द गुप्त - स्फुट कविता - पृ•139
2• वही

विद्रोह प्रवाह, धार्मिक क्षेत्र में बहुदेव पूजा और मतान्तर के झगडे, सामाजिक क्षेत्र में जाति पाति के टंटे और खान-पान के पचडे और बाल विवाह, नैतिक क्षेत्र में पारस्परिक कलह और विरोध उद्यम हीनता और आलस्य, भाषा, भूषा भेष की विस्मृति तथा राजनीतिक क्षेत्र में पराधीनता और दासता, जीवन के ये भिन्न भिन्न स्वर उनकी वेणु से प्रसूत होने लगे थे[1]।

इसी प्रकार व्यंग्य का आधार भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, लौकिक आदि सभी विषयों को अपनाता है। जहाँ तक हो सके विविध कुरीतियों के खिलाफ व्यंग्य का प्रयोग किया है तथा इन सब का आधार भी विविध रहा है।

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - सुधीन्द्र - पृ.39

तृतीय अध्याय

आदिकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य

संस्कृत साहित्य सदैव ही हिन्दी के लिए प्रेरणास्त्रोत रहा है। प्राचीन संस्कृत पण्डित एवं साहित्यकार धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के प्रकाण्ड पण्डित रहे और वे कोरे विनोद से बहुत दूर रहते थे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि आपने व्यंग्य की सर्वथा उपेक्षा की है। संस्कृत साहित्य के अपार भण्डार में यत्र-तत्र व्यंग्य की झलक मिलती है।

वैदिक साहित्य में व्यंग्य का पुट उपलब्ध है। वैदिक साहित्य के अमूल्य ग्रंथ ऋग्वेद में मंत्रों के घोष के साथ यज्ञ करनेवाले ऋषिमुनियों की तुलना मेंढकों से करते हुए उनपर जबरदस्त व्यंग्य कसा गया है। चार्वाक दर्शन के प्रचारकों ने धार्मिक रूढ़ियों के उन्मूलन हेतु चुभते हुए व्यंग्य का प्रयोग किया है। "खाओ - पीओ - मौज उड़ाओ"[1] यही उनका सिद्धांत है।

---

1. Eat, drink and be merry - This is the golden rule
- Charvaka philosophy

उनके मुताबिक -

"ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत ।
यावज्जीवेत्सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः"।।

उधार लेकर भी घी छकों, मरने के पीछे जब कुछ हुई नहीं तब जिन्दगी का मज़ा अवश्य लूटना चाहिए । जब तक जिए, सुख के साथ रहे क्योंकि भस्मीभूत हो जाने पर हम लौट कर आ नहीं पायेंगे । पितरों के लिए किये जानेवाले श्राद्ध का मखौल उड़ाते हुए चार्वाक का कहना है - "भला, मरा हुआ मनुष्य क्या खायेगा। यदि एक का खाया हुआ अन्न दूसरे के शरीर में चला जाता हो तो परदेशों में जानेवालों के लिए भी श्राद्ध करना चाहिए ; उन को रास्ते के लिए भोजन बाँधने की कोई आवश्यकता नहीं । स्पष्ट है प्राचीनतम संस्कृत साहित्य में भी व्यंग्य की झलक मिलती है ।

आदि कवि वाल्मीकि कृत रामायण में भी व्यंग्य एवं विडंबना के स्पष्ट चित्र उपलब्ध होते हैं । अयोध्याकाण्ड में कैकेयी द्वारा की जानेवाले मंथरा की प्रशंसा व्यंग्य को प्रस्तुत करनेवाला एक प्रसंग है । मंथरा के कुचक्र में फंसने के बाद उस कुबरी के सौन्दर्य एवं बुद्धि की जो व्याज-स्तुति की गयी है वह कम मनोरंजक नहीं । कैकेयी की वाणी में अभिव्यक्त व्यंग्य निहारिए - "यदि मेरा मनोरथ पूरा हुआ तो मैं तेरे लिए अनेक सुन्दर सुन्दर गहने बनवा दूंगी, तेरे कूबड़ पर उत्तम चन्दन का लेप करके उसे छिपा दूंगी एवं अच्छे अच्छे वस्त्र प्रदान करूंगी जिन्हें पहनकर तू देवाङ्गना की भांति विहार करना । चन्द्रमा से स्पर्धा करनेवाले अपने मुखमण्डल के लिए सर्वश्रेष्ठ बन कर शत्रुओं का मन - मर्दन करती हुई गर्वपूर्वक इठलाना।[1]

---

1. वाल्मीकिरामायण- अयोध्याकाण्ड - सर्ग-9 पद 47-51

वाल्मीकि रामायण में व्यंग्य के अन्य भी कई प्रसंग उपलब्ध हैं। रामायण की अपेक्षा महाभारत में व्यंग्य के अपेक्षाकृत अधिक स्थल हैं क्योंकि रामायण जहाँ राजकीय जीवन से अधिक संबद्ध है वहाँ महाभारत लोक जीवन से। उसमें वेश-विपर्यय का आश्रय लेकर अनेक विनोदपूर्ण एवं उलझन भरी घटनाएं उपस्थित की गयी हैं। शिखंडी का पुरुष वेष में राजकन्या से विवाह करना, विराट के राजमहल में द्रौपदी का रूप धारण करके भीम द्वारा कीचक का स्वागत किया जाना, अश्विनीकुमारों के च्यवन के रूप में सुकन्या को असमंजस एवं आश्चर्य में डाल देना, गौतम के वेष में इन्द्र का अहल्या के साथ रमण एवं चारों लोकपालों द्वारा नल का रूप बनाकर दमयन्ती के मन मस्तिष्क में भ्रांति उत्पन्न करना ये सभी प्रसंग मूलतः किसी न किसी व्यंग्यास्पद स्थिति के द्योतक हैं। शत्रु पक्ष के योद्धाओं पर व्यंग्य से ओतप्रोत कथन अथवा उक्तियाँ समूचे महाभारत में बिखरी पड़ी हैं।

व्यंग्यकार किसी प्रकार के अन्याय को सहन नहीं कर सकता। उसे जहाँ भी विकृति दिखाई देगी, वह उसके परिहार की अवश्य चेष्टा करेगा हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की परंपरा का विश्लेषण करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र ने लिखा है : -"वीर गाथा की अन्तिम प्रतिध्वनि हम्मीरदेव के पतन के बाद ही शान्त हो गयी। यह देश के पतन की चरमसीमा थी। देश की परिस्थितियों ने इसी समय कबीर को जन्म दिया जिसकी आत्मा में निराशा ने ही अस्थि सार भर दिया था। नैराश्यकी अंधेरी रात्री में - पापों और अत्याचारों की इस झंझा में दुर्बल शरीर कबीर अचल पर्वत के सदृश खड़ा हुआ हिन्दू और मुसलमानों को सावधान करता रहा। सीधे ढंग से न माननेवालों केलिए उसके पास एक साधन था व्यंग्य। इस वृद्ध जुलाहे के शब्दों में गजब की

शक्ति थी, उसकी फटकारें, उसके व्यंग्य तीर की तरह सुननेवाले के हृदय में प्रवेश करते थे और यह उसकी चोट से तड़पकर वहीं बैठ जाता था" ।

हिन्दी साहित्य के आदि काल से लेकर लगातार व्यंग्य का प्रवाह दिखाई देता है । आदिकालीन महाकाव्य चंदबरदायी कृत पृथ्वीराज रासो में यत्र तत्र व्यंग्य का पुट है । पृथ्वीराज रासो में व्यंग्य केलिए दो स्थान प्रसिद्ध हैं । प्रथम उदाहरण "रासो" के 44 वें "समय" में है । यह संयोगिता नेमाचरण नामक शीर्षक से है । यहाँ पंगुराज या जयचंद की पुत्री संयोगिता को पृथ्वीराज से प्रेम न करने की शिक्षा देती हुई उसकी धाय कहती है

मुग्धे मुग्धा रसया, उर्वर जे रयंन रस एवी ।
लहुआ लुहान पुत्तं, तु पुत्ती राज ग्रेहायं ।[2]

अर्थात् धाय संयोगिता को समझाती है "हे मुग्धे ! जिस पृथ्वीराज को तु ने अपना वर चुना है, वह दो कारणों से तेरे लिए अनुपयुक्त है । प्रथमतः तु तो उसको अपने हृदय में बसाए एवं उसके प्रेम में मग्न है; परन्तु वह तुझ में नहीं, अन्य रस में लीन है । द्वितीयतः तेरी उसकी कोई समानता नहीं है, क्योंकि लहुआ का पुत्र होने से वह स्वयं "लहुआ" है एवं तु है राजकुमारी।" लहुआ एवं राजकुमारी में क्या संबन्ध है ।

---

1. आप्येन च सुवर्णेन सुनिष्टप्तेन सुन्दरि ।
लब्धार्था च प्रतीता च लेपयिष्यामि ते स्थग ।
मुखे च तिलकं चित्रं जात रूप मयं शुभम्
कारयिष्यामि ते कुब्जे शुभान्याभरणानि च
परिधाय शुभे वस्त्रे देवतेव चरिष्यसि
चन्द्र माह्वयमानेन मुखेना प्रतिमानना
गमिष्यसि गतिं मुख्यांगर्वयन्ती द्विषज्जने ।।
- हिन्दी कविता में हास्य रस - वीणा सितम्बर,

लहुआ शब्द के दो अर्थ हैं -लघु प्रिय एवं लोहार । प्रथम अर्थ पृथ्वीराज के वीररस प्रेम का व्यंजक है, परंतु दूसरे में उसको लोहार का पुत्र कहकर संयोगिता की दृष्टि में उसको गिराने का प्रयत्न किया गया है । संयोगिता भी अपनी धात्री का तात्पर्य समझ लेती है । वह उत्तर इस प्रकार देती है -

जिहि लुहार साँडसी, भीर बालुक अहि साहिय ।
जिहि लुहार आरम्भ, बरे बर मानस गाहिय ।
पावक्क सवर बर नेरि सह अरन्नि मंडि जिहिं बारयौ ।
अदभुत भविषक्षत प्रतमनह, कुल चहु आनह तारयौ ।

संयोगिता की मान्यता है कि जिस पृथ्वीराज से उसका प्रेम है, वह लोहार हो सकता है । लेकिन लोहार का पुत्र होने के कारण वह अपने कौशल में इतना पारंगत हो गया है कि उसकी गढी हुई साँकल, तलवार, संडासी आदि असाधारण होती है । उसी ने तो ऐसी असाधारण साँकल गढी थी जिस से सुल्तान गोरी तुरंत बाँधा गया था । उसी ने तो ऐसी अद्भुत तलवार बनायी थी जिससे मेरे पिता एवं तेरे स्वामी पंगुराज का यज्ञ-स्थान रौंद डाला गया था । उसी ने तो ऐसी संडासी बनायी थी जिससे भीम पराक्रमी बालुकाराय पकड़ा गया था । उस लोहार ने ही तो वह "एरण" जलायी थी जिसमें कितने ही वीरों की शक्ति कुचल-कुचल कर झोंक दी गयी । उस लोहार की प्रतापाग्नि इतनी उग्र है जिससे शत्रुओं के सभी श्रेष्ठ नगरों को जला दिया है । इस प्रकार के असाधारण कर्म करनेवाले उस लोहार ने ही तो अपने चौहान कुल के भूत, वर्तमान एवं भावी पुरुषों का उद्धार कर दिया है ।

इस संवाद का व्यंग्य बहुत ही स्वाभाविक है । "धाय" द्वारा प्रत्यक्ष में पृथ्वीराज की निंदा है लेकिन कवि ने "लहुआ" शब्द के "बहु-प्रिय" अर्थ के द्वारा उसकी वीरता की ओर भी संकेत कर दिया है । यदि धात्री के वाक्य से यह तात्पर्य लिया जाय कि पृथ्वीराज की प्रत्यक्ष निंदा करके वह संयोगिता के प्रेम की परीक्षा ले रही है तो व्यंग्य का चमत्कार और भी निखरउठता है । संयोगिता के प्रत्युत्तर में अपने प्रियतम के गौरव का गर्व स्पष्ट रूप से व्यंजित है ।

द्वितीय प्रसंग रासो के 48 वें "कनवज्ज समय" में मिलता है । कनौज का राजा है जयचंद जिस ने अपनी बेटी के स्वयंवर में एक पृथ्वीराज को छोड़कर समस्त क्षत्रिय राजाओं को आमंत्रित किया है । संयोगिता के अपने प्रति अनुरक्त होने की सूचना पाकर पृथ्वीराज भी चंद कवि के खवास के रूप में कन्नौज पहुंचता है । जयचंद के दरबार में चंद एवं उसका खवास वेशधारी पृथ्वीराज अन्य सामन्तों सहित उपस्थित हैं । चंद ने बहुत मुश्किल से जयचंद की प्रशंसा का गान किया । कन्नौज नरेश उससे प्रसन्न हो गया एवं कवि को पुरस्कृत करने का संकल्प करने लगा । तभी चंद ने पृथ्वीराज की प्रशंसा करते हुए कहा -

चढत मान छावत रेन, गयमेव दर्स दिस ।
दीपक ज्यों बसि बात, आतपत्रं आधाहिस ।
कमधज्जराइ बिजपाल सुअ, तो बर भूपति हय किसो ।

जयचंद कान्यकुब्जेश्वर विजयपाल का पुत्र था । उसको संबोधित करके चंद कहता है - पृथ्वीराज जब घोड़े पर चढ़कर चलता है तब आकाश के साथ साथ दसों दिशाओं में इतनी धूल छा जाती है कि सूरज भी ढक जाता है । दीप का जलना एवं बुझना - उसका प्रकाश एवं विनाश जैसे पवन-संचार के अधीन है, उसी प्रकार समस्त राजाओं का जीवन एवं मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ में है । ऐसे पृथ्वीराज के अतिरिक्त तेरे मुख्य और

कवि चंद का व्यंग्य "हय" शब्द में है, जिसका सामान्य अर्थ है "हो सकता है" । परंतु श्लिष्टार्थ है "नाशकर्ता" जिसका तात्पर्य यह हुआ कि पृथ्वीराज की प्रसन्नता-अप्रसन्नता पर ही तेरा भी जीवन निर्भर है, तुम से अप्रसन्न होने पर वह तेरा भी "नाशकर्ता" हो सकता है ।
चंद कवि का व्यंग्य जयचंद ने समझ लिया । उसने कहा -

दिय दरिद्र मंगन सरह को मेटै विधिअस्स ।
रतन बुंद बरखे नृपति हय गय हेम सुहद्द ।
लग्गि न बुंद सु मग्ग तन, सिर पर छत्र दरिद्द ।

जयचंद ने सव्यंग्य कहा - मंगन व याचक के भाग्य में जब विधाता ने सदा दरिद्र बना रहना ही लिख दिया है, तब उस को कौन मिटा सकता है। अर्थात् आज मैं इस प्रशस्तिगायक कवि चंद को इतना पुरस्कार देता कि इसकी दरिद्रता मिट जाती; परंतु जब इस के भाग्य में दरिद्र रहना ही बदा है (तभी तो यह मेरे ही सामने मेरे ही शत्रु पृथ्वीराजकी प्रशंसा कर रहा है) तब मैं विधाता का लेख कैसे मिटा सकता हूँ। देखो न, राजा लोग तो दान रूप में रत्न, हय-गय, स्वर्ण आदि की वर्षा किया करते हैं, पर जिनके सिर पर दरिद्रता का छत्र छाया रहता है, उनको एक कण नहीं मिलता जैसे चिकने घड़े पर पानी की एक बूंद नहीं ठहराती ।

जयचंद का व्यंग्य यह है कि उनकी दृष्टि में चंद जैसा प्रतिष्ठित कवि भी है तो याचक वर्ग का ही, क्यों कि वह उनकी प्रशंसा गा रहा है, साथ ही वह अभागा भी है तभी तो उनके द्वारा पुरस्कृत होने से वंचित रह गया । इससे यह भी स्पष्ट है कि वह अपने आश्रित कवियों के प्रति भी वैसा ही संकीर्ण भाव रखता है ।

इसी प्रकार का वार्तालाप पृथ्वीराज रासो में मौजूद है । कहीं कहीं यह व्यंग्य क्लिष्ट है । अतः मुश्किल से भाव को निकालना पड़ता है ।

कबीर का जीवन काल पूरी पंद्रहवीं शती एवं सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक उन्नीस वर्षों को घेर लेता है । उस समय दिल्ली के अतिरिक्त उत्तर एवं दक्षिण के विभिन्न प्रदेशों में मुसलमान सामन्तों के राज्य स्थापित हो चुके थे एवं मुसलमान इस देश के निवासी बन चुके थे । इस घटना के महत्व भारतीय राजनीति पर ही नहीं अपितु समूचे भारतीय जीवन, भारतीय समाज, कला, संस्कृति एवं विचार पद्धति पर व्यापक युगान्तकारी प्रभाव पड़ा । धार्मिक असहिष्णुता चरम सीमा पर थी । उस समय बौद्ध तान्त्रिकों की धारा, रामानंद का भक्ति संप्रदाय तथा सूफी साधकों की धारा प्रवाहित हो रही थी । सब अपने अपने धर्म के प्रचार में लगे थे । कबीर ने व्यंग्य का मार्ग अपनाया ।

"उन्होंने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत विश्वासगत एवं शास्त्रगत विशेषताओं के फैले हुए जाल को छिन्न-भिन्न करने केलिए एक अदम्य साहस के साथ उच्चवर्ग की मान्यताओं की तीखी आलोचना की । पंडित और शेख इन दोनों पर उन्होंने समान रूप से व्यंग्य किये हैं । और उनकी इन झकझोर देने वाली व्यंग्योक्तियों में ही उस युग की समस्या मूर्त हो जाती है" ।[1]

यह बताने में संकोच नहीं है कि हिन्दी में व्यंग्य काव्य परंपरा का श्रीगणेश कबीर ने ही किया है । मूर्ति पूजा के विरुद्ध उन्होंने लिखा -

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूं पहार ।[2]
ताते या चाकी भली, पीसि खाइ संसार ।।

---

1. कबीर का विश्लेषण - डॉ॰शिवध्यान सिंह चौहान - पृ॰7

कबीर के व्यंग्य में कचोट है । वह आलंबन पर सीधा प्रह
करता है । कबीर के दिल में इन खोखली प्रथाओं के प्रति कोई स्थान नहीं
बेकठोरता के साथ इन पर प्रहार करते हैं । बाह्याचार से उन्हें सख्त चिढ

"हिन्दु अपनी करै बडाई, गागिर छुवन न देई
वेश्या के पांयन तर सोवे यह देखो हिन्दुवाई ।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा मुर्गी खाई
खाला केरी बेटी ब्याहैं घर में करे सगाई ।
हिन्दुवन की हिन्दुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई ।।

कबीर के व्यंग्य में यदि कोई कमी महसूस होती है तो वह
है उसका सपाटपन । वह अप्रत्यक्ष न होकर प्रत्यक्ष है । प्रारंभिक काल हो
के कारण उनकी इस कमी की उपेक्षा की जा सकती है । कबीर के व्यंग्य क
यही महत्व है कि उन्होंने काव्य का संपर्क यथार्थ से कराया एवं सुधार की
भावना को काव्य में स्थान दिया जो कि व्यंग्य काव्य का प्रमुख लक्षण माना
जाता है ।

सूर एवं तुलसी ने शांत, श्रृंगार एवं वात्सल्य रसों से युक्त
काव्य की रचना की । विशेष ध्यान देने की बात है कि जहां जहां इन
दोनों ने व्यंग्य का प्रयोग किया है वहां अपनी विशिष्ट प्रतिभा के कारण
इस अंग को पूर्णरूपेण पुष्ट किया है । वस्तुतः ये दोनों व्यंग्य के कवि नहीं

---

(१)
1. कबीर एक विवेचन - डॉ.सरनामसिंह शर्मा - पृ.220

तुलसीदास जी दुष्टों की बन्दना करते हैं । यहाँ इनके व्यंग्यकार का रूप प्रकट होता है । "ईर्ष्या" प्राणीमात्र का मनोविकार है । तुलसीदास जी दुष्टों को सुधारना चाहते हैं । समाज को भी इनसे बचने केलिए सावधान करना चाहते हैं । लोककल्याण ही उनके काव्य का प्रमुख ध्येय है । दुष्टों से भय भी खाते हैं । प्रत्यक्ष रूप से उनकी भर्त्सना भी नहीं करना चाहते हैं । व्यंग्य ही इस संदर्भ में एकमात्र सहारा है :

बहुरि बंदि खलगन सतिभाएं, जो बिनु काज दाहिनेहु बाएं ।
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें, उजरें हर्ष विषाद बसरे ।।[1]

तुलसीदास जी का समय सं॰ 1554 से सं॰ 1680 तक माना जाता है । लगभग पाँच सौ वर्ष हो गए, आज भी अधिकांश व्यक्ति ऐसे मिलते हैं जो बिना ही प्रयोजन अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं । दूसरों के हित की हानि जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष एवं बसने में विषाद होता है । प्रथम पंक्ति में व्याज - स्तुति का साधन प्रयोग में लाते हुए तुलसी सच्चे भाव से दुष्टों का प्रणाम करते हैं ।

कबीर की भाँति तुलसी का व्यंग्य सपाट नहीं है, उसमें अप्रस्तुत विधान है, जो उच्च व्यंग्य काव्य का एक लक्षण है ।

"परहित घृत जिन के मन माखी", दूसरों के हित रूपी घी केलिए जिनका मन मक्खी के समान है । मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है तथा स्वयं भी मर जाती है उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने बनाए काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं । तुलसी दूसरे प्रतीक का प्रयोग यों करते हैं -

---

1. रामचरित मानस - बालकाण्ड - पृ ... श्री रामचरितमानस, सं. डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. २२५.

पर अकाजुलगितनुपरहरहीं । जिमि हिम उपल कृषि दल गरहीं।।[1]

ओले खेती का नाश करके फिर स्वयं भी गल जाते हैं उसी प्रकार दुष्ट दूसरों का काम बिगाड़ने केलिए अपना शरीर तक त्याग देते हैं । तुलसी दास जी पुन: दुष्टों की उपमा कौओं से देते हैं -

'बायस पालिहि अति अनुरागा, होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा[2]

कौओं को आप कितने भी प्रेम से पिलाए किंतु वह मांस खाना नहीं छोड सकता । सफल व्यंग्यकार का यह लक्षण है कि समाज में अपने निशाने के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न कर दें । यहाँ तुलसीदास जी एक व्यंग्यकार के रूप में पूर्णरूपेण सफल उतरते हैं ।

तुलसी के व्यंग्य में यहाँ क्रोध का भाव अधिक है । आक्रमण की गुंजाइश भी इनके व्यंग्य में है । एतदर्थ आक्रमण की चेष्टा भी व्यंग्य को सफलता प्रदान करती है ।

इसके मुताबिक व्यंग्य की लपेट में उत्तमविनोद एवं विनोद की लपेट में उत्तम व्यंग्य देने की कला में वे सुदक्ष थे । उनके आराध्य राम ने होली के हुड़दंग में आनन्द पूर्ण रस लिया है -

घटे खरनि विदूषक - स्वाँग - साजि
करैं कूटि, निपट गई लाज भाजि ।
नर-नारि परसपर गारिदेत
सुनि हँसत राम भाइन समेत ।।[3]

---

1. रामचरित मानस - बालकाण्ड - पृ [डॉ. भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन पृ. 224
2. वही

गालियों की मिठास तो उन्होंने अनेक स्थलों पर अनेक लोगों को चखवाई है -

नारि वृन्द सुर जेंवत जानी, लगीं देन गारी मृदु बानी ।
गारी मधुर सुर देहिं सुन्दरी, व्यंग्य बचन सुनावहीं ।
भोजन करहिं सुर अति विलम्ब, विनोद सुनि सचु पावहीं ।।

राम विवाह प्रसंग में वे लिखते हैं -

जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी, लेइ लेइ नाम पुरुष अरु नारी।
समय सुहावनि गारि बिराजा, हँसत राउ सुनि सहित समाजा[3]

सुन्दरियों ने सुनाए व्यंग्य के वचन, परंतु बरातियों ने पाए उनमें विनोद के भाव । भावों में यदि सहज मिठास है तो अभिव्यक्ति की वक्रता ऋजुता से अधिक आकर्षक हो जाती है ।

ब्रह्मा जी पार्वती से कह रहे हैं -

बावरो रावरो नाह भवानी
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी
निज घर की बर बात बिलोकहु, हो तुम परम सयानी
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी
जिन के भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी
तिन रंकन को नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ।
दु:खी दीनता, दुखियन के दु:ख, जाचकता अकुलानी
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंग्य जुत सुनि विधि की वर बानी
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी ।।[3]

विनय एवं प्रेम से भरी प्रशंसा को इस प्रकार की व्यंग्यात्मक शैली में प्रकट करने से हास्य रस का अपूर्व कौशल आपने आप झलक उठा है। जगदम्बा का यह कहना कि उनका पति बावला है, वेदमर्यादा का भंजक है, घर फूंक तमाशा देखनेवाला है, अनधिकारियों को आकाश पर चढाए दे रहा है, कोई सरल कार्य नहीं। बल्कि शाब्दिक व्यंग्य के पीछे शिव-श्लाघा का जो भाव छिपा हुआ था उस ने सदा-शिव को मन ही मन मुदित कर दिया एवं जगदम्बा के अधरों पर स्मित की रेखा दौड़ा दी -"तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगतमातु मुसुकानी।

सूरदास कृत तीन रचनाएं बतायी जाती हैं - "सूरसागर, सूरसारावली एवं साहित्य लहरी। साहित्य लहरी में व्यंग्य के उदाहरण प्राप्त नहीं हैं। सूर सागर में पर्याप्त मात्रा में व्यंग्य प्राप्त हैं - विनय पद, रामकथा, ब्रज लीला और द्वारका लीला जैसे स्कन्ध इसके प्रमाण हैं। शेष स्कन्धों में अति पौराणिक प्रसंगों में यत्र तत्र व्यंग्य विनोद के सामान्य उदाहरण मिल सकते हैं।

"सूरसागर" के विनय पदों में अपने प्रभु से कवि की छेड़-छाड़ के कई उदयहरण मिलते हैं। भक्त अपने प्रभु से होड़ करने का दुस्साहस इसलिए करता है कि उसके आराध्य ने अधम मूर्तियों के उद्धार का प्रण किया है।

मोहिं प्रभु, तुम सौं होड परी।
ना जानौं करिहौं कहा तुम नागर नवल हरी।
हुतीं जिती जग में अधमाई सो मैं सबै करी।
अधम-समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी।

---

1. सूरसागर: विनय [सूर पंचरत्न (सन् 1962) सं० स्व० लाला भगवानदीन पृ० 40

आगे प्रभु एवं भक्त की लुका - छिपी चलती है । भक्त की अधमता की सूचना पाकर प्रभु उसका उद्धार करके अपना प्रण निभाने केलिए उसकी खोज करते हैं, तो वह पाप-पहाड़ की दुरूह कंदराओं में छिप जाता है जहाँ से उसे ढूँढ लाना प्रभु केलिए भी कठिन है -

मैं जु रह्यौं राजीवनैन, दुरि पाप-पहार दरी ।
पावहु मोहिं कहाँ तारन कौं, गूढ-गंभीर खरी ।।[1]

अपने ऊपर व्यंग्य करना, अपने दोषों का सगर्व बखान करना पतितपावन विरुदधारी प्रभु को चुनौती देना ही तो है । सूर का कहना है कि अजामिल-जैसे क्षुद्र पापियों का उद्धार करके तुम अब तक जो गर्व करते रहे हो, उसे भूल जाओ । अजामिल जैसे पापियों की तो गिनती क्या, बड़े से बड़ा पापी मेरे सामने "पसंगा" भी नहीं है । मेरी विकटता का कुछ अनुमान तो तुमको इतना जानकर ही हो जाएगा कि मेरा नाम सुनकर "नरक" भी "काँप" कर "भाग" जाते हैं एवं यमराज ने भी मुझ से भयभीत होकर अपने भवन के द्वारों पर ताले डाल रखे हैं कि कहीं मैं वहाँ पहुँच न जाऊँ । अब यदि मुझ जैसे पापी को तुम तार नहीं सकते तो पतित-पावन कहलाने का "भारी विरद" क्यों धारे हो --

बड़े पतित पासंगहु नाहीं, अजामिल कौन बिचारो ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरो, जम दीन्यो हठि तारो ।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारो ।
सूर पतित कौ ठौर नहीं तो बहुत बिरद कत भारो ।[2]

---

1. सूरपंचरत्न (विनय) : सं. स्व. लाला भगवानदीन पृ. 40.
2. " " " " पृ. 28.

भगवान को यदि "पतित-पावन" होने का गर्व है तो भक्त भी "पतितनि राव" कहना चाहता है । इसलिए आज वह ईश्वर से होड़ लगाकर कहता है कि तुम्हारा या मेरा, आज एक का ही यश रहेगा, दोनों का नहीं रह सकता, या तो मैं पावन होकर ही रहूँगा व तुम्हारा विरद ही सदा को छुड़ा दूँगा । सुना है, तुम ने बहुत से पतितों को तारकर उन्हें सुखधाम दिया है; परन्तु सावधान, अब उस धोखे में न रहना, अब तो मुझ-जैसे घोर पतित से तुम्हारा पाला पड़ा है -

जो तुम पतितनि के पावन हो, हों हूँ पतित न छोटो ।
विरद आपनो और तिहारो करिहों लोटक्पोटो ।
कै हौं पतित रहों पावन ह्वै, कै तुम विरद छुड़ाउँ ।
दो में एक करौं निरवारौं, पतितनि - राव कराउँ ।
सुनियत है, तुम बहु पतितनि कौं दीन्हो है सुखधाम ।
अब तो आनि परयो है गाढो, सूर पतित सौं काम ।

सूर के भक्त हृदय की इस प्रकार की व्यंग्य विनोद पूर्ण उक्तिय सहृदयों का मन मुग्ध कर लेती हैं । सूर को, उक्त पंक्तियां कहते - कहते अपने अंतर का विनोद किस प्रकार छुपाना पड़ता है, इसे वे ही समझ सकते हैं । जिन्होंने अपने किसी निकटतम आत्मीय जन के प्रति कभी बनावटी क्रोध किया हो या उसको चुनौती दी हो । अपने आराध्य के ही बल पर उसी को चुनौती देते समय सूर का रोम-रोम विनोद से पुलकित है एवं उसका आराध्य भी विनो में मग्न हो जाता है ।

वनवास के लिए गंगा पार जाते समय केवट की विनय का प्रसंग आता है जिस में भी विनोद की झलक है । नाव पर चढ़ाने के पूर्व केवट चाहता है कि भगवान राम का चरणामृत ले लिया जाय । उनके चरण

स्पर्श से पाषाणरूप अहल्या के तर जाने की बात वह जान चुका है । अतएव जब राम नाव पर चढ़ने को प्रस्तुत होते हैं तब केवट कांपता हुआ चरण धुला लेने का प्रस्ताव इस प्रकार करता है ।

नौका हौं नाहीं ले आऊँ ।
प्रगट प्रताप चरन को देखौं, ताहि कहाँ पुनि पाऊँ ।
कृपासिंधु पै केवट आयौ, कंपत करत सो बात ।
चरन परसि पाषान उड़त हैं, कत बेरी उडी जात ।
जो यह बधू होइ काहू की, दारु-स्वरूप धरै ।
छूटै देह, जाइ सरिता तजि, पग सों परस करै ।
मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै ।
सूरदास चढ़ौ प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै ।[1]

यहाँ केवट के डर के कारण दो हैं । प्रथमतः नाव यदि तरुणी बन गयी तो वह गरीब केवट दूसरी नाव कैसे पा सकेगा एवं द्वितीयतः अपने बड़े परिवार का पालन पहले ही नहीं कर पा रहा है तब उस नयी तरुणी का वह क्या करेगा :-

मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवन पति राई ।
मो देखत पाहन तरे, मेरी काठ की नाई ।
मैं खेऊँ ही पार कौ, तुम उलटी मंगाई ।
मेरौ जिय यौंही डरै, मति होहि सिलाई ।
मैं निरबल बित-बल नहीं, जो और गढ़ाऊँ ।
मो कुटुंब यही लग्यौ, ऐसी कहँ पाऊँ ।
मैं निर्धन, कछु धन नहीं, परिवार घनेरौ ।[2]

इस प्रकार के पद आगे भी कवि ने गाये हैं। इन पदों में व्यंग्य की झलक मौजूद है। व्यंग्य के विकास क्रम के सिलसिले में इन पदों का स्थान अनोखा है। "सूर सागर" में कृष्ण के बाल वर्णन-प्रसंग में शुद्ध हास्य के अनेक सुन्दर उदाहरण हैं। माखन खाता हुआ बालक कृष्ण हंसता खेलता जाकर घड़े में झांकने लगता है। उसमें अपना माखन खाता प्रतिबिंब देखकर वह समझता है कि कोई दूसरा बालक मेरा माखन खा रहा है। इस पर बालक कृष्ण पिता नंद से जाकर शिकायत करता है -

माखन खात हंसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ।
निज प्रतिबिंब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ।
मन में माख करत, कछु बोलत, नंद बाबा में आयौ।
वा घट में काहू के लरिका मेरौ माखन खायौ।

"भ्रमरगीत सार" में भी पर्याप्त मात्रा में व्यंग्य की झलक दिखायी देती है। दो-तीन प्रमुख स्थानों का उल्लेख यहाँ करना समीचीन है। उद्धव के प्रति व्यंग्योक्तियाँ सुनाते सुनाते गोपियों का ध्यान उनके निर्गुणोपदेश पर जाता है एवं वे व्यंग्य विनोद भाव से पूछने लगती हैं -

निरगुन कौन देस कौ बासी।
मधुकर, कहि समुझाई, सौंह दे बूझति सांच, न हांसी।
को है जनक, कौन है जननी कौन नारि, को दासी।
कैसो बरन, भेष है कैसो, किहिं रस में अभिलाषी।

उद्धव अब तक योग साधना का उपदेश दे रहे थे। इसलिए गोपियाँ उस पर भी व्यंग्य करने में नहीं चूकतीं -

1. सूरपंचरत्न (बालकृष्ण) : डॉ. स्व. लाला भगवानदीन
(गीत) " " पद २५ पृ. 156.

ऊधो, जोग कहा है कीजत।
ओढियत है कि बिछैयत है, किधौं खैयत है किधौं पीयत।
कीधौं कछु खिलौना सुन्दर, की कछु भूषण नीको।[1]

जब एकाएक गोपियों का ध्यान उद्धव के काले रंग की ओर जाता है अक्रूर काले थे एवं श्याम भी - तब गोपियां इस काले रंग के पीछे पड़कर व्यंग्यपूर्वक कहती हैं।

बिलग जनि मानो ऊधो, कारे।
वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैं ते कारे।
तुम कारे, सुफलक-सुत कारे, कारे कुटिल संवारे।
कमल नयन की कौन चलावे, सबहिनि मैं मनियारे।
मानो नील माट तैं काढे, जमुना आइ पखारे।
तातैं स्याम भई कालिंदी, सूर स्याम गुन न्यारे।[2]

इसी प्रकार का व्यंग्य संपूर्ण "सूरसागर" में बड़े पैमाने में प्राप्त है। अतएव निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि व्यंग्यपूर्ण वाग्विदग्धता की योजना में सूरदास हिन्दी के पुराने कवियों में बेजोड़ हैं।

हिन्दी के रीतिकालीन काव्य की एक विशेषता है विषयों की विविधता जिसके कारण इस काल के कवियों का व्यंग्य विनोद भी अनेक रूपों में सामने आता है। विषय की दृष्टि से रीतिकालीन व्यंग्य को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है - ﴾1﴿ प्रेम या शृंगार संबन्धी व्यंग्य ﴾2﴿ आश्रयदाता संबन्धी व्यंग्य ﴾3﴿ पारिवारिक जीवन संबन्धी व्यंग्य एवं ﴾4﴿ अन्य विषयक व्यंग्य।

1. सूरपंचरत्न (भ्रमरगीत) सं. पं. लाला भगवानदीन पद 14, पृ. 15.

प्रथमतः रीतिकाल का अधिकांश काव्य शृंगार प्रधान है। इसलिए प्रेमी-प्रेमिकाओं का हास-परिहास, उपालंभ आदि के व्यंग्य के हजारों उदाहरण उसमें प्राप्त हैं। घनानंद का एक उदाहरण इस संदर्भ में महत्वपूर्ण रहेगा -

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनो यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढे हो लाला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।[1]

कविवर मतिराम की ग्वालिनी, अपने अंतर का विनोद दबाकर होंठों से निकलती हुई हँसी को रोककर, देखिए, किस प्रकार रसिकप्रवर श्रीकृष्ण को फटकार रही है -

मनहुँ पायो है राज कछु, चढि बैठत ऐसे पलाश के खोंढे
गुंज गरे, सिर मोर-पखा, "मतिराम" हो गाय चरावत चोंढे।
मोतिन को मेरो तोर्यो हरा, गहि हाथन सौं रहे चूनरी पोंढे
ऐसोहिं डोलत छैल भए, तुम्हें लाज न आवत कामरी ओढे।।[2]

पद्माकर की ग्वालिनी भी "कामरी ओढैया" छैल को फटकारने में मतिराम की ब्रजबाला से पीछे नहीं है -

---

1. घनानंद चयनिका - सं०कृष्णचन्द्रवर्मा - पृ०113
2. मतिराम

केसरि-रंग मदबरसे, सरसे रस-रंग अनंग-चमू के,
धूम धमारन को "पद्माकर" छाय अकास अबीर के मूके ।
फाग यों लाडिली की, निहि मैं तुम्है लाज न लागत गोप कहुँ के,
छैल भए छनिया छिरको, फिरो कामरी ओढे गुलाल के दूबे ।।[1]

पद्माकर की दूसरी गोपी तो और भी रसज्ञा है । होली के दिनों में अवसर पाकर वह गोविन्द को भीतर बंद कर "मन भाया" करती है एवं मुस्कुराती हुई नैन नचाकर कहती है -

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविंदै ले गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पदमाकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी ।।
छीनि पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीडि कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसुकाय, "लला फिर आइयो खेलन होरी ।।[2]

कवि देव की गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य करती हैं जिस में प्रियतम की लंपटता एवं उद्धव की हृदयहीनता, दोनों पर मीठी चुटकी ली गयी हैं; साथ साथ कुब्जा को भी स्मरण कर लिया गया है -

जो हम को तुम से तपसी बिन जोग सिखावन आइहे ऊधो,
पै अब एही कहो उनको पिछली सुधि आवति है कबहूँ धों।
एक भली भई भूम भए जिन्हें भूलि गए दधि, माखन, दूधो,
कूबरी-सी अलि सूधी वधू अब पायो भलो घनस्याम सो सूधो ।।[3]

---

1. पदमाकर
2. ..
3. देव

भिखारी दास की गोपियाँ कुब्जा को अपना गुरु मानकर उससे मंत्र लेने एवं उसकी भक्ति करने को भी प्रस्तुत हो जाती हैं। उद्धव से उन्होंने कहा है -

ऊधो ! तहाँ ई चलो ले हमें जहँ कूबरि कान्ह बसे एक ठौरी ।
देखिय "दास" अघाय अघाय तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी ।।
कूबरी सों कछु पाइए मंत्र, लगाइए कान्ह सों प्रीति की डोरी ।
कूबरि भक्ति बढ़ाइए बंदि, चढ़ाइए चंदन बंदन रोरी ।।

रीतिकालीन अनेक प्रतिष्ठित कवि राज्याश्रित थे। आश्रय दाताओं की उन कवियों ने खूब प्रशंसा भी की है। ऐसी प्रशंसात्मक उक्तियों में व्यंग्य केलिए स्थान साधारणत: नहीं होता। अस्तु, अपने आश्रयदाता या काव्य नायक की वीरता के आतंक का जहाँ उन कवियों ने वर्णन किया है वहाँ उन्हें व्यंग्य की योजना का अवसर मिल गया है। ऐसे कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं भूषण। जिन्होंने शिवाजी के आतंक का विशद वर्णन किया है। एक सूबेदार की पत्नी पति को दरबार से आते ही उदास देखकर, उसके नेत्रों में आँसु उमड़ते पाकर, उसका बार बार काँपना, घबराना आदि को लक्ष्य करके पूछती है - क्या बादशाह ने तुम्हें दक्षिण का सूबेदार बना दिया है जो शिवाजी के आतंक से तुम्हारी यह दशा हो रही है।

चित्त अनचैन आँसु उमगत नैन देखि,
बीवी कहे बैन मियाँ कहियत काहिने।
भूषन भनत बूझे आये दरबार ते
कँपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहिने।

सीनो धकधकात पसीनो आयो देह सब
हीनो भयो रूप न चितौत बाएं दाहिने ।
सिवा जीकी संक मानि गए है सुखाय तुम्हें
जानि परत दच्छिन को सूबा करो साहि ने ।[1]

औरंगजेब के वजीरों एवं सेनानायकों पर शिवाजी का कितना आतंक छाया था, यह निम्नलिखित छंद से भी व्यंजित है जिसमें उनका प्रतिनिधि पूरब, पश्चिम एवं उत्तर के राजाओं के साथ साथ सागर पार करके पुर्तगाल तक की विजय का तो हौसला रखता है, परंतु दक्षिण भेजे जाने पर अपनी मृत्यु निश्चित समझकर सम्राट से प्रार्थना करता है कि मेरे प्राण बचा लीजिए एवं शिवाजी के विरुद्ध न भेजिए तो मैं जीवित रहकर आप के बहुत काम आऊंगा ।

पूरब के उत्तर के प्रबल पछांहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते
भूषन कहैं यों 'अवरंग सों उजीर, जीति
लेबे कों पुरतगाल सागर उतरते ।
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम-काज,
हजरत ! हम मरिबे कों नाहिं डरते ।
चाकर हैं उजर कियो न जाय नेक पै
कछु दिन उबरते तौ घने काम करते ।।[2]

पारिवारिक जीवन में पहले घर चाहिए, फिर गृहणी एवं भोजन । आवास में खाट या चारपाई भी शामिल है जिसमें अगर खटमल हो तो घर तक छोड़ने की नौबत आ जाती है । अलीमुहिमखाँ "प्रीतम" ने खटमल की लीला "खटमल बाईसा" में विस्तार से लिखी है । एक छंद में उन्होंने खाट के नगर में खटमल का राज्य होने की बात कही है -

बाघन पे गयो देखि बनन में रहे छपि,
सापन पे गयो तो पाताल ठौर पाई है ।
गजन पे गयो, धूल डारत है सीस पर,
बैदन पे गयो काहू दारू न बताई है ।
जब हहराय हम हरि के निकट गये,
हरि मोसो कही, तेरी मति भूल छाई है ।
कोऊ न उपाय भटकत जनि डोले,
सुनि, खाट के नगर खटमन की दुहाई है ।

दूसरे छंद में "प्रीतम" ने यह बताया है कि खटमलों के डर से ही जब ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तक ने चारपाई पर सोना छोड़ दिया है, तब दूसरों का तो कहना ही क्या है -

जगत के कारन, करन चारो बेदन के
कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरि के ।
पोषन अवनि, दुःख सोखन तिलोकन के,
सागर में जाय सोए सेस सेज करिके ।।
मदन जरायो जो, संहारे दृष्टि ही में सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरबर के ।

विधि हरि हर, और इनतें न कोऊ, तेऊ
खाट पे न सोवे खटमलन को डरि के ।।[1]

रीतिकालीन कवियों को तंबाकू से भले ही चिढ रही हो, परंतु भांग के वे बराबर प्रशंसक रहे हैं । कवि गंग ने तो भांग की पौष्टिकता की प्रशंसा में यहां तक लिखा है -

बिजया बिलार खाय, स्वानहू के कान गहे,
स्वानहू जो खाय सो तो धावे गजराज को ।
गजराज हू जो खाय, कोटि सिंह हाथ डारे,
बनिया जो खाय तो लुटाय देत नाज कौं ।।
नामरद खाय तो मरद के से काम करे,
महरी जो खाय तो धोवे काम काज कौं,
कहे कवि गंग गुन देखो बिजया के ऐसे,
चिड़िया जो खाय तो झपटि परे बाज कौं ।[2]

विविध कारणों से कवियों को एक स्थान से दूसरे को जाना पड़ता है । बेनी कवि ने भी कभी [redacted] लखनऊ की यात्रा की होगी । यहां की "कीच" उन्हें इतनी अखरी कि उन्होंने सदा केलिए लखनऊ वालों पर कीचड़ उछाल दी -

गडि जात बाजी और गयन्द गन अडि जात,
सुतुर अकडि जात मुसकिल गऊ की,
दावन उठाय पाँय धोखे जो धरत होत,
आप गरकाय रहि जात पाग मऊ की ।।
बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपै गात,
रथन को पथ न विनति बरदऊ की ।
बारम्बार कहत पुकार करतार तोसों,
मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की ।

भारतीय देवताओं में शिव को "भोलानाथ" माना गया है । इसलिए कवियों को भी उनसे भय नहीं लगता एवं वे जब तब उनके साथ व्यंग्य कर लिया करते हैं । पद्माकर ने उनके विवाह का वर्णन इस प्रकार किया है [5]

हँसि हँसि भजे देखि दूलह दिगम्बर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह में ।
कहै "पद्माकर" सो काहू सो कहै को कहा,
जेहि जहाँ देखे सो हँसेई तहाँ राह में ।
मगन भयेई हँसैं नगन महेस ठाढे,
और हँसे येऊ हँस-हँस के उमाह में ।
सीस पर गंगा हँसै भुजन भुजंगा हँसै,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में ।।

गंगा जीवों का उद्धार करने वाली है, पृथ्वी पर उसका अवतरण होते ही जिसने उसका नाम लिया, दर्शन किया, उसके जल का पान किया अथवा उस में स्नान किया वह कितना भी पापी क्यों न हो, तर गया ।

गंगा के इस कार्य से यमराज केलिए अपना कारखाना ही बंद कर देने की नौबत आ गयी । पद्माकर ने लिखा है --

गंगा के चरित्र लखि भाख्यो जमराज यह,
ऐ रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दे ।।
कहे पद्माकर नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजन को तजि यह धाम दे ।
देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव यातें,
दूतन बुलाई के बिदा के बेगि पान दे ।
फारि डाल फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खत जान दे बही को बहि जान दे ।।

केशवदास का समय यद्यपि रीतिकाल से पूर्व का है, परंतु परंपरा में वे इसी काल के कवियों के साथ बैठने के अधिकारी हैं । केशवदास के छः ग्रन्थ - रामचन्द्रिका, रसिकप्रिया, कविप्रिया, विज्ञानगीता, वीरसिंह देव चरित एवं जहाँगीर जस - चन्द्रिका - अब तक प्राप्त हुए हैं । इनमें प्रथम ग्रंथ ही कवि की प्रसिद्धि का मुख्य कारण है । रामचन्द्रिका के प्रत्येक प्रकाश में हास्य एवं व्यंग्य संबन्धी छुट-पुट प्रयोग मिलते हैं ।

"रामचन्द्रिका" के चौथे "प्रकाश" में राजा जनक की सभा में सीता स्वयंवर के लिए एकत्रित राजाओं का परिचय केशवदास ने सुमति-विमति के संवाद द्वारा दिया है । सब राजाओं का परिचय समाप्त होने पर रावण और बाणासुर प्रवेश करते हैं । दोनों एक दूसरे से सुपरिचित हैं एवं दोनों को अपनी अपनी शक्ति का बहुत अधिक गर्व भी है । इसलिए दोनों में नोकझोंक होती है ।

बाण कहता है -

बहुत बदन जाके । विविध बचन ताके ।

व्यंग्य यह है कि रावण के दस मुख हैं एवं जिसके इतने मुख होंगे, वह बात भी उतनी तरह की बनाएगा, वह असत्य भी बोलेगा एवं छल कपट युक्त वचन कहने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करेगा । व्यंग्य बड़ा तीखा है, परंतु रावण भी उसी स्वर में उत्तर देता है -

बहु भुज जुत जोई । सबल कहिए सोई
....
....
अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण।[2]

तात्पर्य यह है कि जिसके बहुत सी भुजाएं हैं, वही संसार में बली कहलाता है । व्यंग्य यह है कि अनेक भुजाओं वाला व्यक्ति वीर कहलाता था समझा तो जाता है, परंतु वस्तुतः होता नहीं । यथार्थ में बलहीन भुजाएं तुम्हारे लिए बस भार स्वरूप हैं, क्योंकि इन से तुम कुछ कर नहीं सकते । इन्हीं बलहीन भुजाओं के बल पर तुम बली कहलाना चाहते हो। बलिहारी तुम्हारी बुद्धि की ।

बाणासुर है राजा बलि का पुत्र जिसे वामन ने छला था एवं पाताल का राज्य दिया था । इसलिए बाणासुर अपनी भुजाओं का बल जब बखानता है तब रावण व्यंग्य करता है कि यदि तुम्हारी भुजाओं में वैसी ही

शक्ति है जैसे तुम बता रहे हो तब पिता का पाताल के कारागार से उद्धार करके उन्हें पृथ्वी पर क्यों नहीं ले आते। जिसकी भुजाओं में शक्ति हो वह अपने पिता को बंदीगृह में देखकर शांत कैसे बैठ सकता है? परन्तु चतुर बाणासुर इसका मुंहतोड़ उत्तर देता है -

पितु आसिप केहि ओक । दिय दच्छिना सब लोक ।
यह जानु रावन दीन । पित ब्रह्म के रस लीन ।।

रावण ब्राह्मण है । इसलिए बाणासुर व्यंग्य करता है कि अपने पिता को पृथ्वी पर ला तो मैं कभी ला सकता हूं, परंतु लाकर उन्हें बैठाउं कहां। वे तो तुम जैसे दीन ब्राह्मणों को सारी पृथ्वी का दान कर चुके हैं; तब क्या उसी दान की हुई पृथ्वी का फिर उपभोग करने केलिए उन्हें यहां लाउं। दूसरी बात यह कि वे ब्रह्मानंद में लीन रहनेवाले वीतरागी पुरुष हैं, तुम्हारी तरह विषयानंद के पीछे दौड़नेवाले कामिनी प्रिय नहीं । अतएव उस ब्रह्मलीन पुरुष को इस पृथ्वी पर लाना क्या उचित होगा जहाँ तुम्हारे जैसे विषयानंदी बसते हैं।

छठे प्रकाश में राम एवं सीता का विवाह होता है । राजा दशरथ सब बरातियों के साथ भोजन करने आते हैं । इस अवसर पर जनकपुर की नारियां सात छंदों में "गाली" गाती हैं जो इस प्रकार है -

अब गारि तुम कहं देहिं हम कहि कहा दूलह रामजू ।
कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करी कहत कुबाम जू ।
को गने कितने पुरुष कीन्हे कहत सब संसार जु ।
सुनि कुंवर चित दे बरनि ताको कहिम सब व्यौहार जु ।।

बहु रूप त्यों नवयौवना बहु रतन मय वपु मानिये ।
पुनि बसन रत्नाकर बन्यो अति चित्त चंचल जानिये ।
सुभ सेत-घन-मनिमाल पंक्तिका परति पठति प्रबंध जु ।
करि सीस पच्छिम पाद पूरब गात सहज सुगंध जु ।।

वह हरीहठि हिरनाच्छ देयत देखि सुंदर देह सों ।
वर बीर जग्य बराह बरही लई छीनि सनेह सों ।
ह्वे गई बिह्वल औ पृथु फिर सजे सकल सिंगार जु ।
पुनि कछुक दिन बस भई ताके लियो सरबसु सार जु ।

वह गयो प्रभु परलोक कीन्हों हिरनकस्यप नाथ जु ।
तेहि भाति भातिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साथ जु ।
वह असुर श्रीनरसिंह मारयो लई प्रबल छुड़ाइके ।
ले दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत जिय सुख पाइके ।

हरिचंद बिस्वामित्र को दह दुष्टता जिय जानिके ।
तेहि बरो बलि बरिबंड बरहीं विप्र तपसी मानिके ।
बलि बाँधि छल बल लई बामन दई "इंद्रहि" आनिके ।
इन्द्र तजि पति करयो अर्जुन सहसभुज पहिचानिके ।

तब तासु छबि मद छक्यो अर्जुन हत्यो रिषि जमदग्निजु ।
परसुराम सो सकुल जारयो प्रबल बल की अग्निजु ।
तेहिं बेर तब तिन सकल क्षत्रिन मारि मारि बनाइके ।
इक्कईस बेरा दई बिप्रन रुधिरजल अन्हवाइके ।

वह रावरे पितु करी पत्नी तजी बिप्रनु थूकिके ।
अब कहत हैं सब रावनादिक रहे ताकहं ढूकिके ।
यहि लाज मरियत ताहि तुमसों भयो नातो नाथजू ।
अब और मग निहारे न ज्यों त्यों राखिये रघुनाथजू ।।

राजा दशरथ हैं, ऐसी पृथ्वी के पति जिस को उक्त 'गाली' में एक "पुंश्चली" नारी बताया गया है । ऐसी नारी किसी एक को पति बनाकर संतुष्ट नहीं होती, वह अनेक पुरुषों को पति बनाती है । इस भूमि का आचरण ऐसा ही है । पुंश्चली नारी जैसे रत्नाभूषण धारण करती है, वैसे ही पृथ्वी भी रत्न गर्भा है । चंचलता भी दोनों में है । विलासिनी नारी जैसे सर्पमणि- जटित पलंग पर शयन करती एवं राग आलापत है, वैसे ही यह पृथ्वी भी शेषनाग के सिर पर शयन करती है एवं सर्वत्र नाद से युक्त है । पहले इस पुंश्चली का हरण हिरण्याक्ष द्वारा संपन्न हुआ था । उससे उसे वराह भगवान छीन लाए । फिर पृथु उसके पति बने । इनका स्वर्गवास होने पर इस पुंश्चली ने हिरण्यकश्यप को अपना पति बनाया । इस विलासी असुर ने उसके साथ बहुत काल तक भोग किया । तदनन्तर नृसिंह भगवान ने उस असुर को मारकर उसका उद्धार किया एवं उसे हरिश्चन्द्र को सौंप दिया । हरिश्चन्द्र ने उसे विश्वामित्र को भेंट कर दिया । विश्वामित्र तपस्वी ब्राह्मण थे तो उससे असंतुष्ट होकर उस कुकामा ने हठपूर्वक राजा बलि का वरण किया । इस पर वामन भगवान ने बलि को बांधकर उस पुंश्चली को इन्द्र को भेंट की । देवराज से भी वह कुकामा संतुष्ट न हो सकी एवं उसने सहस्त्रार्जुन को पति बनाया । इससे उस का उद्धार किया परशुराम ने एवं उसे सौंपा ब्राह्मणों को । इस पुंश्चली की सब करतूतें उन ब्राह्मणों को ज्ञात थी । इसलिए उन्होंने उसे थूककर छोड़ दिया । अब इस पुंश्चली को, राम ! आप के पिता ने अपनी पत्नी बनाया है एवं इस नाते वह आप की माता बन गयी है । उसका स्वभाव अब भी नहीं बदला है एवं रावणादिक विलासी आज भी उसकी ओर लालसा से ताक रहे हैं । उसके पूर्वचरित्र तो अमिट हैं । उन्हें तो आप बदल नहीं सकते; परंतु हम अब भी आप को चेतावनी कर देना चाहती है कि कुछ ऐसी व्यवस्था कीजिए जो अब तो वह आप के पिता को छोड़कर किसी अन्य पुरुष का मुख न देखें ।

यह बताने में संकोच नहीं है कि ऐसे व्यंग्य साहित्य में अनूठे हैं । तुलसी के "मानस" में परशुराम का आगमन धनुष भंग के पश्चात होता है, लेकिन "रामचन्द्रिका" में वे राम को शादी करके लौटते समय मार्ग में मिलते हैं । क्रम में यह परिवर्तन आने से यह अंतर आ जाता है कि "मानस" में तो राम के साथ केवल लक्ष्मण है परंतु "रामचन्द्रिका" में चारों भाई साथ हैं । जहाँ तुलसी ने परशुराम से केवल लक्ष्मण का संवाद कराया है, वहाँ केशव ने भरत एवं शत्रुघ्न को भी उसमें सम्मिलित कर लिया है । "रामचंद्रिका" में पहला व्यंग्य भरत ने छोड़ा है । राम के द्वारा शिवधनु के तोड़े जाने की बात जानकर जब परशुराम अपने कुठार से राम की रक्त सुधा का पान करने को कहते हैं तब भरत के वाक्य हैं -

बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन मन बनि आवे ।
आदि बड़े हो, बड़प्पन राखो जातें सब जग-जन सुख पावें ।
चंदन हू में अति तन घरषे, आगि उठै, यह गुनि सब लीजें ।
है हय मारे, नृपति संहारे, यह जस ले किन जुग जुग जीजे ।।

अर्थात् - हे भृगुपति, ज़रा सोचकर बोलो, तुम्हें उतनी ही बात कहनी चाहिए जितनी तन मन से पूरी कर सको । जो कर न सके, कहने से क्या लाभ, तुम तो ब्राह्मण हो, इसलिए ऐसी बातें कहो जिसे पूरा करके अप यश की रक्षा कर सके । एक बार राम का रक्त पान करने की बात तुम ने कह दी और हम उसको भूल जाते हैं, लेकिन आगे ऐसी बात जबान से मत निकालना । नहीं तो ध्यान रखना कि शीतल चंदन को भी जब रगड़ा जात है तो उस से भी आग निकल पड़ती है । इस बार तो हम शांत रहे, अब [illegible] कुछ कहता तो हमारी क्रोधाग्नि से तुम्हारा बचन कठिन हो जाएगा । तु ने हैहय राज आदि क्षत्रियों को मारके जो यश पाया है, उसे युग युग तक बनाये रखने में ही तुम्हारा कल्याण है । सूचना यह है कि अगर हम से

इसी प्रकार का व्यंग्य "रामचन्द्रिका" में भर पूर प्राप्त होता है रीतिकालीन छंद शास्त्री से रचित रामचन्द्रिका एक प्रकार से व्यंग्य विनोद का भी अजायबघर है। विविध प्रकार के व्यंग्य प्रस्तुत किताब में प्राप्त है विस्तार भय के कारण यहाँ अधिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं किये जाते।

रीतिकालीन उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त बिहारी [सं॰1660-1720] ने भी अपने काव्य में व्यंग्य का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। इनका अधिकांश व्यंग्य काव्य समष्टिगत है। जो गुन ग्राहक नहीं है, वह किसी भी कलाकार का सम्मान नहीं कर सकता। गुणी व्यक्ति यदि उनसे अपनी कला का मूल्यांकन चाहेगा तो निराशा ही हाथ लगेगी। बिहारी ने अपने दोहों में इस भाव की व्यंजना की है।

वे न इहाँ नागर बढे, जिन आदर तो आव।
फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई-गाव गुलाब ।।

श्रेष्ठ व्यंग्य केलिए साहित्यिकता एवं संक्षिप्तता अनिवार्य गुण है। बिहारी में दोनों मौजूद हैं। इस के मुताबिक इनके व्यंग्य सपाट न होकर अप्रत्यक्ष है जो व्यंग्य के प्रभाव को तीव्र बनाते हैं। यह व्यंग्य वास्तव में उन साहित्य-संगीतकला विहीन व्यक्तियों पर है जो साक्षात् पशु पुच्छ-विषाणहीन है। गुलाब के माध्यम से गुनी व्यक्ति को समझाया गया है कि इसे इन मूर्खों की उपेक्षा से निराश न होकर गुण ग्राहकों की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार एक हाथी के व्यापारी को संबोधित करके एक दोहे में कहा गया है कि उस गाँव में धोबी एवं कुम्हार बसते हैं। इनका गदहों से सम्बन्ध रहता है, यहाँ कोई हाथी का खरीददार नहीं मिलेगा -

बस्यौ जाइ, ह्यां को करे, हथिनु को व्यापार ।
नहिं जानतु इहिं पुर बसैं, धोबी ओढ कुम्हार[1] ।।

समाज में जो सीधा होता है उसका निरादर होता है तथा जो छल तथा कपट पूर्ण व्यवहार करता है वह आदर प्राप्त करता है । इस प्रवृत्ति पर बिहारी ने लिखा है -

बसे बुराई जासु तन, ताही को सनमानु ।
भलो भलो कहि छोडिए, खोटैं ग्रह जपु दानु[2] ।।

इसी प्रकार "बिहारी सतसई" में प्राप्त व्यंग्य के उदाहरणों को, स्थूल रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - ईश्वर के प्रति नीति संबन्धी, शृंगार विषयक एवं सरस व्यंग्य-विनोदोक्तियां ।

ईश्वर के प्रति व्यंग्य निम्न प्रकार का मिलता है -

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि ।
तज्यो मनो तारन - विरदु बारक बारनु - तारि[3] ।।

कवि की शिकायत है - "गज" की एक पुकार पर रक्षार्थ दौडे हुए ब्रह्म आज मेरे दीन पुकार नहीं सुन रहे हैं । हे ईश्वर मेरे दीन पुकार आप अनसुना कर देते हैं, मुझे तारने में टाला-टूली कर रहे हैं, उस से मुझे ऐसा लगता है कि एक बार गज का उद्धार करके मानों आप ने सदा केलि दीन दुखियों को तारने का विरद ही भुला दिया है । "तारनेवाला" कहल छोड दिया है ।

1· बिहारी बोधिनी - लाला भगवानदीन - पृ·277
2· हिन्दी कविता में हास्य रस - डॉ·नगेन्द्र - वीणा,कार्तिक सं·1944
3· बिहारी सतसई - श्री देवेन्द्रशर्मा "इन्द्र" तीसरा संस्करण,1964 -पृ·1

इस सिलसिले में कवि की दूसरी व्यंग्योक्ति है कि आपने तारने का विरद छोड़कर अच्छा ही किया, क्यों कि इससे पूर्व यश बना तो रहा, किसी को तार न सकने का अपयश तो नहीं मिला -

कौन भाँति रहि है विरदु अब देख की मुरारि ।
बीधे मोसो आइ के, गीधे गीधहिं तारि[1] ।।

भक्त का अनुरोध है - हे भगवान रामावतार में एक गिद्ध का उद्धार करके आप बहुत परच गए हैं एवं आप को गर्व हो गया है कि आप सभी को तारने में समर्थ हैं । मेरी विनती है कि आप उस गिद्ध को तार कर धोखे में न रहें । वह गिद्ध साधारण पापी होगा । उस गिद्ध की तुलना में मैं घोर पापी हूं । मेरी रक्षा करना आप केलिए आसान नहीं है । इसलिए आप का हित "तारन-विरद" त्याग देने में ही है । यदि कहीं आप ने मुझे भी तारने का प्रयत्न किया तो उस विरुद की रक्षा करना आप केलिए लोहे के चना चबाना हो जाएगा । देखना है कि आप अपने प्रण की रक्षा करते हैं या उसे त्याग देना ही उचित समझते हैं ।

ईश्वर को दीनबन्धु कहा जाता है; इस में भी कवि को आपत्ति है -

बंधु भये का दीन के, को तारयो रघुराई।
तूठे तूठे फिरत हो, झूठे बिरद कहाई[2] ।।

---

1. बिहारी मीमांसा - रामसागर त्रिपाठी - पृ.80
2. वही

कवि व्यंग्य करते हैं - दीन बन्धु ! मेरा विचार है कि आप कुछ लोगों के साथ बन्धु की तरह व्यवहार करते हैं, कुछ को तारा भी है परंतु इस का अर्थ यह नहीं है कि आप अपने को दीन बन्धु एवं पापियों को तारनेवाले मशहूर करा दें । वास्तव में इस प्रकार का यश उनको मिलना चाहिए जिसने दीनों एवं पापियों को तारा है, जिन की सहायता आप ने की, वे दीन कब थे। जिनका उद्धार आपने किया वे पापी कब थे। वास्तविक दीन एवं पापी मैं हूं । मेरी मदद आप करते ही नहीं, फिर दीन बन्धु कैसे पुकारूं । मेरे उद्धार में भी अनाकनी कर रहे हैं तब पापियों का उद्धार कैसे। लगता है कि आप चाटुकारों द्वारा की गई अपनी झूठी प्रशंसा में ही फूले रहे हैं । सच्ची प्रशंसा आप को तब मात्र मिलेगा जब हम जैसे पापियों का उद्धारण करेंगे ।

कहा जाता है कि प्राणियों का स्वभाव नहीं बदलता है । कवि का कहना है कि समय परिवर्तन के साथ साथ भगवान तक ने अपना स्वभाव बदल दिया है, ऐसी स्थिति में सामान्य प्राणी की कौन कहें -

थोरें ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि ।
तु महूं कान्ह ! मनो भए आज-कालिह के दानि ।।[1]

कवि का व्यंग्य है गुण का आदर हमेशा होता है । रस के बावजूद भी सभी प्राणियों में थोड़ा गुण रहता ही है । आज यह उदारता लुप्त हो गयी है । व्यंग्य है - हे भगवान ! मालूम पड़ता है कि किसी के थोडे ही गुणों पर रीझ जाने का अपना पिछला स्वभाव आपने भुला दिया है, इस के साथ साथ अपनी उदारता भी छोड़ दी है । आज कल आप भी कृपण

---

1. बिहारी मीमांसा - रामसागर त्रिपाठी - पृ.82

दानियाँ जैसे ही गए है कि व्यक्ति में कितने ही श्रेष्ठगुण पाकर भी उस पर नहीं रीझते । इस का सबूत यह है कि अनेक सद्गुणों से संपन्न होकर भी मैं जिस प्रकार समाज में दानियों द्वारा उपेक्षित हो रहा हूँ । इसी प्रकार आप अक्सर मेरी उपेक्षा भी करते रहते हैं । इसलिए कम से कम आप को अपनी उदारता नहीं भूलनी चाहिए थी ।

अपने को कुटिल जानकर और संसार में होनेवाली अपनी कुटिलता की निंदा सुनकर भी कवि अपनी प्रकृति क्यों नहीं बदलना चाहता, इस का कारण उसने इस प्रकार बताया है -

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौ न दीन दयाल ।
दुखी होउगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल ।।[1]

यहाँ व्यंग्य यह है कि हे भगवान, मैं जानता हूँ कि कुटिलता बड़ी बुरी चीज़ है । एवं संसार में सर्वत्र उसकी निन्दा होती है; फिर भी अपना कुटिलतापन इसलिए नहीं छोड़ रहा हूँ कि वैसा करने पर आप को कष्ट होगा । मेरी कामना है कि आप मेरे हृदय में रहें एवं आप उसमें अपने त्रिभंगी रूप के कारण तब बस सकते हैं जब वह कुटिल या वक्र हो, यदि मैं कुटिलता छोड दूँ तो मेरा हृदय सरल हो जाएगा । तब निश्चय ही आप के त्रिभंगी रूप को उसमें बसने में असुविधा होगी । आप के सुख केलिए एवं आप की ही सुविधा केलिए मैं संसार की सारी बदनामी सहकर भी अपनी कुटिलता त्यागना उचित नहीं समझता; क्योंकि इतना तो आप भी समझते हैं कि किसी सीधी वस्तु में टेढी वस्तु नहीं अँटती, टेढी तलवार केलिए म्यान भी टेढी बनाई जाती है । अर्थात् हे महाराज मैं कुटिल हूँ तो आप भी सरल नहीं हैं । आप के त्रिभंगी रूप की कुटिलता का अनुकरण करके ही मैं कुटिल बना हूँ । संसार

---

1. बिहारी मीमांसा - रामसागर त्रिपाठी - पृ.189

भले ही मेरी निन्दा करें परंतु आप को तो, मुझ पर, मेरी अनुकरणशीलता पर, सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर अवश्य ही मेरे हृदय में निवास करना चाहिए ।

कभी कभी भगवान की सरलता एवं उदारता के कारण भक्त चुनौती भी करते हैं । यह भी व्यंग्य के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है ·

मोहि तुम्हें बाढी बहस को जीते जदुराज ।
अपने अपने विरुद की दुहूं निबहन लाज ।।[1]

कवि का कहना है - हे यदुराज, आप का विरुद है पतित पावन । आज तक आपने जिन पापियों का उद्धार किया है वे सब साधारण पतित थे, लेकिन मैं पतित राज हूं । इस प्रकार आज दो राजाओं की टकर चल रहा है । एक, प्रतिष्ठित एवं शक्तिशाली राजा के समान मेरी चुनौती स्वीकार करके आप अपने यश की रक्षा करने में प्रवृत्त होंगे या मुझ से पराजय स्वीकार कर लेंगे· मैं चुनौती दे रहा हूं । इसलिए मैं अंत तक पतित से पतित काम करने में संकोच नहीं करूंगा, तब मुझे देखना यह है कि आप अपनी टेक कहां तक निभाते हैं - मैं पाप करते करते थक जाता हूं या आप मुझे तारते तारते थक जाते हैं एवं अपना पतित पावन यश त्यागने को सहमत हो जाते हैं·

बिहारी का कौशल यहां यदुराज के सम्बोधन में है । दरबारी कवि होने के नाते वे राजाओं की प्रकृति से पूरे परिचित थे । चुनौती दिए जाने पर, अपनी आन की रक्षा केलिए वे सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं इसी प्रकृति साम के बल पर यदुराज को उत्तेजित करके वह अपना उद्धार करा लेना चाहता है ।

1· बिहारी सतसई - देवेन्द्रशर्मा इन्द्र - पृ·29

इसी प्रकार का व्यंग्य पूरी सतसई में भर पूर है । बिहारी का व्यंग्य पांच भागों में बांटा जा सकता है -

1. शुद्ध नीति संबन्धी
2. कपटाचरण संबन्धी
3. अयोग्य व्यक्ति संबन्धी
4. कृपणता संबन्धी
5. अन्य संबन्धी ।

शुद्ध नीति संबन्धी व्यंग्य केलिए निम्न लिखित दोहा महत्वपूर्ण है -

सीतलता रु सुबास - की घटै न महिमा मूरु ।
पीनस वारे जो तज्यौ सोरा जानि कपूर[1] ।।

प्रस्तुत प्रसंग में बिहारी का कहना है कि जयसिंह की मृत्यु के पश्चात बिहारी के काव्य को ठीक प्रकार से न समझने के कारण उसे उचित आदर नहीं देते थे । योग्य व्यक्ति योग्य ही है चाहे उसे अच्छा स्थान प्राप्त हो या न हो उसके अयोग्यों से क्या तुलना। अर्थात् गुण न जानने वालों के द्वारा गुण का निरादर होने से गुण की महिमा नहीं घटती । एक प्रकार का नासा रोग है "पीनस" इसके रोगी को किसी प्रकार की गंध का अनुभव नहीं होता । कपूर श्रेष्ठ पदार्थ है जिनमें शीतलता होती है एवं सुगंध भी । व्यंग्य है कि यदि पीनस रोग का रोगी अपनी असमर्थता से कपूर के श्रेष्ठ गुणों का अनुभव न करके उसका तिरस्कार करें तो इस से इसकी महिमा किसी प्रकार घटेगी नहीं । जिस में गुण का आदर करने की बुद्धि एवं योग्यता नहीं, वह यदि गुणी व्यक्ति का निरादर करें, तो इसका

---

1. बिहारी मीमांसा - डॉ. रामसागर त्रिपाठी - पृ. 12

यह तात्पर्य नहीं है कि इसके गुणों का महत्व या मूल्य कम हो जाएगा। इसके बावजूद इस विचार के द्वारा स्वयं निरादर करने वाला गुणों की परख या उनका ज्ञान न होने की अपनी अयोग्यता ही सूचित करेगा।

कपटाचरण संबन्धी दोहे में बिहारी ने एक वैद्य की करतूत का बखान किया है; जो स्वयं नपुंसक है। पारा फूंक कर बनाई हुई औषध किसी पुंसत्वहीन को बहुत श्रम लेकर एवं बहुत एहसान जताकर इस आश्वासन के साथ दे रहे हैं कि उसके सेवन से शीघ्र ही पुंसत्व की प्राप्ति हो जाएगी।

बहु श्रम से, अहसानु कौ पारौ देत सराहि।
वैद-वधू, हँसि भेद सौं, रही नाह-मुंह चाहि।
पिय मन रुचि ह्वैबौ कठिनु, तन-रुचि होट सिंगार।
लाखु करौ, आँखि न बढ़ैं, बढ़ैं बढ़ाएं बार।।

आँख एवं बाल दोनों का बड़ा होना उनके सौन्दर्य का लक्षण माना जाता है, इसके बावजूद दोनों की प्रवृत्ति में अन्तर है। प्रयत्न या उपाय करने पर बाल बढ सकते हैं, लेकिन आँखें बढ नहीं सकतीं। "बाल बढन" से तात्पर्य है श्रृंगार की वृद्धि एवं आखें बढने का लक्ष्यार्थ है गुण-ग्राहकता, उदारता आदि में वृद्धि। अर्थात् व्यंग्य यह है कि बाह्य शोभा एवं सौन्दर्य की तरह यद्यपि सभी प्रकार के गुणों की वृद्धि की जा सकती है, परंतु वैसा करने से लाभ ही क्या जब उन पर रीझने वाले के मन में उस से किसी तरह का उल्लास न हो - उनके गुणों की परख करने वाली आँख पूर्ववत बनी रहे।

अयोग्य व्यक्ति संबन्धी व्यंग्य केलिए कई उदाहरण सतसई में प्राप्त हैं।

एक उदाहरण लीजिए :-

दिन दस अदरु पाइ कै करि लै आपु बखान ।
जौ लगि काग ! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमान ।।[1]

श्राद्ध पक्ष या पितृपक्ष में पितरों का श्राद्ध करते समय कुछ अन्न कौए केलिए भी निकालने का चलन है जो उसे बुला बुलाकर खिलाया जाता है । यह सम्मान केवल श्राद्ध पक्ष में कौए को मिलता है । यहाँ व्यंग्य है ऐसे अयोग्य व्यक्ति पर जिस में वस्तुतः कोई ऐसा गुण न हो जिस केलिए उसका सम्मान किया जाए, परन्तु कारण विशेष से या अवसर विशेष पर विवश होकर उसका जो आदर सत्कार करना पड़े, उसका भी वह गर्व से बखान करता फिरे ।

कृपणता एवं लोभ के संदर्भ में निम्न व्यंग्य दोहा उदाहरणार्थ दिया जा सकता है ।

घर घर डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ ।
दियैं लोभ - चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ।।[2]

प्रस्तुत दोहे में लोभी पर व्यंग्य किया गया है । लोभी की आँखों पर लोभ रूपी चश्मे के चढ़े होने से उसे छोटी से छोटी चीज़ भी बड़ी दिखाई देती है । इसी कारण तो वह धनी-निर्धन, बड़े-छोटे आदि का ध्यान न करके हर घर एवं हर जन से माँगता फिरता है ।

कृपणता पर व्यंग्य निम्न दोहे से स्पष्ट हो जाएगा -

> मीत, न नीति, गलीतु ह्वै जो धरिये धनु जोरि ।
> खोएं - खरचें जो जुरे, तो जोरिये करोरि ।।

किसी कृपण के यहां नयी ब्याही बहू ऐसी आयी जिस के हाथ बहुत छोटे थे । कृपण स्वभाव का ससुर यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ । उसकी मुट्ठी में बहुत थोडा अन्न आ सकेगा, यह सोचकर उस कृपण ने भिखारियों को भीख देने का काम उस "थुरहथी" बधु को सौंप दिया । परंतु नववधु इतनी रूपवती थी कि उसके रूप दर्शन के लोभ से सारा जगत ही भिखारी बनकर उस के द्वार पर जुटने लगा एवं इस प्रकार कृपण की सारी योजना पर पानी फिर गया ।

बिहारी कालीन साहित्य इस प्रकार के व्यंग्यों केलिए मशहूर है ।

इस के बावजूद रीतिकाल में "भडौए" अधिक मात्रा में लिखे गए । ये व्यंग्यात्मक होते हुए भी कटुता पूर्ण होते हैं । "भडौए" हिन्दी में अपने ढंग की एकमात्र वस्तु है । "भडौवा" शब्द फारसी के हजों का पर्याय है । उस में एक प्रकार की उपहासपूर्ण निंदा रहती है । कविगण दरबारों में रहा करते थे । उन्हें राजाओं का आश्रय प्राप्त था । आश्रयदाताओं पर जब ये कविगण कुपित हो जाते थे तो "भडौए" लिखकर अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति करते थे । भडौए व्यक्तिगत व्यंग्य हुआ करते थे, जिनमें साहित्यिकता कम तथा व्यंग्य का अंश अधिक रहता था ।

बेनी कवि इसलिए अपने आश्रयदाता से बिगड़ गए कि उन्होंने उन्हें बहुत छोटे आम भेंट में दिए -

चींटी की चलावे को मसा के मुंह आय जाय,
श्वास के पवन लागे कोसन भगत हैं ।
रोनक लगाए मरू-मरू के निहारे जात,
अनु परमानु की समानता लगत हैं ।
बेनी कवि कहैं और कहां लों बखान करों
मेरे जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत हैं ।
ऐसे आम दीन्हें दयाराम मनमोदिकर
जाके आगे सरसों सुमेरु सो लगतु हैं[1] ।

इसी प्रकार आश्रय दाता की दी हुई रजाई पर एक भड़ौवा इन्होंने लिखा उस रजाई में इतनी कम रूई थी कि -

सांस लेत उड़िगो उपल्ला औ भितल्ला सबै
दिन द्वै की बाती हेतु रूई रह गई है[2] ।

इसी प्रकार कवि बेनी ने एक कंजूस की शादी के बहाने उसकी कंजूसी का वर्णन किया है -

---

1. नमोही तिवारी - भड़ौवा - संग्रह - पृ.48
2. वही पृ.51

आध पाव तेल में तैयारी भई रोसनी की,
आध पाव रूई में पोशाक बनी वर की ।
आध पाव छोले के गिनोरे दिए भाइन को,
माँगि माँगि लाई है परायी चीज घर की ।।
आधी-आधी जोरि "कवि बेनी" की विदाई दीन्हीं,
ब्याहि आई जबते, बोले न बात थिर की ।
देखि-देखि तबियत हमारी सुमादी भई,
सादी कहाँ भई बरबादी भई घर की ।।

बेनी कवि को किसी ने सड़े पेड़े दिए । उन्होंने उस पर इस प्रकार का व्यंग्य किया -

चौकि परयो पितु लोक में बाप,
सो आयु के देखि सराध के पेरे ......[2]

एक सवैए में "नीमहकीम" को व्यंग्य का निशाना बनाया गया है । उन वैद्य जी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि जिस की नाड़ी उन्होंने देखी वही स्वर्ग धाम को चला गया । रीतिकालीन कवि भी सामाजिक यथार्थ से अनुकूल होते थे । नहरी कवि कहते हैं -

वैदक पढ़ी है न मढ़ो है लोभी लालच, में
मठा सोंठ धनिया पिआवे महा जुर को ।
बैठे निज द्वार पे बिसाला माला डारि गरे,
सो गुनो कसाई ते मान देव गुरु को ।
कवि राम नहरी बहति बाके गहरी सु,
वैद अगर हरी हमारो मन मुरको ।
जाने निज नारी को न भेद धावे नारी हेतु, _

"भड़ौवा" संग्रह के अधिकांश कवियों ने सूमों की खिल्ली उड़ाई है । एक निर्बल घोड़ा दाम में मिलने पर -

जीन धरौं कि धरौं तुलसी मुख देउँ लगाम के राम कहाऊँ[1] ।।

एक लालाजी भिखारी को देखते ही पौरी के किवार बंद कर लेते हैं, साधुओं को दोष देते हैं, बात कहे रो देते हैं तब भी लोग उनसे कहते हैं कि कुछ देते नहीं ।

पौर के किवार देते धरे सबै गार देत,
साधुन को दोस देत प्रीत न चाहत है ।
मगन को ज्वाब देत बात कह रोय देत,
लेत देत माँज देत ऐसे निबहत हैं ।
बागे के हू बन्द देत बारन की गाँठ देत,
पर्दन के काछ देत काजई करत हैं ।
ऐसे पे कहत सबै लाला कछु देत नाहिं,
लाला जू तो आठो जाम देत ही रहित हैं[2] ।।

कवि अंबिका प्रसाद एक ऐसे सूम का वर्णन करते हैं जो जमीन में धन गाड़ कर उसपर खाट बिछाकर दिन-रात लेटे रहते हैं -

---

1. भड़ौवा संग्रह - मकछेदी तिवारी - पृ.22
2.

गाड़्यो धन जमी में बिछाय राखी तापे खाट,
तापे रहें लेटे ऐसे सूमन के बेटे हैं ।

सूम ने ऐसा श्राद्ध किया कि पुरखा उसे देखकर रोये :

"सुमति सूम की देखि सराध,
चढ़ी भर पितर देखि के रोए"[1] ।

कर्कशा नारी को आधार बनाकर एक भड़ौआ निम्न प्रकार लिखा गया :-

"सासु को विलोकि सिंहनी सी जमुहाई लेनि,
ससुर को देखि बाघिनी सी मुंह बावती ।
ननद को देखे नागिनी सी फुफकारे बैठी,
देवर को देखें डाकिनी सी डरपावती ।।
भने "परसन्न" मोछे जारती परोसिन की,
खसम को देखे खांव खांव कर धावती ।
ऐसी करकसाए कसाइन, कुलच्छनी है,[2]
करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती ।।

रीतिकालीन व्यंग्यकारों द्वारा कचहरी के चपरासी, क्लर्क, वकील आदि पर भी व्यंग्य लिखे गए । वास्तव में भड़ौवे में साहित्यिकता का अंश कम होते हुए भी आलंबन को समाज के सामने घृणास्पद दिखाने का लक्ष्य स्पष्ट मिलता है एवं उसमें ये सफल हुए हैं । कहीं कहीं तो इन असामाजिक तत्वों के विरुद्ध इतना आक्रोश है कि व्यंग्य ने गाली गलौज का रूप धारण कर लिया है । एक सरकारी अफसर को लक्ष्य बनाकर लिखा गया है :-

---

1.
2. भड़ौआ संग्रह : नकछेदी तिवारी - पृ.8

अति ही नकारे मदवारे कदवारे छोटे,
छोटे रिसवारे विष विसवारे बडे साम के ।
पाई रस जामा और पाग तामें सावा,
केती आमा के मोया औ कहेयावे प्रमान के ।।
कवि राम कहैं जूती चले चटकाए,
मटकाए तिनहीं हो जिन पूछत न पान के ।
जंगली हरामी कूर कुटिल कुजाती,
यारो अमला न होय सब कंगला जहान के ।।

दीन दयाल गिरि एवं गिरधर कविराय रीतिकाल के ही अन्तर्गत आते हैं । ये दोनों मुख्यत: नीति कवि के रूप में मशहूर हैं । नीतिकाव्य तथा व्यंग्य-काव्य में भेद यह है कि नीति काव्य में उपदेश-प्रधान होती है, कटुता नहीं होती तथा वह समष्टिनिष्ठ होता है जब कि व्यंग्य काव्य में हंसी उडाकर सुधार करने की प्रक्रिया होती है । दूसरा भेद यह है कि जितनी अधिक मात्रा में हास्य, वक्र उक्ति एवं वचन विदग्धता का उपयोग व्यंग्य काव्य में किया जाता है उतना नीतिकाव्य में नहीं । तीसरा मुख्य भेद यह है कि अधिकांश नीति काव्य में सीधे रूप से बात पूछी जाती है जब कि व्यंग्य काव्य में प्रतीक, बिम्ब तथा अप्रस्तुत विधान का सहारा लिया जाता है । कहीं कहीं व्यंग्य-काव्य तथा नीति काव्य में अन्तर करना उतना ही कठिन होता है जितना हास्य काव्य तथा व्यंग्य काव्य में ।

समाज में नीच लोगों की प्रतिष्ठा तथा गुणियों की उपेक्षा पर गिरधर कविराय की एक कुंडली है -

कौवा कहत मराल सों, कौन जाति को गोत ।
तोसों बदरूपी महा, कोउ न जग में होत ।।
कोउ न जग में होत, कुटिल मैले मल खाने ।
ऊपर बैठि अचार, सबै मरजाद नसाने ।।
कह गिरधर कविराय, कहाँ ते आयो होवा ।
धन्ये हमारो देस जहाँ, सज्जन जन कौवा[1] ।

कचहरी में रिश्वत लेने की बहुत पुरानी परम्परा है । कवि जी को भी कचहरी के क्लर्क ने नहीं छोड़ा । उन्होंने व्यंग्य लिखा -

अमला आँख दिखावहीं, जब लों मिलै न घूस ।
रूपया पाये भीतरे, काम करें ज्यों मूस ।।
काम मरें ज्यों मूस, हाल कोई नहिं जाने ।
लिखें और हजहार, असामी और बखाने ।।
कपटी बकुला बरन, बाँधि के बैठे समला ।
पाधम हरन प्रवीन, बड़े अपकारी अमला[2] ।

महन्तों का पाखंड उस समय भी था । भोली भाली जनता को वे धर्म के नाम पर ठगते थे । उनका स्वयं का आचरण महाभ्रष्ट था किन्तु दूसरों को सदाचार का उपदेश देते थे ।

दान औ मान को जाने नहीं,
सब दूर भई गुन की परिपाटी ।।

---

1. काव्य कानन - राजचक्रधर सिंह - पृ. 203
2. वही

है भिखिआरी उधारी बडे,
जिन लागे नहीं दरबार में सारी ।।
नारी कुमारी कहानी राखत,
इष्ट विरोधी कुबुद्धि राटी ।।
लोक में सोई बडे ख्याता,
धरे कंठ में काठ कपार में माटी[1] ।।

मुंशी जी की रीतिकाल में व्यंग्य के निशाने बनाये गए, मुंशीजी की कलम तलवार होती है । जो शौर्यपूर्ण कार्य वीर लडाई के मैदान में तलवार से करते हैं, मुंशीजी अपने दफ्तर में बैठकर कलम के सहारे सोकडों को वीरगति प्राप्त करा देते हैं ।

श्याम में कलम दान कर तें निकारी तामें,
स्याही जल विष में बुझाई डार डार है ।
धार युक्त जोहर - जगावत अनेक संग,
अकिल अनेक तामें सकिल सुढार है ।।
"जुगल किशोर" चले कागद धरा पे,
धाय-धारे ना दया की नेक लागे बार पार है
पाय के गवार गाढ साफ करे साहत में,
मुन्सी कसाई की कलम तरवार है[2] ।।

---

1. काव्य कानन - राजा चक्रधर सिंह - पृ.203
2. वही पृ.205

रीति काल की चर्चा के सिलसिले में भारतेन्दु युग को [1850 - 1900] भी जोड़ना समीचीन है । ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग प्रारंभ हो गया था । नई शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदलती थी । उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नई उर्मी उत्पन्न हो रही थीं । कवियों एवं लेखकों का दृष्टि क्षेत्र तथा मानसिक अवस्थान बदले ही थे । नूतन एवं प्राचीन का संघर्ष काल था । मासिक पत्र-पत्रिकाओं की शुरूआत हो चुकी थी । स्वामी दयानंद के आर्यसमाज ने धार्मिक क्षेत्र में भी क्रांति ला दी थी । उर्दू का बोल बाला था । उसके प्रभाव को कम करने की चेष्टा होने लगी थी । चारों तरफ सुधार तथा प्रगति की चर्चा हो रही थी । अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव भी बढ़ने लगा । ब्रजभाषा के शृंगार काव्य के प्रति लोगों का उपेक्षा भाव प्रबल हो उठा था । 1857 के विद्रोह का प्रभाव साहित्य पर कम पड़ा था । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बहुत कम कवियों ने विद्रोह पर लिखा -

"उन्होंने [भारतेन्दु कालीन कवियों] अंग्रेज़ी राज्य की अनेक अनीतिपूर्ण बातों - प्रधानतया आर्थिक शोषण - का विरोध किया और प्राचीन भारतीय गौरव का गान गाकर स्वतंत्रता की आवाज़ बुलन्द की - यद्यपि उनका विरोध "हिज़ मेजेस्टीस अपोजिशन" वाला विरोध था और स्वतंत्रता से उनका तात्पर्य ग्रेट ब्रिटेन के साथ राजनीतिक संबन्ध विच्छेद का था ।[1]

मुद्रित शब्द के माध्यम से सामने आनेवाली कविता में हमें ऊपरी तौर पर सुधार के स्वर ही विशेष रूप से सुनने को मिलते हैं । इन स्वरों में कहीं भारत के प्राचीन गौरव को उभारा गया है तो कहीं देश की

---

1. प्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं.रामचन्द्रशुक्ल - सं.2003 का संस्करण, पृ.390

वर्तमान दुर्दशा का चित्रण किया गया है । कभी कभी अकाल, टैक्स, महामारी आदि के कारण जब स्थिति असह्य हो उठती थी तब कविगण धैर्य छोड़कर प्रत्यक्ष प्रहार करने में भी नहीं चूकते थे ...वे सुधार के नाम पर समझाते-बुझाते या समझौता करने की राय नहीं देते थे बल्कि कहीं तीखे व्यंग्यों की वर्षा करके तो कहीं देश और जाति के पिछड़ेपन और अधोगति पर तीव्र आक्रोश और झुंझलाहट व्यक्त करके स्वतंत्रता और उन्नति की दुर्दमनीय प्यास को वाणी देते थे ।

भारतेन्दु ने पर्याप्त मात्रा में व्यंग्य काव्य लिखा । यही नहीं उन्होंने व्यंग्य लिखने वालों का एक ऐसा कवि मंडल तैयार किया जिसने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विकृतियों को व्यंग्य का निशाना बनाया । रीति कालीन कवियों ने व्यंग्य के निशाने सूम, अरसिक, वैद्य आदि बनाए थे । भारतेन्दु कालीन कवियों ने सरकार के खुशामदी, पुरानी लकीर के फकीर तथा फैशन के गुलामों को व्यंग्य काव्य का लक्ष्य बनाया । इन लेखकों ने तीखे व्यंग्य लिखे एवं अपनी निर्मम प्रकृति का परिचय दिया । पराधीनता में इनके पास दूसरा मार्ग भी नहीं था "असन्तुष्टावस्था के समय व्यक्तिकरण का प्रयास व्यंग्यात्मक रूप ही ग्रहण करता है यों कि इनके द्वारा इच्छित परिस्थिति उपस्थित करने में यथेष्ट सुविधा होती है"। विदेशी शासकों के अत्याचार की अति हो रही थी । जनता में जागरूकता जगाने में भारतेन्दु - मंडल ने उल्लेखनीय कार्य किया । भारतेन्दु ने व्यंग्य काव्य केलिए अनेक काव्य रूपों का प्रयोग किया । उनका उद्देश्य जन संपर्क था, इसलिए उन्होंने लहणे, मुकरियाँ आदि का प्रयोग किया । "चना जोर गरम" के लहजे में जो तीखा व्यंग्य है वह द्रष्टव्य है :-

चूरन अमेल सब जो खाते, दूनी रिश्वत तुरत पचाते ।
चूरन सभी महाजन खाते, जिस से जमा हजम कर जाते ।

चूरन खाते लाला लोग, जिन को अकिल अजीरन रोग ।
चूरन खावैं एडीटर जात, जिनके पेट पचे नहीं बात ।
चूरन साहब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता ।
चूरन पुलीस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते ।।[1]

सरकारी कर्मचारी, महाजन, संपादक, पुलीस कर्मचारी, अंग्रेज़ आदि सभी को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है । इस काल में लिखे गए व्यंग्य - काव्य की कोटि निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि जिस जनता केलिए यह लिखा गया था उसकी ग्रहणीयता इस सीमा से ऊपर नहीं जा सकती थी । साहित्यिकता की दृष्टि से इस काल में लिखा गया व्यंग्य काव्य उच्च कोटि का न माना जाय; किन्तु जनतंत्र जागरण की दृष्टि से इसका महत्व सन्देह रहित है वैष्णवों द्वारा मदिरा पान किये जाने पर उनपर यह व्यंग्य कसा गया -

वैष्णव लोग कहावहीं, कंठी मुद्रा धारि ।
छिपि छिपि के मदिरा पियहिं, यह जिय माहि विचारि ।।[2]

अंग्रेज़ी प्रेम पर एक व्यंग्य का उदाहरण -

भीतर तत्व न झूठी तेजी । क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेज़ी ।।[3]

बेकारी पर एक व्यंग्य -

आँखें फूटें भरा न पेट । क्यों सखि सज्जन नहिं ग्राजुएट ।।[4]

---

1. काव्यचर्चा - कालताप्रसाद सुकुल - पृ.55
2. भारतेन्दु ग्रन्थावली
3. वही
4. वही

पुलिस पर एक व्यंग्य -

कपट कटारी हिय में हुलिस
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलीस ।।[1]

भारतेन्दु ने "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" नामक पत्रिका में भी व्यंग्य कविताएं लिखीं । इसमें "कब्रिस्तान के नए शायर" शीर्षक से उन दिनों के बढ़ते हुए टैक्सों पर आपने लिखा -

नाम सुनत ही टिक्स का आह करके मर गये
जान ली कानून ने बस मौत का टीका हुआ ।।[2]

हिन्दू घरों में किसी की मृत्यु हो जाने पर "स्यापा" बैठता है जिस में औरतें सम्मिलित रूप से छाती पीटती हैं, रोती हैं तथा शोक मनाती हैं । "उर्दू" के पतन पर "स्यापा" के माध्यम से भारतेन्दु ने व्यंग्य लिखा जिस में वक्र उक्तियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया ।

है है उरदू हाय हाय, कहां सिधारी हाय हाय
मेरी प्यारी हाय हाय, मुंशी मुल्ला हाय हाय ।
मुंशी मुल्ला हाय हाय, बल्ला बिल्ला हाय हाय
रोयें पीटें हाय हाय, टांग घसी है हाय हाय
सब दिन सोवें हाय हाय, डाढी नोचें हाय हाय
किसने मारी हाय हाय, दाता पीसी हाय हाय ।।[3]

1· भारतेन्दु ग्रन्थावली

2· हरिश्चन्द्र चन्द्रिका

3· वही

यद्यपि उक्त व्यंग्य विद्रूप हो गया है एवं कठोरता की मात्रा बढ गयी है किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में इसका औचित्य असंदिग्ध है । भारतेन्दु काल के दूसरे लेखक राधाचरण गोस्वामी ने भी "स्यापा" शैली का उपयोग करके "इलबिर्ट" बिल के विरोध में लिखा -

हैं इलबिर्ट बिल हाय हाय, है है मुश्किल हाय हाय
है हकतल्फी हाय हाय, सब हकतरफी हाय हाय
बच्चा बच्ची हाय हाय, चच्चा चच्ची हाय हाय
सच्चा बनियां हाय हाय, बडा कहनियां हाय हाय
जोडो चन्दा हाय हाय, दुक्मी बन्दा हाय हाय ।
जब तक दम है हाय हाय, सिर की कसम है हाय हाय ।।[1]

भारतेन्दु - मंडल के कवियों ने जम-जमकर ब्रिटीश शासकों पर करारे व्यंग्य से प्रहार किया है । उस समय कई उत्साही लेखकों एवं कवियों ने मासिक तथा पाक्षिक पत्र निकाले थे । भारतेन्दु की हरिश्चन्द्र मैगजीन के अतिरिक्त राधाचरण गोस्वामी का "भारतेन्दु", प्रतापनारायण मिश्र का "ब्राह्मण" तथा बालकृष्ण भट्ट का "हिन्दी प्रदीप" भी उल्लेखनीय है । इन सभी पत्रों में व्यंग्य का प्रमुख स्थान रहा करता था ।

उस समय जनता भारी टैक्सों के कारण कराह रही थी । भट्ट जी ने लिखा:

गाओ स्यापा हय हय टिक्कस, सब मिलि रोओ हय हय टिक्कस,
इन्कमटैक्स के बाबा जन्मे, चुंगी के परपोते
चाखों यह फल ब्रिटिश रूल को, जिनके हैं हम जोते
हय हय टिक्कस - हय हय टिक्कस ।।
जो जन यह स्यापा को गैहे, टिक्कस की ब्याधा नहिं पैहैं,
खैर मनाओ आठों याम, एडीटर को रक्त राखो राम
हय हय टिक्कस ।[2]

भारतेन्दु मंडल के कविगण व्यंग्य के माध्यम से जनता में जागरण लाने की चेष्टा कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने जनजीवन में प्रचलित स्यापा, कजली, लावनी, विरहा, मल्हार, रेखता, मुकरी, चैती, होली आदि का व्यवहार कर अपनी बात जनता के दिल तक पहुँचायी।

पं॰प्रतापनारायण मिश्र तत्कालीन लेखकों में अग्रणी थे। हिन्दी के व्यंग्य लेखन को परिपुष्ट करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ये ब्राह्मण नामक मासिक पत्र निकालते थे। यह पत्र व्यंग्य से परिपूर्ण रहता था। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक असंगतियों पर ये खूब व्यंग्य बाण चलाते थे। पाश्चात्य फैशन का प्रभाव बराबर बढ़ता चला जा रहा था -

तन मन सों उद्योग न करहीं, बाबू बनिबे के हित मरहीं,
परदेशिन सेवत अनुरागे, सब फल खाय धतूरन लागे[1]।

धर्म के नाम पर भारत में प्रारंभ से ही अनाचार होता रहा है पाखण्ड के सहारे धर्म के नाम पर कितना छल किया जाता है जो अनैतिकता को आश्रय देता रहा है। पाखण्डी एवं दम्भियों को लक्ष्य बनाकर मिश्र जी ने लिखा-

मुख में चारि वेद की बातें, मन पर तन पर तिय की घातें,[2]
बनि बगुला भगतन की करनी, हाथ सुमरनी बगल कतरनी।

1• प्रताप लहरी - प्रतापनारायण मिश्र - पृ॰65
2• वही 210

आर्य समाज का उदय हो चुका था । सनातन धर्म के मानने वालों से आर्य समाजियों का, मूर्तिपूजा को लेकर मतभेद था । जहाँ तक बौद्धिक वर्ग का प्रश्न है वह मूर्तिपूजा सम्बन्धी मत भेद के रखते हुए भी आर्य समाज के सुधारवादी आन्दोलन की मन ही मन प्रशंसा करता था । मिश्र जी ने उन व्यक्तियों को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया जो बिना किसी भी धर्म का मर्म समझे मूर्खतापूर्ण व्यवहार करते थे ।

पोथी केहि के धर ते आवें, कबहूँ सपन्यों देखा नाहिं ।
दिगविद जुगविद साम अथवन - सुनियत आल्हखंड के माहिं ।।[1]

बालमुकुन्द गुप्त ने सन् 1890 में "सरसैयद का बुढ़ापा" शीर्षक कविता में सर सैयद के राष्ट्रीय हितों के घातक विचारों की तीव्र आलोचना की है । यद्यपि गुप्त जी की व्यंग्य लिखने की प्रतिभा गद्य में अधिक मुखरित हुई किन्तु जो भी व्यंग्य काव्य उन्होंने लिखा वह मार्मिक है । भारतवासिय के पतन पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा -

पै हमरे नहिं धर्म कर्म्म कुल कानि बड़ाई ।
हम प्रभु लाज समाज आज सब धोय बहाई ।।
मेटे वेद पुरान न्यायनिष्ठा सब खोई ।
हिन्दू कुल मरजाद आज हम सबहि डुबोई ।।
तन्त्र पुराण मन्त्र षट् दर्शन वेद सवेद सिधारे ।
गीता में लग गया पलीता, कर्म धर्म झक मारे ।।
रहे डारविन, मिल स्पेन्सर, लड़कों की रही पढ़ाई ।
और रही लड़की की शादी जोरू की लगाई ।
रही सड़ी दुर्गन्ध ड्रेन की और धूम में पानी ।
चेचक हैजा ज्वर मलेरिया - और प्लेग निशानी ।[2]

1· प्रतापलहरी - प्रतापनारायण मिश्र - पृ·210

"गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य में सामयिक प्रश्नों पर क्रमपूर्वक व्यंग्य लिखने की परंपरा प्रारंभ की । कहा है "अनुकरण सब से बड़ी प्रशंसा है" । हिन्दी संसार उनका अनुकरण करके हृदय से आदर कर रहा है । अवश्य ही उनके व्यंग्य की कमियाँ पाई जाती हैं जो प्रारंभिक तथा परंपराहीन कृतियों में मिलती है"[1] । उनके पास पूर्ववर्ती पंडितों के बनाए मापदंड न थे किन्तु यह एक अंश में असुविधा थी क्यों कि परंपराओं से बंधे रहने के कारण उनकी रचनाओं में ताजगी थी । उन में एक विशेष प्रकार की स्पष्टता एवं सिधाई थी जो बाद की कृतियों की कृत्रिमता में बहुधा मन्द हो जाती है । आज का व्यंग्य अधिक उन्नत, तीखा, मखमल में लपेटा एवं शर्करा मंडित है, इसकी ध्वनि अधिक गहरी है, किन्तु गुप्त जी के व्यंग्य में कुछ बात ही अनोखी थी । उसमें जो स्वाभाविकता थी एवं हृदय गुदगुदाने तथा मर्मस्थल पर हलकी चोट करने की जो शक्ति थी वह आज कम देखने को मिलती है ।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की काव्य परंपरा का समग्रतः अध्ययन करते पर ज्ञात होगा कि व्यंग्य काव्य की परंपरा संस्कृत काव्यों से लेकर आज तक वृद्धि की ओर अग्रसर है तथा अब भी वृद्धि की ओर गतीयमान है ।

।ssssssssss।

---

1. गुप्तजी की व्यंग्यकला, भारतेन्दु ग्रन्थावली - श्रीनारायण चतुर्वेदी

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य की प्रधानता

आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य की बड़ी प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। हिन्दी काव्यान्तर्गत में व्यंग्य की पृष्ठभूमि में विभिन्न प्रकार की सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियाँ एक साथ कार्य करती दिखायी देती हैं। इन्हीं विसंगतियों एवं अवरोधों ने ही व्यंग्य की पृष्ठभूमि तैयार की है एवं उसे युगीन सत्यों एवं कुंठाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है। व्यंग्याभिव्यक्ति के विकास के मूल में एक ओर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों के प्रति रचनाकार की व्यंग्यभावना को मुखर बनाने वाला क्षेत्र था तो दूसरी ओर संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में व्याप्त वह परंपरा भी थी, जिस में ढोंगों, मिथ्याचारों, व्यक्तिगत असंगतियों पर प्रहार करने केलिए व्यंग्य को ही श्रेयस्कर माध्यम माना जाता था।

इस युग की सर्वाधिक प्रभावकारी समाज व्यवस्था थी - वर्ण व्यवस्था । इस व्यवस्था की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई ब्राह्मण एवं सब से निम्नतम इकाई शूद्र या हरिजन थे । इस व्यवस्था ने सचमुच इनसान को खानों में बाँट रखा था । प्रो॰ हुमायूँ कबीर ने वर्ण विभाजन की आलोचना करते हुए लिखा "इस के कारण भारतीय जीवन की एकता नष्ट हुई । इससे लोकतंत्र के विकास में बाधा पड़ी । उच्च वर्णों में इसके कारण दिखावे और अहंकार की भावना पैदा हुई । निम्न वर्णों में इसने हीनता और दासत्व की भावना को जन्म दिया" ।[1]

जाति व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ में पं॰ जवाहरलाल नेहरू का यह मंतव्य भी इस संदर्भ में जोडना समीचीन है - "यह व्यवस्था एक विशेष युग की परिस्थितियों में बनी थी और इसका उद्देश्य समाज की संगठन और उसमें समतोल पैदा करना था, लेकिन इसका विकास कुछ ऐसा हुआ कि यह उसी समाज केलिए और मानवीय मस्तिष्क केलिए बंदीघर बन गई"[2] ।

डा॰ रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में भारतीय समाज की स्थिति कुछ इस प्रकार थी - "कोई यह सोचता ही नहीं था कि छुआछूत मनुष्यता के प्रति घोर पाप है, कि विधवा विवाह नहीं होने देना नारी जाति के प्रति अन्याय है, कि शूद्र और नारी को वे ही अधिकार मिलने चाहिए जो उच्च वर्ग के पुरुषों को प्राप्त है । समाज में भ्रूण-हत्याएं चलती थीं, बालिकाओं का वध होता था, जहाँ तहाँ सती की प्रथा भी कायम थी और लोग छिप कर नीच जाति की स्त्रियों से भी सम्बन्ध करते थे, किन्तु इन बातों के खिलाफ समाज में कोई नहीं

---

1. भारतीय परंपरा - प्रो॰ हुमयूण कबीर - पृ॰41
2. हिन्दुस्तान की कहानी - पं॰जवाहरलाल नेहरू - पृ॰38

सोचता था । तीर्थों में व्यभिचार के अड्डे बने थे, किन्तु इन बातों को रोकने वाला कोई नहीं था[1]। इतना ही नहीं, हिन्दू जाति निष्क्रिय होने में विश्वास करने लगी थी । दिनकरजी ने इस सिलसिले में लिखा है - "हिन्दुओं का दुर्भाग्य यह था कि वे जीवन को निःसार मानने लगे थे । अतएव जीवन का अपमान एक ऐसी वस्तु का अपमान था, जिसका अस्तित्व नहीं था । अन्याय और न्याय में कोई अन्तर नहीं था और न कोई अत्याचार ही ऐसा था, जिसका उत्तर देना आवश्यक हो । यह बड़ी ही अर्थपूर्ण बात है कि उन्नीसवीं सदी से पूर्व भारतीय साहित्य में कोई भी लेखक या कवि ऐसा नहीं हुआ जो यह कहने का साहस करता कि यह अन्याय है और हम इस अन्याय का विरोध करने को आए हैं[2]।

वास्तव में इसी सामाजिक अंकुश एवं व्यवस्था के कारण ही ऊँच नीच का जो भाव पैदा हो गया था, उसकी वानगी डा॰राजेन्द्र-प्रसाद के निजी संस्मरण से मिल जाती है । अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है, "जाति-पाँति का झगड़ा इतना साथ लेते गए थे कि हिन्दु होस्टल में हमने अपने लिए अलग चौका रखा था, जिस में बिहारी ब्राह्मण रसोई बनाता था । यद्यपि मैं डा॰गणेशप्रसाद के साथ भोज में शरीक हुआ था, तथापि जाति का बन्धन बहुत मानता था । वह तो मेरी अपनी जाति के आदमी {कायस्थ} थे, किसी भी दूसरी जाति के आदमी का छुआ हुआ अन्न, जो अपने देश {बिहार} में नहीं खाया जाता है, वहाँ नहीं खाया । इतने दिनों तक वहाँ रहा, मगर बंगाली

1· संस्कृति के चार अध्याय - पृ॰436

2· वही पृ॰445

मेस में कच्ची रसोई एक दिन भी नहीं खायी।[1] यह थी हमारे तत्कालीन भारतीय समाज की स्थिति। लोग वर्गों में बंटे हुए थे एवं अपने प्रांत को ही अपना देश मानते थे तथा एक दूसरे के हाथ का भोजन लेना एवं परस्पर नाते-रिश्ते स्थापित करना घोर पाप समझते थे।

डॉ॰ भोलानाथ ने इस सामाजिक अन्याय के सम्बन्ध में लिखा है - भंगी, चमार, पासी, कोरी, खटिक, धोबी, डोम, दुसाध, मोची आदि इन अछूत वर्गों में माने जाते हैं। 1921 में इन की संख्या 5 करोड़ 27 लाख थी, जो 1931 में 5 करोड़ 20 लाख रह गयी। 1941 में इस की संख्या और भी घटी और कुल 4 करोड़ 8 लाख रह गई, किन्तु 1951 में ये फिर बढ़कर 5 करोड़ 53 लाख हो गए। मनुष्य जाति के इतने बड़े वर्ग को मनुष्य के सामान्य अथवा नागरिकता के मूल भूत अधिकारों से वंचित रखना मानवता का अपमान था।[2] आर्य समाज आन्दोलन द्वारा उस के प्रवर्तक स्वामी दयानंद इस दिशा में पर्याप्त महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी कदम उठाए। उन्होंने छुआछूत माननेवालों को इन शब्दों में फटकारा, और जो आजकल छुआ छूत और धर्म नष्ट होने की शंका है, वह मात्र मूर्ख को बहकाने और अज्ञान बढ़ाने से हैं ..... आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री-पुरुष पाकादि सेवा करें, परन्तु वे शरीर वस्त्रादि से पवित्र रहें"[3]।

छुआछूत की भावना के अतिरिक्त औरतों की करुणिक दशा भी भारतीय समाज में मौजूद थी। पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने महिलाओं के पिछड़ेपन एवं समाज में उचित स्थान न मिलने के कारण

---

1. आत्मकथा - पृ॰78
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ॰300
3. सत्यार्थ प्रकाश : दशम समुल्लास - पृ॰

उनकी दशा के सम्बन्ध में यों लिखा - "हमारी सभ्यता, हमारे रीति-रिवास, हमारे कानून सब आदमी के बनाए हैं और आदमी ने अपने को ऊँची हालत में रखने का और स्त्रियों के साथ बर्तनों और खिलौनों जैसा बर्ताव करने और अपने फायदे और मनोरंजन केलिए उनका शोषण करने का पूरा ध्यान रखा है । इस लगातार बोझ के नीचे दबी रहकर औरतें अपनी शक्ति पूरी तरह से नहीं बढ़ा पाई और तब आदमी उन्हें पिछड़ी हुई होने का दोष देता है"[1] ।

औरतों की कारुणिक दशा के बावजूद बालविवाह, दहेज प्रथा, वृद्ध विवाह और बहुविवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों ने भारतीय समाज को आच्छादित कर रखा था । समाज में जातीय दुरवस्था एवं दासत्व की भावना ने जब जागरण की स्थिति में प्रवेश किया तो साहित्यकार का सामाजिक मान्यताओं से संघर्ष उत्पन्न होना स्वाभाविक था । कबीर समाज में परिवर्तन चाहते थे, इसलिए उन्होंने समाज में प्रचलित कुरीतियों, पाखंडों, अंधविश्वासों धार्मिक रूढियों एवं खोखले धर्म पर व्यंग्य किया । व्यक्ति के विकास केलिए जहाँ समाज सहायक हो सकता है वहाँ वह बाधक भी हो जाता है । समाज द्वारा बनायी बाधायें ही रचनाकार को व्यंग्य करने केलिए बाध्य करती हैं । जाति-पाँति, उच्च नीच प्रथा एवं इन प्रथाओं द्वारा उत्पन्न अन्य ऐसी चीज़ें जो समाज के संवेदन शील प्राणी को मानवीयता की भावना के प्रतिकूल लगती हैं, व्यंग्य के माध्यम से तिरस्कृत हुई । निराला के व्यंग्य में इसी पृष्ठभूमि के कारण नितांत कटुता की भावना रही है । निराला एवं मैथिलीशरण गुप्त ने जातिप्रथा की उक्त दुर्बलताओं को अपनी कई व्यंग्य कविताओं में वाणी दी है तथा उनकी भर्त्सना की है । "भारत-भारती" का वर्तमान खण्ड इसी सामाजिक पृष्ठभूमि को व्यंग्य के माध्यम से स्पष्ट करता है ।

---

1. हिन्दुस्थान की समस्यायें - पृ.85

हर युग के समाज की अपनी अपनी रुचियाँ होती हैं। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि किसी दूसरे युग में उन्हीं सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार किया जाय जो कि उससे पूर्व के युग में प्रचलित थीं। सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ साथ सामाजिक मान्यतायें बदलती रहती हैं। एक समय ऐसा था कि मनुष्य को मात्र इसलिए धर्मात्मा एवं सज्जन समझा जाता था कि वह धर्म ग्रन्थों का पाठ करता था एवं अपना अधिकांश समय भावद् - भजन में व्यतीत कर देता था। आज अपना हर कार्य ईमान्दारी एवं सच्चाई से करने वाले को ही धर्मात्मा एवं सज्जन समझा जाता है। भारतीय समाज में एक समय ऐसा रहा जब पर्दाप्रथा प्रचलित थी एवं आज के नए समाज में इसे हास्यास्पद प्रथा के रूप में देखा जाता है तथा उस पर व्यंग्य भी किया जाता है।

इनसान समाज में ही जीता मरता है। इसलिए वह समाज में रहते हुए उसकी सड़ी गली मान्यताओं एवं कुरीतियों के देश को भोगता हुआ उन पर व्यंग्य भी करता है। नागार्जुन ने वृद्ध-विवाह पर "बुढवर" कविता रची तो बहु पत्नी प्रथा पर "नखिमा" की रचना की। इन दोनों रचनाओं में कवि ने इन कुप्रथाओं पर तीखा व्यंग्य किया है। अत: यह स्वीकारने में आपत्ति नहीं है कि सामाजिक परिस्थितियाँ व्यंग्य केलिए उत्साहवर्धक भी हो सकती हैं, होती भी हैं। उत्साह को क्षीण करने वाली भी कभी कभी होती हैं। सभ्य, सुसंस्कृत, संतुलित समाज में व्यंग्य केलिए कम गुंजाइश रहेगी जब अव्यवस्थित, असंतुलित एवं बर्बर सामाजिक परिस्थितियाँ व्यंग्य केलिए विवश करेंगी। हिन्दी कविता में विभिन्न युगों में व्यंग्य की श्रीवृद्धि केलिए उन सामाजिक परिस्थितियों का स्पष्ट योगदान है जो विभिन्न युगों में मौजूद रही हैं। आधुनिक हिन्दी कविता की राजनीतिक पृष्ठभूमि पूर्णत: एक गुलाम देश की पृष्ठभूमि रही है।

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन के बाद देश अंग्रेज़ों के चंगुल में पूर्णतया आ गया था। अंग्रेज़ी शासन ने यों तो बहुत सी अव्यवस्थायें एवं यातनायें दीं, किन्तु साथ ही उन्होंने इस देश में नौकरशाही को भी पूरी तरह पुष्पित एवं पल्लवित किया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रसंग में कहा है "भारतीय नौकरशाही सामंतवादी और आधुनिकतम नौकरशाही की मशीन का ऐसा संगठन है, जिस में अच्छाइयाँ किसी की नहीं है, मगर बुराइयाँ दोनों की हैं[1]।

भारतीय राजनीति पर गांधीजी का प्रभाव सर्वाधिक था। उनकी अहिंसा के सिद्धांत को लोगों ने सहजता से स्वीकार किया एवं देश को स्वतंत्र कराने केलिए उन्होंने अहिंसा को सर्वाधिक सशक्त अस्त्र के रूप में स्वीकार किया। गांधीजी ने राजनीति के सिलसिले में धर्म का समावेश करने पर बल दिया। उनके धर्म में साम्प्रदायिकता नहीं थीं। मानवीय उच्चादर्शों एवं कल्याण की कामना थी। इस संदर्भ में श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है - "महात्माजी ने राजनीति में धर्म का सम्मिश्रण करके वारांगना राजनीति को योगी बना दिया"[2]। इसी प्रकार श्रीगोपीनाथ धवन ने गांधीजी के राजनीतिक दर्शन को मान्यता देते हुए कहा है "गांधीजी का राजनीतिक दर्शन और उनकी राजनीतिक तकनीक उनके धार्मिक और नैतिक सिद्धांतों के सहज परिणाम मात्र हैं। उनके अनुसार धर्म-विहीन राजनीति एक मृत्यु-जाल के समान है, क्योंकि इससे आत्मा की हत्या होती है"[3]।

---

1. आटोबयोग्राफी - पृ.114
2. गांधी और मार्क्सवाद - पृ.215
3. The political philosophy of Mahathma Gandhi - p.38

अहिंसक राजनीति के समानान्तर इस युग में साम्यवाद का विकास भी हुआ। अहिंसा के विश्वासी भारतीय जन गांधीजी के अनुयायी बने। लेकिन जिन नवयुवकों के दिल में आन्दोलन की आग भभक रही थी, पर अहिंसावाद स्वीकार नहीं था, वे युवा लोग रूस की साम्यवादी आन्दोलन की ओर झुके हुए थे। साम्यवाद का उद्देश्य आर्थिक शोषण से पूर्णत: मुक्ति दिलाना था। डॉ॰ भोलानाथ का इस संबंध में यही विचार है कि "भारतीय राजनीति के रंगमंच पर साम्यवाद कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत न कर सका कि वह जन-जन के मन में अनुभूति हो उठता। उसने केवल इतना ही किया कि जिस मज़दूर आन्दोलन में कांग्रेस ने हाथ नहीं लगाना चाहा उसको इसने प्रभावित कर दिया"[1]। साम्यवाद ने जन जन के मन को उद्देलित नहीं किया, यह तो स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्यों कि देश के सर्वाधिक गरीब लोग, शोषित जनों के प्रति उसमें अपार सहानुभूति का भाव था। साहित्य में साम्यवाद की विचार-धारा प्रगतिशील आन्दोलन के माध्यम से आई। हिन्दी साहित्य में भी इस युग ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अंग्रेज़ शासन यह जानता था कि यदि इस देश की प्रमुख जातियाँ हिन्दु एवं मुसलमान - एकता से रहें, तो उस केलिए यहाँ शासन करना बहुत मुश्किल हो जाएगा, इसलिए उसने हमेशा यह प्रयास बनाए रखा कि ये दोनों जातियाँ आपस में हमेशा लड़ते रहें एवं इनमें साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापित न हों। आर्नाल्ड टायनबी लिखते हैं "भारत नामक उपमहाद्वीप के अंदर एक संयुक्त हिन्दु-मुस्लिम राज्य के भीतर मुसलमानों को यह भय था कि हिन्दु बहुमत उनको बहा ले जाएगा[2]। वास्तव में इस्लाम का यह भय किसी दूसरे ने नहीं, स्वयं अंग्रेज़ों ने ही पैदा किया था।

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ॰184
2. दि वर्ल्ड एंड दि वेस्ट - पृ॰38

इस सांप्रदायिक भय का विश्लेषण करते हुए पं॰जवाहरलाल नेहरू ने भी लिखा है, "वास्तविक संघर्ष का धर्म से कोई संबन्ध न था, यद्यपि धार्मिकता कभी कभी वास्तविक प्रश्न पर परदा ज़रूर डाल देती थी। वास्तविक संघर्ष उन दो वर्गों में था, जिनमें से एक राष्ट्रीय, लोकतन्त्रीय और सामाजिक दृष्टि से क्रांतिकारी नीति में विश्वास करता था और दूसरे वर्ग का उद्देश्य सामंतवादी प्रशासन की अवशिष्ट परंपराओं को बनाये रखना था[1]।

अब तो यह बताने में संकोच नहीं है कि भारतीय राजनीति की पृष्ठभूमि में गांधीवाद तथा साम्यवादी जीवन दृष्टियों का सर्वाधिक प्रभाव था, जिस पर अंग्रेज़ों ने अपनी फूट पैदा करनेवाली साम्प्रदायिक नीति को थोपने का प्रयत्न किया। हिन्दी साहित्य के अध्ययन से यह प्रमाणित हो जाएगा कि गांधीजी की अहिंसक राजनीति को इस में प्राय: सराहा गया है। इसके साथ साथ श्रमिकों, शोषितों, गरीब वर्गों केलिए अपार सहानुभूति रखनेवाली साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिवादी साहित्य ने विरोध एवं आक्रमण को भी अपना अस्त्र बनाया। गांधीजी भी अहिंसा की महत्ता को लेकर, उनकी आध्यात्मिक एवं नैतिक मान्यताओं को लेकर साहित्य में भी इन उदात्त भावनाओं को स्वीकार करने लगे। साम्प्रदायिकता की एक सीमा तक राजनीति की चालों का परिणाम थी। इसलिए उसने भारतीय जनमानस को बहुत झकझोरा एवं 1947 में भारत का विभाजन इसी साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष के फलने फूलने का कारण हुआ।

---

1. डिस्कवरी आफ इन्ड्या - पृ॰399

उपर्युक्त कारणों से साहित्य में भी सांप्रदायिकता के प्रति गहरा क्षोभ पैदा हुआ एवं प्रत्येक युगचेता एवं सत्यद्रष्टा रचनाकार ने सांप्रदायिकता का विरोध करते हुए इस पर व्यंग्य भी लिखे । अतः इस काल विभाग के समूचे व्यंग्य में राजनीतिक पृष्ठभूमि की अनुगूंजें प्रायः मिल जाती हैं ।

व्यक्ति एवं समाज केलिए अर्थ का अत्यधिक महत्व होता है । अतः आर्थिक परिस्थितियां निश्चय ही समाज के मानस को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं । उन्नीसवीं शती के अन्तिम तीन दशकों में भारत में भयानक अकाल पड़े । 1896-97 में अनावृष्टि के कारण 300,000 वर्गमील भूमि सूखी रह गयी । रमेशचन्द्र दत्त लिखते हैं - "यह एक ऐसा दुर्भिक्ष था जो अब तक के सभी दुर्भिक्षों में, जिनका इतिहास में वर्णन मिलता है, सब से बड़ा था । इसने उत्तरी भारत तथा बंगाल, मध्य प्रदेश, मद्रास तथा बंबई को उजाड़ दिया । इस अकाल का कारण यह भी था कि विदेशी शासन ने खेती बाड़ी को विकसित करने में सहयोग नहीं दिया एवं मदद समय पर नहीं पहुंचा पायी[1] । बीसवीं सदी के चौथे-पांचवें दशक तक ऐसी ही भयानक स्थितियां मौजूद रहीं । "दिनकर" की उत्तरी बिहार के अकाल पर रचित व्यंग्य कविता तथा बच्चन की "बंगाल का काल" रचनाओं का आक्रोश एवं व्यंग्य इसका प्रमाण है ।

विदेशी लोगों के निर्देश में चलने वाली रेलों की स्थिति, जो देश को आर्थिक दृष्टि से प्रभावित करती थी, इस सिलसिले में डॉ॰ भोलानाथ लिखते हैं कि "1900 से ही अंग्रेज़ों द्वारा परिचालित रेलवे कंपनियों ने फायदा उठाना आरंभ कर दिया । वर्ग भेद एवं नस्लभेद की भावना का प्रचार भी इन रेलवे कम्पनियों ने डटकर किया ।

1॰ इकॉनॅमिक हिस्ट्र् ऑफ इंडिया - पृ॰455

यात्रा करते समय भी बड़े-छोटे, धनी गरीब का भेद बना रहा, इन कंपनियों से प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, अंतरिम श्रेणी और तृतीय श्रेणी में यात्रा करनेवालों को जो सुविधा दी जाती थी वह भी इस भेदभाव को बढाती रही। आज तक किसी न किसी रूप में वही प्रथा चली आती है। यद्यपि रेलवे कंपनियों को सब से अधिक लाभ तृतीय श्रेणी के यात्रियों से होता रहा है किन्तु सुविधाओं से वे ही सब से अधिक वंचित रखे गए। प्रथम और द्वितीय श्रेणी में सब से अधिक अंग्रेज़ और उनके भारतीय सेवक ही चलते थे। लाभ उठाने की दृष्टि से 1925 में रेलवे को सामान्य वजट से अलग कर दिया गया था। 100% कंपनियाँ विदेशियों की थीं। रेलवे में यदि कुछ स्वदेशी था तो कुली, मज़दूर, यात्री, छोटे-मोटे स्टेशनों के स्टेशन मास्टर और निम्न दर्जे के यात्री। यह कुछ ऐसा ही हुआ कि खरीदने वाले हम, "कितने का खरीदा जाय" इसके निर्णायक हम, कहाँ से खरीदा जाय" इसके निर्णायक हम, केवल धन आप का और तमाशा यह कि आप को इस के बारे में पूछ सकने का कोई भी अधिकार नहीं था[1]। भारतेन्दु की कई व्यंग्य कविताओं में इसी प्रकार विदेश जाते हुए भारतीय धन के संबन्ध में व्यंग्यात्मक प्रहार हैं।

यहाँ की बैंकिंग प्रणाली भी काफी खराब थी। बैंकिंग के अस्त-व्यस्त हो जाने के बारे में श्री ओम प्रकाश केला ने लिखा है - "जब देश में मुसलमान आक्रमणकारियों का आगमन हुआ तो देश की बैंकिंग व्यवस्था को भी बड़ा आघात पहुँचा। बैंकिग संस्थायें प्राय: नष्ट ही हो गयी। हाँ, व्यक्तिगत रूप से महाजन लोग अपना अपना कार्य करते रहे[2]। खैर, महाजन लोग तो अपना कार्य करते रहे मगर उन्होंने गरीब कृषक वर्ग का शोषण खूब किया। प्रगतिवादियों में इस शोषण के प्रति पर्याप्त व्यंग्य भाव मिलता है। प्रेमचन्द के कई उपन्यासों तथा कहानियों में महाजनों के इस शोषण की गूँज है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में गाँव के महाजन के अत्याचार पर तीखा व्यंग्य दृष्टिगोचर होता है।

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ.221

कृषि एवं बैंकिंग की दुरवस्था के मुताबिक नौकरियों की स्थिति भी उत्साहवर्धक नहीं थी । इस संबन्ध में भोलानाथ लिखते हैं - "जब आदमी के पास करने केलिए न खेती हो न व्यवसाय, तब विवश होकर आजीविका के लिए उसे एक ही मार्ग का अवलम्बन शेष रह जाता है और वह मार्ग है नौकरी का । इस क्षेत्र में भी हमारा पतन अत्यन्त दयनीय स्थिति तक हो चुका है । भारत वर्ष की नौकरी का क्षेत्र अजीबोगरीब प्रवृत्तियों और विचित्रताओं से भरा हुआ है । इस अर्ध शताब्दी में भारतवर्ष के अन्दर प्राय: नौकर मालिक रहा है और मालिक नौकर । किसी तानाशाह से भी अधिक शक्ति और अधिकार से सम्पन्न वायसराय एक तरह से भारतीय जनता का नौकर ही तो था, मगर किस मालिक से कम था। यहाँ की जनता के सेवक अर्थात् बड़े छोटे अफसर जनता द्वारा "मालिक" या "सरकार" की ही कहकर पुकारे जाते थे । इस देश में मालिक गरीब और नौकर धनी हुआ करता है । वायसराय की तनख्वाह संसार में सबसे अधिक और भारतीय जनता की प्रति व्यक्ति आय सब से कम अनुमानित की गई है । इस प्रकार हमारे यहाँ नौकरी की सबसे ऊंची स्थिति यह है । दूसरी ओर हमारे यहाँ नौकरियों की स्थिति इस युग में यह भी थी कि बेचारे नौकर को माह भर में जितना वेतन मिलता था, उसका कई गुना अधिक धन साहब के कुत्ते पर न्याय हुआ करता था"[1] ।

सचमुच भारत की आर्थिक स्थिति पतन की ओर अग्रसर हो रही थी । इस संबन्ध में डॉ॰धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है - "आर्थिक दृष्टि से अंग्रेज़ी शासन काल भारत तथा मध्यदेश के इतिहास में अत्यन्त दुरवस्था का काल कहा जा सकता है"[2] । इसी पृष्ठभूमि ने रचनाकार को व्यंग्योन्मुख किया । व्यक्ति के बीच आय का अंतर, मुट्ठी भर लोगों द्वारा देश की समूची आर्थिक स्थिति को हथियाये रखने एवं कारुणिक गरीबी को बनाये रखने के कारण ही व्यंग्यकार में इन स्थितियों के प्रति

———— ———— .

व्यंग्य दो प्रकार के हैं - {1} व्यक्तिगत व्यंग्य {2} समष्टिगत व्यंग्य। समष्टिगत व्यंग्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है - {1} धर्म संबन्धी {2} समाज संबन्धी {3} साहित्य संबन्धी {4} राजनीति संबन्धी {5} मानवीय दुर्बलता संबन्धी।

किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य बनाकर जो व्यंग्य किया जाता है उसे व्यक्तिगत व्यंग्य कहा जाता है। व्यक्तिगत व्यंग्य के औचित्य या अनौचित्य पर विभिन्न मत है। व्यक्तिगत व्यंग्य लिखा साहस की बात है। इसका परिणाम भी काफी खतरनाक होता है। यदि व्यंग्यकार अपनी व्यक्तिगत जलन के कारण किसी व्यक्तिविशेष पर व्यंग्य करता है तो वह अशिव है। इसके मुताबिक यदि व्यंग्यकार व्यक्ति विशेष को लक्ष्य बनाकर व्यंग्य करने से किसी प्रचलित बुराई के प्रति समाज की घृणा उत्पन्न करने में सफल हो जाता है तो वह उपयोगी माना जाता है।

यद्यपि व्यक्तिगत व्यंग्य में कटुता, तिक्तता तथा पित्त का अंश अधिक मात्रा में होता है तब भी कहीं कहीं यह विशेष विधा अनिवार्य हो जाती है। पोप अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर व्यक्तिगत व्यंग्य के बारे में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं - "बिना ताडने के सुधार असंभव है। उपदेश तथा कानून भी कुछ सुधार नहीं कर सकते। सामान्य तरीके से बुराइयों की भर्त्सना करना छाया से लड़ना है। जब तक व्यक्ति विशेष को व्यंग्य का निशाना नहीं बनाया जाता तब तक व्यंग्य प्रभावहीन रहेगा। मेरी व्यंग्यात्मक रचनाओं का प्रभाव तब हुआ जब उनके द्वारा अवांछनीय व्यक्ति क्रुद्ध हो गए। सबसे अधिक संतोष का कारण यही है कि वे बेशर्त व्यक्ति जिन्हें किसी का डर नहीं था, मेरे व्यंग्यों से प्रभावित हुए और इन्हीं कारणों से मुझे व्यंग्य लिखने में प्रोत्साहन मिला[1]

---

1. The Corresponds of Alexander Pope - Alexander Pope Edited by George Shebern - p.417

इस में कोई सन्देह नहीं कि व्यक्तिगत व्यंग्य बुराइयों को दूर करने में पूरा कारगर होता लेकिन यह सत्य है कि एक बुरे आदमी को व्यंग्य का शिकार बनते देख दूसरे बुराई करने वाले सावधान अवश्य हो जाते हैं ।

श्रीनारायण चतुर्वेदी ने "विनोद शर्मा" के उपनाम से व्यक्तिगत व्यंग्य लिखे हैं जो "छेड़छाड़" नाम से संग्रहीत है । इस पुस्तक की भूमिका में वे व्यंग्य संबन्धी अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं - व्यंग्य लिखना अपेक्षाकृत सरल है । इसका मुख्य उद्देश्य तर्क के बल से ही, किन्तु हास्यास्पद बनाकर आलोचित वस्तु या बात का खंडन करना है । उसे हास्यास्पद बनाकर उसके प्रभाव को नष्ट करना ही व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य है । जो काम बड़े विद्वत्ता पूर्ण तर्कों से पूरी सफलता से नहीं हो सकता, वह कभी कभी एक करारे व्यंग्य से सरलता से हो जाता है । जिस प्रकार हास्य में अशिष्ट या अश्लील हो जाने का खतरा है, उसी प्रकार व्यंग्य में भी बड़ा खतरा व्यक्तिगत आघात हो जाने का रहता है । लोग विरोधी के तर्कों से पराश्त होने पर प्रायः बुरा नहीं मानते किन्तु जब उनकी किसी बात को व्यंग्यबाण द्वारा हास्यास्पद बना दिया जाता है तो उनका अहम् तिलमिला उठता है । कोई भी व्यक्ति जनता की निगाह में हास्यास्पद नहीं बनना चाहता । इसलिए व्यंग्य करते हुए भी उसे व्यक्तिगत स्तर से ऊपर अवैयक्तिक बनाना वास्तव में बड़ा कठिन है क्योंकि व्यक्ति और उसके कार्यों का विचारों में बड़ा ही सूक्ष्म अन्तर होता है । साधारण जन केलिए बहुधा दोनों में अंतर करना कठिन हो जाता है । लेखक यह नहीं जान पाता कि सद्भावना से किया हुआ अवैयक्तिक व्यंग्य भी किसे और कब बुरा लग जाएगा ।[1]

---

1. छेड़छाड़ - श्रीनारायण चतुर्वेदी - पृ.4

व्यक्तिगत व्यंग्य केलिए उनकी कविता से उदाहरण नीचे दिया जाता है -

"धीर, गम्भीर मुखमुद्रा थी लोगों की,
सभी थे विचार मग्न, चिन्ता में चूर थे ।
ऐसा गंभीर प्रश्न पहिले नहीं आया था -
अर्थ क्या होता हाथ पैर के हिलाने का।

करके निस्तब्धता को भंग श्री प्रधान मंत्री
बोले श्री मुख से गंभीर, धीर वाणी से
"ऐतिहासिक चिंतता जो मेरी उच्च स्वर की है
उसमें प्रसंगवश शब्द यह आए हैं -
"सभापति पद-रूपी फल ही कुछ ऐसा है
थोडा ही हिलाके हाथ पैर, किन्तु खेद है कि
हिन्दी साहित्यिकों को प्राप्त नहीं होता है"
कहते हैं तिवारी जी कि मैं ने अपमान किया
देश पूज्य नेताओं का अपने उस लेख में
क्योंकि अर्थ होता है उसका कि नेताओं ने
किया उद्योग था प्रधान पद पाने का ।

सोचें जरा आप मेरे मित्र तिवारी जी
करते हैं अनर्थ व्यर्थ मेरे इस अर्थ का ।
क्या मैं करूँगा अपमान नेतागण का भी।
आप जानते हैं शक्ति मेरी वह है नहीं ।
बापू को लिखा था मैं ने और राजन बाबू को,
{हिन्दी के दोनों ही तो पण्डित महान हैं}
दोनों ही कहते अपमान इन शब्दों से
होता नहीं मान भी क्या कद्दू की बीतिया है।
और देखें आज जो चमत्कार है हुआ ।
मैं ने उद्योग है किया न वोट पाने का

यानी, सिर्फ इच्छा वोट पाने की है ।
पंच ही बनावें, सरपंच की दुहाई है कि
मैं हूँ सही या श्री तिवारी जी गलत है
मूर्ख है तिवारी जी । बंदके हैं तिवारी जी
खाक नहीं जानते हैं हिन्दी में तिवारी जी,
इसमें है दोष कैसा, आर्ष ये प्रयोग हैं ।
हिन्दी में होता हाथ - पेर के हिलाने का
अर्थ - उद्योग नहीं । ठीक हैं प्रधान मंत्री
सही है प्रधान मंत्री । साधु हैं प्रधान मंत्री ।
श्रीयुत प्रधान मंत्री धन्य धन्य धन्य हैं ।

उपरोक्त कविता लिखने का सन्दर्भ यह है कि डॉ॰बाबूराम सक्सेना ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री के पद पर रहते समय "सम्मेलन क्या करें क्या न करें" शीर्षक जो लेख लिखा था उसमें एक वाक्य यह भी था कि "राजनीतिक कार्यकर्ता सार्वजनिक प्रजासत्तात्मक संस्थाओं का अनुभव रखता है । जो बात वह थोडा ही हाथ-पेर हिलाने से प्राप्त कर लेता है वह साहित्यिक को नसीब नहीं होती । यह बात राजनीतिकों के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति होने के विषय को लेकर लिखी गयी थी । राजनीतिकों में महात्मा गांधी, डॉ॰राजेन्द्रप्रसाद, बाबू संपूर्णानन्द और श्री॰ जमनालाल बजाज सम्मेलन के सभापति हो चुके थे । इस पर श्री॰वेंकटेश नारायण जी तिवारी ने आपत्ति की कि डॉ॰सक्सेना के इस वाक्य से यह ध्वनि निकलती है कि उक्त राजनीतिकों ने सम्मेलन का सभापतित्व थोडा "हाथ-पेर हिलाकर" अर्थात् थोडा प्रयत्न करके प्राप्त किया ।

---

1. हाथ पेर हिलाना - श्रीनारायन चतुर्वेदी - पृ॰

भारतवर्ष धर्मप्रधान देश रहा है । इसके साथ धर्माचार्य भी पर्याप्त मात्रा में हुए हैं । विभिन्न धर्म, विभिन्न धर्मावलम्बी, अनेक प्रकार के मतमतांतर एवं पूजा पद्धतियाँ इस देश में पाई जाती है । धर्म से जहाँ अनेक लाभ हुए, वहाँ अनेक हानियाँ भी हुई । धर्म के कारण देश की एकता छिन्न भिन्न होने लगी । मिथ्याचार बढ़ने लगा ।

धर्म संबन्धी व्यंग्य लिखनेवाले पहले व्यंग्यकार कबीर हैं । उनकी सामाजिक चेतना तीव्र थी । उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले एवं कर्मकाण्ड को प्रधानता देनेवाले पंडितों एवं मुल्लाओं को कबीर ने खरी-खरी सुनाई । देशाचार एवं उपासना-विधि के कारण इन्सानों में जो भेद भाव उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयत्न उनकी वाणी बराबर करती रही ।

कबीर ने व्यंग्य प्रभावकारी न होने का यही कारण रहा कि उनकी फटकारें भावुकता पूर्ण थी और उनमें औचित्य का अभाव भी था । मूर्तिपूजा का विरोध किया तो भी वह प्रभावहीन रहा । जनता में सर्वाधिक प्रभाव उस समय हिन्दू धर्म या पौराणिक धर्म का था । पौराणिक हिन्दू धर्म के आचार बाहुल्य को ही उन्होंने लक्ष्य किया था । मूर्ति की उपासना उनको बुरी लगती थी । पर ऐसा जान पड़ता है कि मूर्तिवाला तत्ववाद उन्हें मालूम ही न था । शायद ही किसी दार्शनिक तत्व वाद या पौराणिक रहस्य व्याख्या का उल्लेख उनके ग्रन्थ में पाया जाय । सचमुच कबीर ने जिस पंडित को आलम्बन बनाया उसकी योग्यता का पता लगाने की चेष्टा कभी नहीं की ।

वेदपाठ, तीर्थस्नान, व्रतानुष्ठान, छुआछूत, अवतारोपासना, कर्मकाण्ड इत्यादि सब के विरुद्ध कबीर दास ने लिखा है लेकिन कहीं भी इन की गूढ़ व्याख्याओं को या इनकी पृष्ठभूमि के तत्ववाद का उल्लेख नहीं

वास्तव में समूचे हिन्दू धर्म उनकी दृष्टि में एक बाह्याचार बहुल ढकोसला मात्र था । उन्होंने योगमार्ग को भी ढकोसला ही समझा था .... परंतु हिन्दू धर्म या तत्ववाद की ओर न तो उनकी वैसी जिज्ञासा ही है एवं न निष्ठा ही ।

बारहवीं शताब्दी से प्रचुर मात्रा में पश्चिम में व्यंग्य काव्य लिखा जाने लगा । लाटिन में व्यंग्य का श्रीगणेश पादरियों एवं गिरजाघर को आलम्बन बना कर हुआ । जान आफ सेलिसवरी एवं अलेक्जेण्डर नेमहेम नामक दो व्यंग्यकार प्रारंभिक व्यंग्यकार माने जाते हैं । वे वास्तव में उपदेशक ही थे । उनका उद्देश्य भी नैतिकता का प्रसार करना था, पाप एवं पापियों की भर्त्सना करना था । चौदहवीं शताब्दी में जान डे होटेवाइल एवं नाइजिल बारेकर ने भी धर्म से संबन्धित व्यंग्य लिखे । हिन्दी एवं अंग्रेज़ी दोनों में ही प्रारंभिक व्यंग्य धर्म संबन्धित ही मिलते हैं ।

जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में हुई विकृतियों पर धर्म-आधारित व्यंग्य लिखा जाता है उसी प्रकार समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों एवं असंगतियों पर जो व्यंग्य लिखा जाता है वह सामाजिक व्यंग्य कहा जाता है । द्विवेदी युग में सामाजिक व्यंग्य बड़े पैमाने में लिखा गया । समाज में फैशन बुरी तरह फैल रहा था । लोग अपनी संस्कृति को भूलते एवं विदेशी संस्कृति का अंधानुकरण करते थे । नाथूराम शंकर शर्मा ने फैशनपरस्तों को आलम्बन बनाकर लिखा -

ईस गिरजा को छोड़, ईश गिरजा में जाय
"शंकर" सलोने मेन मिस्टर कहावेंगे ।
बूट पतलून कोट कम्फर्टर टोपी डाट
जाकट की पाकट में "वाच" लटकावेंगे ।

घूमेंगी घमण्डी बने रंडी का पकड़ हाथ,
पियेंगी बरंडी "मीट" होटल में खाएगी ।
फारसी की छारसी उड़ाय अंग्रेज़ी पढ
मानो देवनागरी का नाम ही मिटायेंगी[1] ।

इस संदर्भ में भारतीय जन "विदेशी हाव-भाव, चाल चलन, आचार विचार, खान पान आदि के वे ऐसे भक्त बने कि स्वदेश की बातें वे गँवारू समझने लगे[2] ।

समाज-सुधार की दिशा में ब्रह्म समाज एवं आर्य-समाज ने महत्वपूर्ण कार्य किया । सुधारवादी क्रांति को शुरू करने में पाश्चात्य प्रभाव अत्यधिक महत्वपूर्ण है । सर्वश्री राजाराम मोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि समाजवादी क्रांति का बिगुल बजाने वालों में प्रमुख थे । ब्रह्म समाज की स्थापना सन् 1828 तथा आर्यसमाज की स्थापना सन् 1875 में हुई । सती, बाल-विवाह, वर्णभेद, सांप्रदायिकता आदि कुरीतियों के खिलाफ जिहाद बोला गया । विधवा-विवाह केलिए क्रांति किए गए । भारतेन्दु कालीन लेखकों ने व्यंग्य के माध्यम से समाज सुधार क्रांति में योगदान दिया ।

संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं में साहित्य-संबन्धी व्यंग्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है । साहित्यकारों के मतभेद व्यंग्य द्वारा अभिव्यक्त किए गए हैं । किसी विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति, भाषा संबन्धी आग्रह, समालोचक, साहित्यिक चोरी आदि साहित्यिक व्यंग्य की विषय वस्तु रहे हैं । संस्कृत साहित्य में भी विभिन्न मतावलम्बियों ने एक दूसरे पर व्यंग्य किए हैं ।

---

1. अनुरागरत्न - नाथूराम शर्मा शंकर - पृ.236
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ.92

राजनीति से सम्बन्धित व्यंग्य काव्य की रचना भारतेन्दु काल में प्रारंभ हुई । अंग्रेज़ों के शासन के खिलाफ व्यंग्य के माध्यम से ही लिखना संभव था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बालमुकुन्द गुप्त आदि ने प्रचुर मात्रा में राजनैतिक व्यंग्य काव्य का सृजन किया । इन कवियों ने महँगाई टैक्स, पुलीस के अत्याचार, शिक्षितों की बेकारी आदि विषयों पर व्यंग्य किए । स्वातन्त्र्योत्तर काल में प्रगतिशील तथा नयी कविता के रचयिताओं ने नेताओं, दल-बदलुओं, महँगाई, भ्रष्टाचार एवं अन्य राजनैतिक असंगतियों पर व्यंग्य लिखे हैं । सतरलैंड का विचार यह है कि "राजनैतिक व्यंग्यकार सरलता से अपना उद्देश्य पूरा कर लेता है क्योंकि जनता में राजनैतिक व्यंग्य के प्रति पहले से ही आकर्षण विद्यमान रहता है । जनता में पहले से ही राजनीति की असंगतियों के प्रति आक्रोश के भाव विद्यमान रहते हैं, और यदि व्यंग्यकार इन्हीं असंगतियों पर चोट करता है तो तुरन्त उसे आशा जनक तथा अनुकूल प्रतिक्रिया जनता से प्राप्त हो जाती है[1] । पिछले चार दशकों में काव्य-समारोहों का यदि अध्ययन किया जाय तो यह सिद्ध हो जाएगा कि लोकप्रियता की दृष्टि से राजनैतिक व्यंग्य प्रथम कोटि में आता है । असन्तुष्ट जनता को ऐसा प्रतीत होता है कि व्यंग्यकार उसके मुंह की बातों को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । तटस्थ द्रष्टा ही ऐसा राजनैतिक व्यंग्य लिख सकेगा जिसका साधारणीकरण अतिसरलता से हो सकेगा । जिस व्यक्ति की आँखों में किसी राजनैतिक दल विशेष का चश्मा चढ़ा होगा उससे प्रभावकारी व्यंग्य काव्य की आशा करना व्यर्थ है ।

कंजूसी, लालच, यशलिप्सा, ढोंग, धोखाधड़ी, फरेब कृत्रिमता, छल, झूठी प्रतिष्ठा - प्राप्ति की ललक आदि मानवीय दुर्बलताओं पर प्रचीन काल से व्यंग्य काव्य लिखा जा रहा है ।

---

1. The political satirist is always tempted to take things easily, for he has a public that is prepared to come at least half way to meet him. He is playing upon passions

भारतेन्दु-युग के भारतीय समाज में पढ़े-लिखे लोग आज ही के समान बड़ी मात्रा में बेकार थे एवं भारतेन्दु को ग्रेजुएटों की स्थिति पर व्यंग्य करते हुए निम्नांकित मुकरी लिखनी पड़ी -

"तीन बुलाए तेरह आवे
निज निज विपता रोई सुनावें ।।
आँखों फूटे भरा न पेट
क्यों सखी सज्जन नहीं ग्रजुएट[1] ।।

वैसे मैथिलीशरण गुप्त ने अपने समाज की क्षुद्र मनोवृत्तियों एवं परंपराओं पर अत्यन्त तीव्र व्यंग्यात्मक प्रहार "भारत-भारती" के वर्तमान खण्ड में किया है । इस संबन्ध में गुप्त जी ने अत्यन्त-मूल्यवान वक्तव्य दिया है - "मुझे दुःख है कि इस पुस्तक में कहीं-कहीं मुझे कुछ कड़ी बातें लिखनी पड़ी है, परंतु मैं ने किसी की निन्दा करने के विचार से कोई बात नहीं लिखी । अपनी सामाजिक दुरवस्था ने वैसा लिखने केलिए मुझे विवश किया है । जिन दोषों ने हमारी यह दुर्गति की है, जिनके कारण दूसरे लोग हम पर हँस रहे हैं, क्या उनका वर्णन कड़े शब्दों में किया जाना अनुचित है?[2] गुप्तजी ने तत्कालीन समाज की दुरवस्था को निश्चय ही व्यंग्य एवं प्रहार के माध्यम से व्यक्त किया । तत्कालीन समाज व्यवस्था में रईसों, अविद्या, शिक्षा की अवस्था, साहित्य सभाओं एवं उपदेशकों की विसंगत स्थितियां भी इस व्यंग्य में शामिल कर ली गयी हैं । उपदेशकों को "पर उपदेश कुशल" बताते हुए गुप्त जी ने इस प्रकार व्यंग्य किया -

---

1· भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग - पृ·810
2· भारत भारती - पृ·6

सम्मान्य बनने को यहाँ वक्तव्य अच्छी युक्ति है
अगुवा हमारा है वही जिसके गले में उक्ति है ।
उपदेशकों में आज कितने लोग ऐसे हैं, करें -
उपदेश के अनुसार जो वे आज भी चलते रहे ।

x x x x x x

है वेश तक उनका विदेशी और यह उपदेश है -
"त्यागो विदेशी वस्तुयें पहला यही उद्देश्य है,
लो, पीट लो अब तलियाँ, उपदेश है कैसा खरा
उपदेशकों ! पर आप अपनी ओर तो देखो ज़रा ।।

समाज की नग्न कुरीतियों का पर्दाफाश करने में निराला भी पीछे नहीं रहे । निराला किसान वर्ग में नवजागरण पैदा करके उसकी निष्क्रियता को भी समाप्त करना चाहते थे । उन्होंने सामाजिक हिताहित की चिंता न करने वाले एवं स्वार्थ सिद्धि में मग्न समाज सुधारकों का मज़ाक उड़ाया एवं साहित्य के क्षेत्र में अनन्त दुःख एवं अनन्त विरह की कल्पना का विरोध किया । इसका सशक्त उदाहरण है, उनकी कविता "महगू महगा रहा" की निम्नांकित पंक्तियाँ :-

गाँव के अधिक जन कुली या किसान हैं,
कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,
नाई लोहार, बारी, तरकिहार, चुड़िहार
बेदना, कुम्हार, डोम, कुहरी, पासी, चमार
गंगापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण, चौकीदार,
कामकाज, दीवाली-जैसे परबों के दिन
मना ले जाने वाले पिछली परिपाटी से,
हुए, मरे, व्याह में दीवाला लाते हुए
ज़मींदार के वाहन ।

बाकी परदेश में कोड़ियों के नौकर हैं
महाजनों को दबैल
स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचनेवाले,
शहरों के सभासद ।
ऐसे ही प्रकार के प्रकार से घिरे
लोगों में भाषण है ।

गाँवों के नीचे समझे जाने वालों को किस प्रकार पावों को पिछली परिपाटी से ही मना लेना पड़ता है; बेटी का ब्याह करते हुए जो दिवा-लिए और कंगाल हो जाते हैं, इधर उधर कोड़ियों के मोल मजदूरी करने वाले महाजनों के दबैलों की स्थिति के वर्णन के साथ साथ इस रचना में स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचने वाले शहरी सभासदों पर कवि ने तीखा व्यंग्य किया है ।

समाज में ऊँच-नीच के कोढ़ जातिवाद के पर्दे पर, पोंगापंथी समाजसेवियों के ढोंग एवं निर्धन होने के कारण अपना सही विकास न कर सकने वालों की पीड़ा को कवि ने अत्यंत मर्मस्पर्शी वाणी दी है । निराला को समाज से निरन्तर लोहा लेना पड़ा एवं उन्होंने ऐसी रूढ़ियों तथा असंगतियों पर, जिनके कारण समाज का दलित एवं क्षुद्र समझा जानेवाला वर्ग लगातार कमज़ोर होता गया एवं सामाजिक प्रभुत्व स्थापित करनेवाले शोषक तत्व फलते-फूलते रहे, जम कर व्यंग्य किया ।

भारतीय समाज में शादी के मामले में यही प्रवृत्ति रही है कि नर चाहे कितनी शादियाँ करें, पर नारी को केवल एक ही शादी करनी चाहिए । इस के साथ साथ पचास-साठ वर्ष की वय के बूढ़ा भी अपनी सम्पन्नता के आधार पर शादी रचाते रहे हैं । व्यंग्य कवि ने "बूढ़वर" कविता में ऐसे ही वर का मज़ाक किया है । विवाह सम्बन्ध निश्चित किए

जाते समय युवक-युवती का परस्पर परिचय, दान दहेज की मांगें आदि कुछ ऐसे सामाजिक कुरीतियां हैं, जिन पर प्रायः व्यंग्य किया गया है । "सगाई" शीर्षक रचना सगाई-विवाहों की विडम्बना की सही तस्वीर प्रस्तुत करती है'-

बहुत दिनों के बाद ही सही
सगाई हुई
मेरे दोस्त केलिए
सारी दुनिया जो अपनी थी
पराई हुई
कोई अजनबी है
आई हुई[1] ।।

जहां इन्सान धन-जायदाद के आधार पर अभिनन्दन करा लें, किसी भी प्रकार का स्वार्थ सिद्ध करने केलिए जाति-रिश्ते का सहारा लिया जाय, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते समय धन को महत्व दिया जाय एवं उसी व्यक्ति को अधिक योग्य एवं बुद्धिमान माना जाय जो उच्चकुल का हो अथवा पैसे वाला हो - चाहे वह कितना ही अशिक्षित एवं दुश्चरित्र क्यों न हो, वहां व्यंग्य समाज को अवश्य ललकारता है । स्वार्थ सिद्धि के अवसर पर जब कोई दूसरों को याद दिलाने लगे कि वह भी कायस्थ है और आप भी, वह भी बनिया है आप भी, व वह भी ब्राह्मण है आप भी, अतः उसे सहयोग दीजिए, किन्तु मंच पर भाषण देता हुआ आधुनिकता की बात करें, तो इससे बड़ी सामाजिक विडंबना क्या होगी।

जहां लोग विज्ञापन के साधन जुटाकर स्वयं को लोक प्रिय घोषित करें, वहां अभिनन्दन एवं आदर का कोई महत्व रहता है।

---

1. सुरेन्द्र तिवारी - "जूझते हुए" - पृ.17

जिस युग में विज्ञापन
और सुयश में तनिक न अन्तर है
उस युग में सम्मानित होना
सब से बड़ा अनादर है[1]।

अध्यापकों को जहाँ मात्र किसी आशा से जीना मरना पड़े कि चलो यदि राष्ट्रनिर्माण में संलग्न रहकर किसी दिन शहीद हो भी गए तो उनके स्कूल के छात्र तो मौन रहकर कुछ समय केलिए अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करेंगे ही। इस स्थिति की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में इस प्रकार हुई है -

अब मैं,
अध्यापक बन गया हूँ
इसलिए, मुझे मरने का भय नहीं रहा .....
क्यों कि
मेरे पीछे
"मेरी आत्मा को शांति मिले"
इस विचार से स्कूल के बारह सौ विद्यार्थी
दो मिनट केलिए
चुप चाप खड़े रहेंगे[1]।

किन्तु "समय की उदासी" कविता में तो कवि आगे बढ़कर इस मोह को भी भंग कर देता है कि लोग कम से कम मौत पर मातम ही मना लेंगे। प्रस्तुत प्रसंग में मधुर शास्त्री की इन पंक्तियों का व्यंग्य द्रष्टव्य है -

---

1. जो नितांत मेरी है - बालस्वरूप राही - पृ.38

किसी के घर खुशी आती न कोई मुस्कुराता है,
गजब है मौत पर कोई नहीं मातम मनाता है,
जनम लेते समय शायद हृदय पर रख दिया पत्थर
नहीं जो आदमी से आदमी आँखें मिलाता है[1] ।

जिस समाज में अवसरवादी मनोवृत्ति धड़ल्ले से पनप रही हो एवं लोग अवसर का लाभ उठाकर वही कार्य करते हो जिस से उन्हें लाभ होता हो, वह समाज एवं उस से संबन्ध व्यक्ति निश्चय ही व्यंग्य के पात्र हैं । गांधी जी द्वारा चलाए गए "स्वदेशी" आन्दोलन से तथाकथित समाज सेवकों ने हमेशा ही लाभ उठाया है । खद्दर की तरंग में सभी गांधीवादी बन गए तथा खद्दर की ओट में उन्होंने अनाचरण एवं स्वार्थपरता की पताकाएं लहरा दीं । "खद्दर तरंग कविता में खद्दर की ओट में चल रहे लूट व्यापार पर अच्छा व्यंग्य किया गया है -

नगर निगल लो, गांव हड़प लो, खा जाओ कारखाने,
सड़क पचा लो, मैं हूं ऊपर, पेट नहीं फटता है,
गदहे हो या बैल, गिद्ध या बगुला भगत कि कौवा
मुझे पहन लो भक्तो, कोई फर्क नहीं पड़ता है,
संसद हो या पब्लिक मीटिंग, सड़क या कि गलियारा
रंग उछालो, कीचड़ डालो, जी भर धूम मचालो
मैं खद्दर हूं मुझ पर कोई रंग नहीं चढ़ता है[2] ।

1· गांधी के पांव और घुंघरू - पृ·43
2· रामदरश मिश्र - हिन्दी की लोकप्रिय हास्य कविताएं - पृ·41

समाज में व्याप्त ऐसी स्थितियाँ समाज की रूपरेखा को कमज़ोर बनाती है । ये सब मानवीयता के सन्दर्भ में खतरनाक भी है । जहाँ झूठा एवं मिथ्या जातिवाद हो, गलत आदमी बड़ा बना हुआ हो प्रतिष्ठित आदमी अपमानित हो रहा हो, परस्पर प्रेम का कोई आधार न होकर स्वार्थ साधन ही अधिकांश का लक्ष्य हो, ऐसे देश व समाज को ये बुराइयाँ बहुत जल्दी खोखला कर डालती है । लेखक समाज में श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी मूल्यों को प्रतिष्ठित देखना चाहता है, अतः वह समस्त सामाजिक असंगतियों पर प्रहार करने वैचारिक क्रांति लाता है । उसका अभीष्ट ऐसे समाज का निर्माण होता है, जो हर वर्ग को न्याय दे सके । इसके अतिरिक्त व्यंग्य कर्ता अन्याय, अनीति, अनाचार से सत्ता हथियाने व महत्व कमानेवालों को लज्जित भी करना चाहता है । वह ऐसे मूल्यों को भर्त्सना एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखता है, जिन्हें समाज के ठेकेदारों ने अपने मतलब केलिए गढ़ा हो एवं जो समाज के व्यापक हितों के प्रतिकूल हों

धार्मिक दुराग्रहों एवं परंपरागत नैतिक मूल्यों के प्रति व्यंग्य के दर्शन हमें कबीर में मिल जाते हैं । कबीरदास जी ने धर्म के ऐसे स्वरूप को मान्यता दी, जो मानवीय था तथा जिसके साथ विवेक एवं तर्क भी जुड़े थे । वास्तव में जिन कवियों ने धार्मिक दुराग्रहों एवं परंपरागत नैतिक मूल्यों के प्रति व्यंग्य किया है, उन्होंने किसी धर्म को मानवराय श्रेष्ठता की कसौटी नहीं माना । डॉ॰हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के इन शब्दों से मानवीय श्रेष्ठता की कसौटी समझी जा सकती है, "श्रेष्ठता की निशानी कि धर्ममत को मानना या देव-विशेष की पूजा करना नहीं, बल्कि आचार शुद्धि और चारित्र्य है । यदि एक आदमी अपने पूर्वजों के बताए धर्म पर दृढ है, चारित्र्य से शुद्ध है, दूसरी जाति या व्यक्ति के आचरण की नकल नहीं करता बल्कि स्वधर्म में मर जाने को श्रेयस्कर समझता है, ईमानदार है, सत्यवादी है, तो वह निश्चय ही श्रेष्ठ है, फिर वह चाहे आमीर वंश का हो या मक्कस श्रेणी का । कुलीनता पूर्वजन्म के कर्म का फल है, चारित्र्य जन्म के कर्म का प्रतीक है । देवता किसी एक जाति की संपत्ति नहीं है.

धर्म वही हो सकता, जो मनुष्य धर्म हो, जिसके पालन से मनुष्य का चरित्र निर्मल होता हो एवं उसमें निर्भीकता, ईमानदारी तथा सत्य-वादिता जैसे गुणों का विकास होता हो । परंतु धर्म के तथाकथित संरक्षक अपने स्वार्थ साधन केलिए नैतिक मूल्यों की बलि देते रहे हैं एवं पूजा पाठों, ऊँच स्वरों में मंत्र लगाने वालों को धर्मात्मा माना जाता है - चाहे उनका आचरण कितना ही छल कपट-युक्त, असत्य अथवा चरित्र से हीन रहा हो । माथे पर बड़ा भारी तिलक लगा कर घण्टों भगवान के चरणों में बैठा रहनेव व्यावसायिक यदि दैनिक जीवन में हजारों का गोलमाल करता है, तो क्या उसे नैतिक अथवा धार्मिक पुरुष माना जा सकेगा।

धर्म संबन्धी व्यंग्य परंपरा में कबीरदास ने मूर्तिपूजा जैसी अंध परंपरा पर व्यंग्य किया है -

पाहन पूंजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार
ताते या चाकी भली, पीसि खाई संसार ।।[1]

यहाँ कबीर ने मूर्ति पूजा करने वाले हिन्दुओं पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि पत्थर की पूजा करने से यदि ईश्वर की प्राप्ति होती है, तब तो पहाड़ की पूजा की जानी चाहिए । इस से भली तो पत्थर की चक्की होती है, सारा संसार उस से पीसकर अपना पेट तो भर लेता है । कबीर ने हिन्दुओं के साथ साथ मुसलमान धार्मिक दुराग्रहों पर भी व्यंग्य किया । मुल्लाओं द्वारा मस्जिद की छत पर चढकर ज़ोर ज़ोर से अल्लाह को पुकारने पर उन्होंने निम्नांकित पंक्तियाँ लिखी -

कांकर पत्थर जोड़ि के मस्जिद लई बनाय ।
ताचढि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय ।।[2]

---

1. कबीर - पृ.

2.

कबीरदास सच्चे अर्थों में मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के पक्ष में थे एवं उनका उद्देश्य इनसानों में आपसी प्रेम का विकास था। उन्होंने पढ़े - लिखे, किन्तु प्रेम से शून्य मनुष्यों को पण्डित मानने से इनकार कर दिया था -

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोई।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़े सु पंडित होइ ॥[1]

कबीर ने यह सवाल उठाया था कि पुराण एवं कुरान का अध्ययन तब तक व्यर्थ है, जब तक मनुष्य के अन्तर में प्रेम का विकास न हो गया हो। उन्होंने युगों से चली आ रही नैतिक मान्यताओं को चुनौती दी थी एवं उनके खोखलेपन को व्यंग्य के माध्यम से उजागर किया था। सभी श्रेष्ठ एवं साहित्यिक कवियों ने सच्ची नैतिकता को सच्चा धर्म माना है।

"सन् 1900 से सन् 1920 ई० तक के काल को कविता के क्षेत्र में हम द्विवेदी युग मानते हैं"[2]। इस युग में धर्म की बिगड़ी हुई दिशा पर चिन्ता व्यक्त की गई एवं "भारत-भारती" के कवि ने धर्म, तीर्थों, पंडों, मन्दिरों, महन्तों एवं साधु संतों की बिगड़ी हुई दशा को पूरी पीड़ा एवं व्यंग्य के माध्यम से उभारा। धर्म प्राण भारत की स्थिति निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट है -

धर्मोपदेश सभा भवन की भित्ति से टकरा रहा,
आडम्बरों को देखकर आकाश भी चकरा रहा।

1· कबीर - साखी - सं·डॉ·सावित्री शुक्ल - पृ·197

2· द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य - रामसकलराय शर्मा - पृ·25

बस कागज़ी घुड़दौड़ में है आज इतिकर्तव्यता,
भीतर मलिनता हो भले ही किन्तु बाहर भव्यता ।
धनवान ही धार्मिक बने यद्यपि अधर्मासक्त हैं,
है लाख में दो चार सहृदय शेष बगुला भक्त हैं[1] ।।

धार्मिक पुरुषों की स्थिति यह रही, उन तीर्थों की स्थिति और भी अधिक खटकता है, जहाँ लोग सुख शांति प्राप्त करने केलिए जाते हैं । तीर्थों को संभालने वाले पंडों के क्रियाकलापों पर निम्नांकित व्यंग्य किया गया है -

"ये तीर्थ पंडे हैं जिन्होंने धर्म का ठेका लिया
है निन्द्यम कर्म न एक ऐसा हो न जो उनका किया ।
वे हैं अविद्या के पुरोहित, अविधि के आचार्य हैं,
लड़ना झगड़ना और अड़ना मुख्य उनके कार्य हैं"[2] ।

देश के विभाजन के समय हुए सांप्रदायिक दंगों में धर्म ने जो काले, अमानुषिक एवं पाशविक करतब दिखाए वे किसी से छिपे नहीं हैं । धर्म की आड़ लेकर हुए हिन्दु-मुसलमान संघर्ष को देखकर विश्व मानवता कराह उठी । विभाजन की दारूण परिस्थितियों पर कई रचनाएं लिखी गई, जिनका व्यंग्य तीखा एवं करूण था । "हिन्दु मुसलमान" शीर्षक रचना में बेगुनाह, निर्दोष, अनजान एवं अपरिचित मासूम जनसाधारण की हत्या कर डालने की उत्तेजक स्थिति को अत्यन्त करूण एवं हृदय विदारक व्यं के माध्यम से कहा गया है । इस कविता में दो चित्र हैं । एक चित्र में हिन्दु बाला है, जो अपने पति मोहन को मार दिए जाने एवं स्वयं को गुंडों द्वारा भ्रष्ट किए जाने की स्थिति का वर्णन करती है ।

---

1. भारत भारती - पृ.131
2. वही - पृ.133

दूसरे चित्र में एक बुढ़िया अपने पुत्र जुम्मन की, जो किसी का दुश्मन नहीं था, हत्या पर विलाप करती है । ये दोनों तस्वीर हिन्दू द्वारा मुसलमान एवं मुसलमान द्वारा हिन्दू को मार दिए जाने की करुण गाथा कहते हैं । प्रस्तुत कविता करुणा का अजस्त्र स्त्रोत से भरा हुआ है, इस के साथ साथ आक्रोश भी जगाती है -

हैं गूँज रहे मेरे कानों में अब तक
लड़की की हँसी और उस बुढ़िया का रव ।
थे मुसलमान-हिन्दू वे जुम्मन मोहन,
पर इनके पहले वे थे निश्चय मानव ।
दोनों के मज़हब अलग अलग माना, पर
मानवता के विकास का साधन मज़हब,
जो नफरत की बुनियादों पर कायम है
वह नहीं खुदा का, वह शैतान का करतब ।[1]

धार्मिक दुराग्रहों एवं निरर्थक कटरतापन के नग्ननृत्य के विरुद्ध लिखी गयी कविताओं में प्राय: धर्म पर नहीं, धर्म की कुरीतियों पर व्यंग्य किया गया है, क्योंकि अपने मूल रूप में कोई भी धर्म बुरा नहीं होता । उसके अनुयायी एवं विश्वासी ही उसमें खोट पैदा करते हैं । इस विसंगति को व्यक्त करने वाली सार्थक कविता है "सच्चा पथ"[2] । इस में कवि ने व्यंग्य करते हुए कहा है कि सच्चा धर्म वही है, जो किसी को भटकाता भरमाता नहीं । गिर्जाघर, मसजिद एवं मंदिर सभी ईश्वर के आवास स्थल है तथा उनमें परस्पर कोई तकरार नहीं है । किन्तु इनके संरक्षक पादरि मुल्ला एवं पंडित सभी स्वार्थ के मूर्त रूप हैं । उनकी कोशिश यही है कि लोगों में परस्पर सौमनस्य तथा सौहार्द न हो, क्योंकि इस से उनके स्वार्थों पर पाला पड़ जाता है ।

---

1. रंगों में मोह - पृ.82
2. भारत में भी लोरी - पृ.16

हिन्दी कविता में धार्मिक दुराग्रहों एवं परंपरागत नैतिक मूल्यों के प्रति किए गए व्यंग्य से यह स्पष्ट है कि सभी कवियों की दृष्टि प्राय: स्वच्छ एवं अमलिन रही है, सभी में धर्म के प्रति श्रद्धा होते हुए भी उसके कूप मंडूक संरक्षकों की निरंकुशता एवं अविवेक के प्रति आक्रोश है। परंपरागत नैतिक मूल्यों को नकारकर इन कवियों ने नए नैतिक मूल्यों का समर्थन किया। ऐसे व्यंग्य में आक्रोश होते हुए भी शालीनता है, पैनापन होते हुए भी मृदुता है तथा उन स्थलों पर पीड़ा एवं करुणा का भाव भी है, जहाँ धर्मान्धता के कारण जनता त्राहि-त्राहि कर उठी है।

जो राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से अव्यवस्थित व दुर्बल होगा, वह आज की दुनिया में सुख-शांति से रह सके अथवा प्रगति की रफ्तार में औरों के साथ कदम मिलाकर चल सके, इस में संदेह है। आर्थिक स्थिति की विषम परिस्थितियों में निम्न श्रेणी के लोगों में असन्तोष अनिवार्य हो जाता है। साहित्यकार अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होता है। अतः वह समाज के पिसनेवाले वर्ग की ओर से आवाज़ उठाता है, जिस में संपन्न वर्ग की आलोचना के साथ साथ विपन्न वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त की जाती है।

सामान्य व्यक्ति का आर्थिक शोषण यों तो न जाने कब से चला आ रहा है, लेकिन हिन्दी कविता में इसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति भारतेन्दु काल में मिलती है। उस युग के "भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र तथा बाल मुकुन्द गुप्त आदि कवि अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति से परिचित थे, वे विदेश जाते हुए धन तथा देश के नष्ट होते हुए उद्योग धन्धों को देखकर क्षुब्ध थे। वे जनता की दीन हीन स्थिति को देखकर दु:खी थे। इस स्थिति के प्रति अपने ढंग से इन कवियों ने विद्रोह का स्वर भी ऊँचा किया है"[1]।

---

1. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - डॉ. रघुवंश - पृ. 103

स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन कवियों में अंग्रेज़ों की आर्थिक नीतियों के प्रति जागा हुआ विद्रोह व्यंग्य के माध्यम से ही व्यक्त हुआ था। समस्यापूर्ति करते समय भी भारतेन्दु व्यंग्य करने से नहीं चूके। विक्टोरिया रानी के युग युग जीने की कामना के साथ साथ देश की दरिद्रता तथा जल की बिन मछली के समान पीड़ित एवं व्याकुल जनमानस एवं टैक्स अदा करके दुखों से मुक्त हो जाने की स्थिति को भारतेन्दु ने निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया --

> दीन भये बल हीन भये धनहीन भये सब बुद्धि हिरानी
> ऐसा न चाहिए आपुके राज प्रजागन ज्यों मछरी बिनु पानी
> या रुज की तुम ही अहो वैद कहे तेहिं ते हरिचन्द बखानी
> टिक्कस देहु छुड़ाई कहे सब जीवो सदा विक्टोरिया रानी[1] ।।

इसके मुताबिक भीतर ही भीतर शोषण करने वाले, किन्तु ऊपर से मीठे एवं सुभाषी बने रहने वाले अंग्रेज़ों पर भारतेन्दु द्वारा रचित यह मुकरी दृष्टव्य है -

> भीतर भीतर सब रस चूसै
> हँसि हँसि के तन मन धन मूसै ।।
> जाहिर बातन में अति तेज़
> क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेज़[2] ।।

अंग्रेज़ों द्वारा राय बहादुर, खान बहादुर, राय साहब आदि के खिताब भी उन रईसों को ही दिए जाते थे, जो उनकी सेवा में संलग्न रहते थे। बड़े बड़े चंदे एवं दावतें देते थे एवं उनकी जूतियों तक को सलाम

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली (द्वितीय संस्करण) दूसरा भाग - पृ.867
2. " वही " पृ.811

करते थे। तात्पर्य यह है कि अंग्रेज़ों द्वारा आर्थिक शोषण की सभी नीतियों पर भारतेन्दु-युगीन कवियों, विशेषकर भारतेन्दु ने तीखे व्यंग्य-प्रहार किए थे।

आर्थिक असमानताओं के प्रति असन्तोष एवं व्यंग्य का सर्वाधिक गहरा रंग प्रगतिशील आन्दोलन के साथ उभरकर आया है। इन कवियों ने युग युगों से मज़दूरों, किसानों, गरीबों के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए, पूंजीपतियों, मिल के मालिकों, जमींदारों, सूदखोरों, मुनाफाखोरों, धन को पानी की तरह बहाकर ऐशो आराम करने वालों पर व्यंग्य किया। इन कवियों ने, जिन में निराला अग्रणी थे सामान्य मनुष्य को प्रतिष्ठित करने तथा उपेक्षित जनों का उन्नयन करने का बीड़ा उठाया एवं इस मार्ग में बाधक बननेवाले असामान्य, असाधारण एवं विशिष्ट जनों पर व्यंग्य किया। व्यंग्य कृति "कुकुर मुत्ता" के कवि ने "खून चूसा, खाद का तू ने अशिष्ट, डाल पर इतराता है केपिटलिस्ट[1] कहकर गरीबों अथवा सामान्य जन का शोषण करने वाले गुलाब पर प्रहार किया। प्रगतिवादियों में आर्थिक शोषण पर प्रहार करने की प्रवृत्ति सर्वाधिक है। इन कवियों ने आर्थिक मुसीबतों के शिकार" छोटे बाबू ", यह उन्मत्त प्रदर्शन, पैसा चहक रहा है" और "प्रेत का बयान"[2] कविताओं में क्रमशः छोटे बाबुओं की करुण आर्थिक स्थिति, धनिकों के शादी-ब्याह में किए जा रहे धन के उन्मुक्त प्रदर्शन एवं दूसरी ओर बाहर जूठन चाटने वाले गरीब बच्चों, सेठानियों के नखरों एवं ऊंची उड़ानों एवं भूख से मरकर प्रेत बन जाने वाले एक अध्यापक के बयान के माध्यम से आर्थिक विषमताओं एवं दैन्य की तसवीरें खींची हैं।

---

1. कुकुरमुत्ता - पृ. 39
2. युगधारा - पृ. 97

ऐसी विषमताएं निश्चय ही दुनिया की भयंकर बीमारी है। फलस्वरूप भुखमरी, दैन्य, असभ्यता एवं अशिक्षा फैलती रही है। गरीब किसा के बेटे को अपने बाप की मृत्यु के बाद विरासत में क्या उपलब्ध होता है, उसका सही एवं सच्चा, किन्तु उत्तेजक एवं मार्मिक चित्र कवि ने "पैतृक" "संपत्ति" कविता में प्रस्तुत किया है -

"जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मलबा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि - वह भी परती।
चमरौधे जूते का तल्ला
छोटी, टूटी बुढ़िया औगी
दर की गोरसी, बहता हुक्का
लोहे की पत्ती का चिमटा।
कंचन सुमेरु का प्रतियोगी
द्वारे का पर्वत धूरे का
बनिये के रुपयों का कर्जा
जो नहीं चुकाने पर चुकता।
दीपक, गोजर, मच्छर, माटा -
ऐसे हजार सब सहवासी।
बस यही नहीं, जो भूख मिली
सौ गुनी बाप से अधिक मिली
अब पेट खलाये फिरता है
चौडा मुंह बाये फिरता है
वह क्या जाने आज़ादी क्या।
आज़ाद देश की बातें क्या।

---

1. फूल नहीं रंग बोलते - केदारनाथ अग्रवाल - पृ.74

प्रस्तुत कविता में गरीब से ज़्यादा गरीब होते जाने की सच्चाई व्यक्त की गयी है। जो ऋण वह वर्षों से चुकाता रहता है, वह कभी चुकने में नहीं आता, क्योंकि सूदखोरी का कोई हिसाब नहीं है एवं गरीबी का शोषण अभी तक जारी है। इसी प्रकार गाँव के सूद खोर महाजन पर भी केदारनाथ अग्रवाल ने अत्यंत सटीक व्यंग्य करके उसे "गौरव का गोबर गणेश" की संज्ञा दी है।[1]

सच्चा रचनाकार आर्थिक विसंगतियों की अनुभूति से असंपृक्त नहीं रह सकता। इस प्रकार की विषमताओं की कचोट एवं अनुगूंज उसके मन-मस्तिष्क तथा कृतियों में होनी अवश्यम्भावी है। दिन व दिन आकाश को छूने वाली महँगाई, बढ़ता हुआ परिवार, जनसामान्य में अधिक स्वार्थी होकर पैसा बटोरने की लोलुपता - एक सीधा सादा ईमानदार आदमी नित्यप्रति इस चक्की के अधिक दबाव में आता जा रहा है। ये समस्त विसंगतियां उसे चरित्र-पतन के गर्त में धकेल रही हैं, इस तथ्य की हलकी सी किन्तु स्पष्ट एवं सांकेतिक झांकी हमें निम्नांकित पंक्तियों में मिलती है -

दो सौ रुपल्ली माहवार पर
बारह जनों का परिवार कैसे चलता है -
समझकर क्या करोगे।
क्या करोगे समझकर कि रात के दो बजे
मुहल्ले में किसकी कार आती है
उस समझ में क्या धरा है
जो रह रहकर छक्के छुड़ाती है।[2]

---

1. झूल नहीं रंग बोलते हैं - पृ.82
2. भारत भूषण अग्रवाल : आलोचना पूर्णांक - पृ.47

नैतिक ह्रास एवं चरित्रहीनता को जन्म देने वाला सचमुच आर्थिक अभाव ही है । इसलिए व्यंग्यकार सर्वदा बुराई की जड़ पर ही प्रहार करना चाहता है । इन्हें दूर किए बिना यदि कोई चाहे कि लोग एकाएक चरित्रवान हो जाएं, उनका आचरण भला हो एवं घूसखोरी, बेईमानी जैसे दुर्गुण सदा केलिए समाप्त हो जाएं तो यह मात्र जनता की बाहों में सदाचार का ताबीज़ बांधने जैसा ही हास्यास्पद प्रयत्न होगा, इसे मात्र आकाश कुसुम के गुलदस्तें तैयार करने जैसे प्रयास की संज्ञा दी जा सकेगी ।

यह कहने में संकोच नहीं है कि भारतेन्दु-युग से आज तक आर्थिक विसंगतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई जाती रही है, जिस में व्यंग्य का तीखापन है एवं दलित वर्गों के प्रति करुण भाव है । इस प्रकार के व्यंग्य में शोषण करने वालों केलिए तिरस्कार, भर्त्सनायुक्त, उत्तेजक एवं प्रहारधर्मी दृष्टि भी है ।

आजकल के जीवन में राजनीति, व्यक्ति एवं समाज को विभिन्न कोणों से प्रभावित करती है । राजनीति पर सर्वाधिक प्रभाव उसे संचालित करनेवाले नेताओं एवं राजनीतिज्ञों का पड़ता है । राजनीति के इन कर्णधार के क्रियाकलापों में पाई जाने वाली असंगतियों व्यंग्यकार को बाध्य करती हैं कि वह उनका भंडाफोड़ करके उनके दंश से जनता को बचाए, जनमानस में सही आक्रोश पैदा करे । प्रारंभिक हिन्दी व्यंग्य में भारतेन्दु ने अपनी कविताओं में राजनीति अथवा राजनीतिज्ञों पर प्रत्यक्ष प्रहार न करके अंग्रेज़ों की इन नीतियों पर कि वे देश का धन विदेश भेज रहे हैं, लोगों को अंग्रेज़ी पढ़ाकर संस्कृति एवं भाषा से विमुख किया जा रहा है, आक्रमण किया था भारतेन्दु के पश्चात काफी समय तक राजनीति एवं राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति दिखाई नहीं दी । इस का कारण शायद यह होगा कि तत्पश्चात् देश स्वाधीनता - आन्दोलन में कूद पड़ा था एवं अश्क जी के

कथनानुसार "देश के नेताओं का मज़ाक उड़ाया नहीं जा सकता था (कोई मज़ाक उड़ाने योग्य बात दिखाई भी देती तो उसे नज़र अंदाज़ कर दिया जाता) और अंग्रेज़ का मज़ाक उड़ाने का मतलब सीधे जेल में जाना था"[1] ।

स्वाधीनता - प्राप्ति एवं जनतंत्र की स्थापना से पूर्व ही हिन्दी में राजनीतिक व्यंग्य लिखे जाने लगे थे । "मास्को डायलोग्स" की रचना आज भी राजनीतिज्ञों पर किए गए व्यंग्य का अच्छा उदाहरण मानी जा सकती है । समाजवाद की बातें अब तो काफी पुरानी नहीं हुई है, लेकिन यह प्रथा कुछ अधिक प्रचलित है । निराला ने समाजवादियों के नकलीपन की तसवीर खींची थी जो अशिक्षित थे एवं बुद्धिजीवियों को बुद्धू बनाकर समृद्ध होना चाहते थे -

"मेरे एक मित्र हैं श्रीयुत् शिवानी जी,
बहुत बड़े सोशयलिस्ट
"मास्को डायलाग्स" लेकर आए हैं मिलने ।
मुस्कुराकर कहा, यह मास्को डायलाग्स है,
सुभाष बाबू ने इसे जेल में मंगाया था,
भेंट किया था मुझ को जब थे पहाड़ पर
"टूपू तक, मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क में
दो प्रतियां आई थीं ।
फिर कहा, "वक्त नहीं मिलता है,
बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है,
देखभाल करता हूं ।"
फिर कहा, "मेरे समाज में बड़े-बड़े आदमी हैं,
एक से हैं एक मूर्ख
उनको फंसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का ।

---

1. हिन्दी कहानी एक अंतरंग परिचय - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ.342

उपन्यास लिखा है,
ज़रा देख लीजिए ।
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर,
मनमाना रुपया फिर ले लूं इन लोगों से,
नए किसी बंगले में एक पैसा खोल दूं,
आप भी वहीं चलें
चैन की बंसी बजाने" ।
देखा उपन्यास मैं ने,
श्री गणेश में मिला -
"प्रिय असनेहमयी श्यामा मुझे प्रेम है" ।
इसको फिर रख दिया, देखा, "मास्को डायलाग्स",
देखा गिडवानी को[1] ।

यहां बड़ी विडंबना का चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है । जहां दूसरों को "उल्लू के पट्ठे" समझकर "एने मूर्खों" को फंसाने की कोशिश स्वयं एक निरक्षर भट्टाचार्य द्वारा की जाती है । अवसरवादी, बहुरुपिए नेताओं पर व्यंग्य करने का श्रीगणेश आधुनिक युग में निराला से ही माना जा सकता है उन्होंने ऐसे साहित्यिकों पर भी व्यंग्य किया, जिन पर राजनीति का रंग चढ़ने लगा था एवं जो तिकड़म से प्राप्त भौतिक उपलब्धियों का ताज़ा रस पाने को लालायित हो उठे थे ।

निराला द्वारा रचित राजनीतिक व्यंग्यों ने परवर्ती नये कवियों का मार्गदर्शन किया एवं उन्होंने व्यंग्य को अपनी रचनाओं में स्थान दिया ।

---

1. नए पत्ते - पृ.26

गांधी जी की अहिंसा एवं हिटलर की हिंसा की भावनाओं एवं नीतियों के प्रति व्यंग्य का भाव निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है -

खाना खाकर कमरे में बिस्तर पर लेटा
सोच रहा था मैं मन ही मन हिटलर बेटा
बड़ा मूर्ख है, जो लड़ता है तुच्छ क्षुद्र मिट्टी के कारण
क्षणभंगुर ही तो हैं रे ! यह सब वैभव धन !
अन्त लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला !
लिखूं एक खत, हो जा गांधीजी का चेला
वे तुझ को बतलाएंगी आत्मा की सत्ता
होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता ।[1]

प्रस्तुत रचना में अहिंसा एवं हिंसा पर व्यंग्य किया गया है । गांधीजी की अहिंसा के सिद्धांत पर कटाक्ष करते हुए हिटलर की हिंस्त्र मूर्खता का मजाक भी उड़ाता है ।

असहाय मानवीय स्थितियों एवं आत्मविडंबना की अभिव्यक्ति इस प्रकार के व्यंग्य में ऐसी असहाय एवं दारूण परिस्थितियों की पीड़ा का चित्रांकन होता है, जिन पर प्राय: मनुष्य का कोई वश नहीं होता, उस पीड़ा के दंश को योगने के सिवा वह कुछ भी नहीं कर सकता ।

"रानी और कानी" कविता में ऐसी ही दारूण परिस्थिति को छुआ गया है । आज के दुविधाग्रस्त जीवन में मनुष्य की परवशता के अनेक चित्र दिखाई देते हैं । वह परिस्थितियों से सन्तुष्ट नहीं होता;

---

1. तारसप्तक - भारतभूषण अग्रवाल - पृ.99

लेकिन विद्रोह करने की क्षमता का भी लोप हो चुका होता है, क्योंकि इस विद्रोह का नतीजा निकलता है बेकारी, भुखमरी और अपमान। यही कारण है कि ऊब पैदा करनेवाली एवं पूर्णत: तोड़ देनेवाली परिस्थितियों को अपनी नियति मानकर मनुष्य उनसे समझौता कर लेता है। हिन्दी की नई कविता में आत्मविडंबना की इन अनिवार्य परिस्थितियों पर अत्यंत करुण व्यंग्य मिलता है। अपने ऊपर हँसी जानेवाली यह हँसी एक पीडा-जनक करुणा का संचार करती है। नए कवि की एक कविता है - "शतरंज के मोहरे" जिसमें उन्होंने इस दर्द को कि हम खिलाडी नहीं हैं, अपितु स्वयं दूसरों द्वारा खेले जाने वाले खिलौने बन गए हैं, अत्यंत सटीक लेकिन संयत व्यंग्य के माध्यम से लिखा है -

खेला मुझे दूसरों ने
मैं ने खेल का मज़ा नहीं जाना
लडाया मुझे दूसरों ने
मैं ने लडाई का गौरव नहीं जाना
कहने को मैंने खेला है, घृणा की है, प्यार किया है
पर यह भी सच है कि मैं मात्र एक शीशी हूँ
घुटन, दर्द, आस्था, संघर्ष के लेबल मुझ पर चिपके हैं
मैं दवा की शीशी बन सकता हूँ
डाक्टर नहीं
तलवार की म्यान बन सकता हूँ
सूरमा नहीं,
खिलौना बन सकता हूँ
खिलाड़ी नहीं
जीवन मुझे जी रहा है
मैं जीवन को नहीं।

अपना जीवन अपनी इच्छाओं एवं तबीयत के अनुसार न जी पाना कितना बड़ा कष्ट है, यह प्रत्येक स्वाभिमानी एवं कुछ कर डालने की हौंस रखनेवाला व्यक्ति समझ सकता है । आज के प्राय: सभी संवेदनशील रचनाकार इस विडंबना को झेल रहे हैं । हिन्दी काव्य में आत्म विडम्बना को पूरी निर्ममता से व्यक्त करने की प्रवृत्ति नई कविता से मुखर हुई है । इस प्रकार की व्यंग्य रचनाओं में हास्य केलिए तो रत्ती भर भी अवकाश नहीं है, ये रचनाएं संवेदना को सम्झोर उदात्त करुणा की सृष्टि करती है ।

व्यंग्य काव्य का उद्देश्य सदैव सुधार की ओर समाज को अग्रसर करना रहा है । द्विवेदी युग में दरबारों एवं गोष्ठियों से निकलकर पत्र-पत्रिकाओं एवं कवि सम्मेलनों के माध्यम से सीधे जनतातक पहुंचने लगी थी। "आधुनिक काल सन् 1900-1925 की एक यह विशेषता है कि इस काल में सामान्य मानवता को भी स्थान मिला । स्वच्छन्दतावादी आंदोलन के द्वितीय चरण में जब कला की व्यंजना केलिए कविता में चित्रांकन को स्थान मिला तब चित्र केलिए वस्तु खोजने केलिए कवियों ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई । प्रकृति में तो उन्होंने उसके असामान्य रूप को अपनाया किन्तु भावलोक में सामान्य मानवता पर उनकी दृष्टि पड़ी । पश्चिमी साहित्य के प्रभाव में हमारे कवि यथार्थ बाद की ओर बढ़ रहे थे"[1] । इस युग में व्यंग्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य पाश्चात्य फैशन था । नवयुवक एवं नवयुवतियां पाश्चात्य वेषभूषा एवं संस्कृति से अधिक प्रभावित हो रहे थे । भारतीय वेषभूषा एवं संस्कृति के प्रति उपेक्षा प्रारंभ हो रही थी ।

---

1. आधुनिक साहित्य - डॉ॰कृष्णलाल

अचकनु पहिरि बूट हम डाँटा,
बाबू बनेन डेरात डेरात
लागे न जाने जाय समझ माँ,
कण्ठु फूट तब बना बतात ।
जब तक हमरे तन माँ तनिको.
रहा गाँउ के रस का अंसु
तब तक हम अखबार किताबैं
लिखि लिख कीन उजागर बसु ।[1]

भड़के भुलादो भूतकाल के सजिए वर्तमान के साज,
फैशन फेर इण्डिया भर के गोरे गार्ड बनो ब्रजराज,
गौरवपूर्ण वृषभानु सुता का काढ़ो काले तन पर तोप
नार उतारो मोर मुकुट को सिर पर सजो ताहिनी टोप ।
पाउडर चन्दन पोंछ लपेटो आनन की श्रीज्योति जगाय
अंजन आँखियों में मत आओ, आला एनक लेहु लगाय[2] ।।

स्वामी दयानन्द के आर्यसमाज के प्रभाव से समाज-सुधार की भावना तीव्र रूप धारण कर चुकी थी । मूर्तिपूजा, धार्मिक पाखंड, पोंगापन्थी आदि के प्रति समाज में विद्रोह के स्वर मुखरित हो उठे थे ।

कपटी साधु को व्यंग्य का लक्ष्य बनाकर ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने अपनी "महन्त रामायण" में लिखा -

चित्रकूट के घाट पर, भइ लंठन की भीर
बाबा खड़े चला रहे, नैन सैन के तीर[3] ।।

1· महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डॉ·उदयभानु सिंह - पृ·180
2· सरस्वती - नाथूराम शंकर शर्मा - पृ·23
सन् 1906
3· महन्त रामायण - ईश्वरी प्रसाद शर्मा - पृ·25

तत्कालीन शिक्षा पद्धति भी व्यंग्यकारों का प्रमुख लक्ष्य बना । बलभद्र प्रसाद दीक्षित "पढीस" ने शिक्षा पद्धति को लक्ष्य बनाकर लिखा -

सब पटटी बिकी असद्रियमा,
लरिकउनू एम॰ए॰ पास किहिन,
पुरखिन का पानी खुवयि मिला,
लरिकउनू एम॰ए॰ पास किहिन
उइ उझिगा चाहिए पानी मा,[1]
लरिकउनँ एम॰ए॰ पास किहिन ।।

धर्म के नाम पर दुराचारी एवं पाखंडी लोग भी धर्मप्राण जनता का शोषण करते हैं । धर्माचारी भी व्यंग्य के लक्ष्य बने :

दुराचारियों को तू प्रायः धर्माचार्य बनाता है ।
कुत्सित कर्म-कुशल कुटिलों को अक्षरश उपजाता है ।
मूर्ख धनी विद्वज्जन निर्धन उलटा सभी प्रकार ।
तेरी चतुराई को ब्रह्मा बार-बार धिक्कार ।।[2]

ग्रामीणों में मुकदमेबाज़ी का शौक बुरी तरह लगा हुआ था । "पढीस" ने इस कुवृत्ति पर व्यंग्य लिखा -

बद्दू बाब की बिटिया का इनका ज्याता गरियायि दिहिस
बस बजी फउजदारी तिहिते अब,
पहुँचे आप कचेहरी का ।

1· चकल्लस - नरोत्तम नागर - पृ॰2

2· डॉ॰प्रेमनारायण टंडन द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य से उद्धृत - महावीर प्रसाद द्विवेदी - पृ॰338

दुइ बीसी रुपया उनन हुआ,
लाये लिहिन उकील बलहटरजी ।
तारीख बढायन्हि पेसी की
तब पहुँचे आप कचेहरी का ।
युह दीखु मुकदमा बाजी का,
नस नस का पइठ पीढीसन के ।
जो छुटिसि रोग कचेहरी का ।।[1]

मौलिक प्रतिभा सभी में नहीं होती । साहित्य में भी दूसरों की नकल करके लोग किताब लिख डालते हैं । चार किताबें पढ करके पांचवीं लिखनेवालों को भी व्यंग्य का लक्ष्य बनाया । द्विवेदी युग में भी ऐसे तथा कथित ग्रन्थकारों की कमी नहीं थी जो इधर उधर से सामग्री बटोर नई पुस्तकें लिखने के चक्कर में रहते थे । महावीर प्रसाद द्विवेदी एक आदर्शवादी तथा नैतिकता में विश्वास रखनेवाले साहित्यकार एवं संपादकाचार्य थे । तथाकथित ग्रंथकार को लक्ष्य बनाकर द्विवेदी जी ने लिखा -

इधर उधर से जोड़ बटोर
लिखते हैं जो तोड़-मरोड़
इस प्रदेश में वे ही पूरे ग्रन्थकार कहलाते हैं[2] ।

"विधि विडंबना" शीर्षक कविता में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है -

शुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनको नहीं विचार ।
लिखवाता है उनके कर से नये-नये अखबार[3] ।।

1• चकल्लस - नरोत्तम नागर - पृ•89

2• हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - सं.डॉ•प्रेमनारायण टंडन - पृ•341 से उद्धृत

3• वही

कविता के मार्ग को बिना समझे तुकें जोड़ने वाले भी अपने को महाकवि समझते हैं। उन्हें ऐसा करने से कौन रोक सकता है। ऐसे "तुक्कड़ों" को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया।

गंदी तुकबंदी छुरी, मार खटाखट-खट्ट,
काटे कविता का गला, तुक्कड़ भारत भट्ट।
फूंकता तमाकू दीवा बार फूटी कोठरी में,
गांजी ओढ सोता है सराय की सी खाट पे।
भंग की तरंग में उमंग जाग जाती है, तो
जुग भरे लेख लिख लेता है कपाट पे।
कोरी "वाह-वाह" कोई कौड़ी भी न दान करे,
सूम खड़े मानता तरंगिनी के घाट पे।
दारुण दरिद्रता न छोड़ती है पिंड, तो भी
तुक्कड़ता नाचती है, भट्ट के ललाट पे[1]।।

नगर पालिकाओं का निर्माण स्वतंत्रता पूर्व ही हो चुका था। इनकी जो बुरी हालत आज है वही द्विवेदी युग में थी। इन का मुख्य उद्देश्य नगर में सफाई, शिक्षा तथा जल-वितरण की व्यवस्था करना रहा है। इसके विपरीत इन नगरपालिकाओं में सदस्यगण एक दूसरे को नीचा दिखाने के चक्कर में लगे रहते हैं। नगरपालिका की भूमि को अनियंत्रित रूप से दबा लेना, जलकर इत्यादि न देना ही इन लोगों का मुख्य उद्देश्य रह जाता है। द्विवेदी युग में नगरपालिका को "म्युनिसिपालटी" नाम से ही लोग अधिक जानते थे। अतः "म्युनिस्पलटी" भी व्यंग्य का लक्ष्य बनी -

---

1. माधुरी वर्ष खंड 2 - नाथूराम शंकर - पृ.254

शुक्ल-श्यामांग-शोभाख्यां, गौन-साडी-विभूषिताम्
महामोह लसद्दाला कराला काल सोदराम्
चंदा चुंगी विचिन्वन्तीं, कुली-नाली-निकालनीम्
डालतीं च नज़र अपनी, चारों जानिब रूआब से
टौन-हौल महाभीमे, टेबिल चेयर-शतान्विते
लेम्प-लोलुप-सन्दीप्ते, त्यून मृत्य-निषेविते
उच्चासन-समासीतां, पेपर पेन चलत्कराम्
महाविचार में मग्ना, मनो लग्नां धनां गये
ता श्री महाम्युनिसिपेलिटीति
ख्यातां सतीं भारत भाग्य देवीम्
सर्वे वयं नम्र विनीत शीर्षा
।
पुनःपुनः पौरजना नमामः

एक सामाजिक रोग है बालविवाह । शारदा एक्ट के पारित होने पर भी पूर्ण रूप से इस कुप्रथा का अन्त नहीं हो पाया । ग्रामीण जनों में तथा कहीं कहीं नगरनिवासियों में आज-भी बाल विवाह होते हैं । इसी प्रकार विधवाओं की दशा भी समाज में दयनीय रही है । समाज में बदनामी के डर से अवैध संतान की दुर्दशा होती है । वृद्ध लोग धन के बल पर षोडशी कन्या से विवाह करने में सफल हो जाते हैं । इस प्रकार की विवाह पद्धति को लक्ष्य बनाकर कवि "शंकर" ने व्यंग्य लिखा -

बारे बेटा, बेटियों के ब्याहों में न देरी करो,
प्यारे "शीघ्रबोध" का प्रमाणामृत पीजिए ।

---

1. "ज्योत्सना" डी॰ए॰वी॰इन्टर कालीज फिरोजाबाद पत्रिका
- श्रीधर पाठक

गर्भ चुप्पा-चुप्प विधवाओं के गिराते रहो,
सधवा किसी को भी दुबारा नहीं कीजिए ।
बूढ़े बड़ भागी बालिकाओं को वरें तो उन्हें,
रोकिये न बार-बार धन्यवाद दीजिए ।।
चुको मत "भट्टट"चटापट्ट बेच बच्चियों को
मौज मारो, माल की कमाई कर लीजिए[1] ।।

भारतेन्दु युग में राजनैतिक व्यंग्य काव्य की जो धारा प्रवाहित हुई थी वह द्विवेदी युग में मंद हो गई । "सरस्वती" मासिक पत्रिका ही उस युग की प्रमुख पत्रिका थी । महावीर प्रसाद द्विवेदी का मुख्य लक्ष्य भाषा के परिष्कार में था । इस के साथ साथ खड़ी बोली को काव्य भाषा बनाना चाहा । व्याकरणायुक्त शुद्ध हिन्दी लिखने के वे पक्षपाती थे । "सवस्वती" के फाइलों से यह प्रतीत होता है कि वे ज्ञानवर्द्धक तथा समाज केलिए उपयोगी रचनाओं को ही "सरस्वती" में स्थान देते थे । व्यंग्य काव्य जैसे सामाजिक अस्त्र को सशक्त बनाने केलिए उन्होंने रुचि क्यों नहीं दिखाई यह आश्चर्य का विषय है । इस युग में अधिकांश काव्य ऋतुओं पर तथा बालोपयोगी लिखा गया । प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्रों पर आधारित कविताओं का निर्माण तथा लंबी निबंध कविताएं तत्कालीन काव्य की विशेष प्रवृत्तियां थी । द्विवेदी जी में भी व्यंग्य लिखने की प्रवृत्ति थी परन्तु उनका उपयोग उन्होंने साहित्यिक असंगतियों तथा सामाजिक असंगतियों केलिए ही किया । तत्कालीन ब्रिटीश शासकों की शोषण प्रवृत्ति पर व्यंग्य उन्होंने नहीं लिखा जिस की उस समय के कवियों से अपेक्षा की जाती है ।

---

1. माधुरी वर्ष खंड 2 - नाथूराम शंकर - पृ.25

पं॰ रामचन्द्र शुक्ल ने "वसन्त" शीर्षक कविता में सरोज के प्रतीक धनी व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है जो निर्धनों की बिलकुल चिंता नहीं करते :

करि सिर उच्च कदम्ब रह्यो तू व्यर्थ निहारी ।
नहीं गोपिका कृष्ण कहीं तुव छाँह विहारी ।।
रे रे निलज सरोज ! अजहूं निकसत लखि मानहिं ।
देश दुर्दशा जनित दुख चिंत नेकु न मानहिं[1] ।।

मैथिली शरण गुप्त का उत्थान भी द्विवेदी जी की छत्रछाया में हुआ था । गुप्त जी रचित "भारत-भारती" नवचेतना के जागरण के संदर्भ में रचित काव्य-ग्रन्थ है जिसकी लोकप्रियता बहुत अधिक रही । गुप्त जी ने मार्मिक व्यंग्य नहीं लिखा । वे स्वभावत: शान्तिप्रिय थे । गुप्त जी ने मार्मिक व्यंग्य नहीं लिखा । वे स्वभावत: शान्तिप्रिय थे । गुप्त जी ने कहीं कहीं व्यंग्य का तीर चुभोया "मुख में राम राम बगल में छुरी" के भाव को उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से लिखा है :

पापी मनुज भी आज मुंह से, राम नाम निकालते ।
देखो भयंकर भेड़िए भी, आज आंसू डालते ।।
आजन्म नीच अधर्मियों के जा रहे अधिराज हैं ।
देने अहो ! सद्धर्म की वे भी दुहाई आज हैं[2] ।।

1· सरस्वती सं·3, भाग-5 - रामचन्द्रशुक्ल : पृ·81-82
2· जयद्रथवध - मैथिलीशरण गुप्त - पृ·78

द्विवेदी युग की कविता के संबन्ध में रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - "बात यह थी कि खड़ी बोली का प्रचार बराबर बढ़ता दिखाई देता था और काव्य के प्रवाह केलिए कुछ नई नई भूमियां भी दिखाई पड़ती थी । देश दशा, समाज दशा, स्वदेश प्रेम, आचरण संबन्धी उपदेश आदि ही तक नई धारा की कविता न रहकर जीवन के कुछ और पक्षों की ओर भी बढ़ी, पर गहराई के साथ नहीं । त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता इत्यादि के अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंग पद्यबद्ध हुए, जिन के बीच-बीच में जन्म-भूमि, स्वजाति, गौरव, आत्मसम्मान की व्यंजना करने वाले जोशीले भाषण लिखे गए"[1] ।

यद्यपि महावीरप्रसाद द्विवेदी ने स्वयं म्युनिसिपेलिटी के गोलमाल, धार्मिक खंडन-मंडन का रोग, भारतवासियों की कूपमंडूकता, अंग्रेज़ी भाषा का मोह, हिन्दी के प्रयोग में बाबू लोगों की अनाकानी आदि सामाजिक तथा साहित्य संबन्धी असंगतियों पर व्यंग्यात्मक नोट सरस्वती में लिखे जो मार्मिक तथा प्रभावशाली थे किन्तु सरस्वती में व्यंग्यकाव्य लिखने तथा प्रकाशित करने की चेष्टा नहीं की इसलिए उनके युग में नवजागरण के स्वर व्यंग्य काव्य में प्रस्फुटित न हो सके ।

"द्विवेदी युग (1900 ई - 1920 ई) तक व्यंग्य के लक्ष्य प्रधानतः धार्मिक असहिष्णुता, पंडित, शेख, मौलवी, पाखण्ड, मानवीय दुर्बलताएं (ईर्ष्या, क्रोध, लोभ, काम, अहंकार, आश्रयदाताओं की कंजूसी, नीम-हकीम, कर्कशा नारी, वैद्य, रिश्वत, कचहरी के मुंशी, अंग्रेज़ी शासन, टैक्स, महंगी, फैशन प्रियता, तत्कालीन शिक्षा पद्धति, मुकद्दमेबाजी का शौक, तथाकथित कवि, बाल विवाह, साधुओं का नशा-प्रेम म्युनिसपेलिटी, कूपमण्डूकता आदि रहे"[2] ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ.623
2. आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य - बरसानेलाल चतुर्वेदी - पृ.60

शनैःशनैः व्यंग्य के लक्ष्य बदले एवं उनमें विविधता आयी । मार्मिकता की मात्रा भी बढी । राजनीति तथा समाज में भी नेताओं का एक वर्ग बन गया । स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद इन में से कुछ मंत्री बन गए । धार्मिक क्षेत्र के महंतों की तरह इनके आचरणों पर भी व्यंग्यकारों की दृष्टि गई । व्यंग्यकार के आक्रोश का शिकार नेता वर्ग भी बनने लगा। कतिपय नेता भ्रष्टाचार रूपी पंक में निमग्न हो गए । अर्थ संग्रह उनके जीवन का मुख्य ध्येय बन गया । करनी एवं कथनी में बहुत बड़ा अन्तर आ गया । खद्दर का पहनावा भ्रष्टाचार करने केलिए कवच बन गया :

नगर निगल लो, गांव हड़प लो, खा जाओ कारखाने
सड़क पचालो, मैं हूं ऊपर, पेट नहीं बढ़ता है
गदहे हो या बैल, सिंह या बगुला भगत कि कौआ
मुझे पहन लो भक्तो, कोई फर्क नहीं पड़ता है
संसद हो या पब्लिक मीटिंग जी भर धूम मचा लो
मैं खद्दर हूं मुझ पर कोई रंग नहीं चढ़ता है[1] ।

लगभग सन् 1947 के पूर्व देश प्रेम के भावों से नेता ओत-प्रोत थे । त्याग तथा बलिदान उनके जीवन मूल्य थे । स्वतंत्रता मिलने के उपरांत पदलिप्सा, स्वार्थपरता एवं कुत्सित मनोवृत्तियाँ बढ़ गई । वे मदान्ध हो गए । उनके मुखौटे बदले :-

स्वारथ की लाठी लिए, हे अचरज यूं कहस
त्यागी बने चराक्ते, हैं स्वराज्य की भैंस ।।

---

1. श्री राबिन शा पुष्प द्वारा संपादित "हिन्दी की लोकप्रिय हास्य कविताएं - रामदरश मिश्र - पृ.4।

लीन्हों स्वारथ सौतिने, नेताप्रिय विलमाय ।
जनता तिय हिय को रही, है बिरहाग्नि जलाय ।।[1]

क्रमश: नेताओं के रहन-सहन का स्तर बढ़ गया । पूंजीवादियों से उन की सांठ-गांठ हो गई । एक तरह से नेता लोग सेठों के दलाल हो गए । चुनाव के लिए उन से धन लेकर उनकी अनैतिक कार्य-विधियों में सहायता करने लगे :

सौ दो सौ की रिश्वत तो मैं खुल्लम खुल्ला ले लेता हूं ।
है "मूलमंत्र" हड़ताल करो, मजदूरों को बहकाता हूं ।।
पूंजीपतियों के घर पर भी अक्सर दावत खा आता हूं ।
पहले पतला दुबला सा था लेकिन अब काफी मोटा हूं ।।
अवसर से लाभ उठाता हूं मैं वे पेंदी का लोटा हूं ।
सेवक तो जनता का हूं पर वेतन सेठों से ले आता हूं ।।[2]

नेता का प्रसिद्ध गुण या अवगुण यह माना गया है कि वह जनता को मूर्ख बनाता है । आश्वासन देना उसकेलिए सहज क्रिया है । उसका बाह्य आचरण उसके असली रूप से भिन्न होता है । स्वतंत्रता के पूर्व भी कुछ नेता टाइप लोग एक ओर अंग्रेज़ी की चापलूसी किया करते थे एवं दूसरी ओर खद्दर पहनकर अपने को देश भक्त बताया करते थे :

बाहर सभा में देखिए, खद्दर का ठाठ है ।
घर में मगर विलायती सब ठाट बाट है ।।

1• देहाती - गोपाल प्रसाद व्यास द्वारा संपादित "हिन्दी व्यंगविनोद - पृ•64
2• हास्य कवि सम्मेलन {योगेन्द्रकुमार लल्ला} "" - पृ•63

मिलते हैं चुपके चुपके गवर्नर से लाट से ।
लेक्चर में मुंह पे रहता सदा बायकाट है[1] ।

बनते हैं देश प्रेमी खद्दर किए हैं धारण
पहचानते हैं अक्षर, है बोध मात्रा का
माथा तो अब उनके आगे टेकना ही होगा
परमाण पत्र रखते हैं जेल यात्रा का

कुछ केबनेट के अन्दर कुछ केबिनट के बाहर
लीडर बने हुए हैं, फुटपाथ के फटीचर
करते हैं अपने मन की, सुनते नहीं हमारी
बुद्धु बने हुए हैं, हम उनको बोट देकर

आदर्श और साधन, कर्तव्य और पालन
कुर्सी पर जब से बैठे सब भूले जा रहे हैं
ए केस क्या बतावें, ये स्वार्थ के पुजारी
बापू के नाम पर अब बंसी बजा रहे हैं[2] ।।

कुछ लेखकों ने समष्टिगत व्यंग्य को छोड़कर व्यक्तिगत व्यंग्य लिखा । निराला ने जवाहरलाल नेहरू को लक्ष्य बनाया -

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं
माताजी को स्विट्ज़रलैण्ड में
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है
बड़े भारी नेता हैं

---

1. बेढब की बहक - बेढब बनारसी - पृ.25
2. हंसोड़ मासिक - अक्टूबर - 1961 - पृ.15

मिलों के मुनाफे खानेवालों के अभिन्न मित्र
देश के किसानों, मज़दूरों के अपने सगे[1] ।

भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि अनेक भारत मां के नौनिहाल देश केलिए बलिदान हो गए । उन्होंने अपने जीवन की आहुति देने में भी संकोच नहीं किया । यदि वे आज होते - नागार्जुन व्यंग्य करते हैं कि -

भगत सिंह प्रिय तुम तो नाहक फांसी झूल गए थे ।
योग योग का सर्वोदय का पथ ही भूल गये थे ।।
भगतसिंह तुम मंद बुद्धि थे, ये तुम औसत प्राणी ।
तुम पर असर नहीं कर पाई बापूजी की वाणी ।
बापू का पथ पकड़ा होता, होते आज मिनिस्टर ।
उपकुल पति तो बन ही जाते, होते अगर रिटायर[2] ।।
§नागार्जुन§

नेता भाषण में गरीबों के साथ दुःख प्रकट करता है तथा मगर के आंसू बहाता है । इस के साथ साथ अपना जीवन शान-शौकत से बीतता है, विदेशी कारों में घूमता है, हवाई जहाज़ से सैर करता है तथा आलीशान बंगलों में रहता है । उसका दुख वास्तव में दिखावटी होता है :

घूमता कौन है कुर्सी पे वो लट्टू की तरह
कितने लाइन में खड़े हैं बजर बट्टू की तरह
एक खूंटे से बंधा कौन निखट्टू की तरह
बिकते देखा है किसे भाड़े के टट्टू की तरह
कौन गुस्ताख गधा, हो लिया गुल्लाम के साथ
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ[3] ।।
§अल्हड़ बीकानेरी§

---

1. नए पत्ते - निराला - शीर्षक महंगू महंगा रहा ।
2. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ॰रणजीत - पृ॰351
3. [illegible]

लीडर साधारणत: जन से दूर रहता है । वोट लेने के समय ही विवशता के कारण उसे साधारण मनुष्यों से संपर्क स्थापित करना पड़ता है । सामान्यत: वह जन नेता केवल नाममात्र को ही होता है, वास्तविक रूप से वह मध्य तथा निम्न वर्ग के लोगों से मिलना अपनी शान के खिलाफ समझता है । वोटर तथा नेता में कितना अंतर आ जाता है -

चपरासी कसे बेल्ट
सेक्रेटरी लिए डायरी
गेट पर खड़ी कार
लोगों का इन्तजार
कौन आ रहा।
लीडर आ रहा ।
कूड़े से भरी गाड़ी
खड़ी है गली के बीच
भंगी का इन्तजार
गन्दगी का संसार
भूखा ही कौन आ रहा
लीडर का निर्माता ।।[1]

{शकुन्तला माथुर}

---

1. सं० सूर्यप्रकाश दीक्षित - नयी कविता के हास्य और व्यंग्य शीर्षक लेख से उद्धृत {डॉ० प्रेमनारायण टंडन द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य} पृ०268

जैसे ही मनुष्य नेता बन जाता है तो उसे समय का अभाव हो जाता है। उस से मिलना मुश्किल हो जाता है। बिना पूर्व समय निर्धारित किए आप मिलना चाहेंगे तो निराशा ही हाथ लगेगी। नेता व्यस्त होते हुए भी अपने काम के आदमियों से तुरंत मिल लेता है। वैसे यदि उस का बाल-साथी भी मिलने जाय तो उस का व्यक्तिगत सचिव स्पष्ट रूप से असमर्थता प्रकट कर देगा -

धीरे बोलो शान्त रहो जी, काम काज में खलल पड़ेगा
व्यस्त देश के कर्णधार हैं
नेता की खातिरदारी में, लालाजी की कार व्यस्त है
व्यस्त मिनिस्टर, व्यस्त गवर्नर
व्यस्त कलक्टर की कोठी के चपरासी का कारबार है
उद्घाटन, भाषण, अभिभाषण अधिवेशन, सेशन, देशाटन
डेपुटेशन, प्लान, कमीशन, उपचुनाव का हरदम सीज़न
सद्भावना मण्डली-मण्डल, चलते, फिरते दण्ड-कमण्डल
इधर बुलाना उधर बुलाना, आपस में है खींचा तना
अमरीका से ट्रंक काल है, लन्दन से आ रहा तार है
व्यस्त देश के कर्णधार हैं।[1] ‖हरिनारायण विद्रोही‖

कभी कभी व्यंग्यकार व्याजस्तुति का सहारा लेता है। उदाहरण :-

ना कहना जिसे न आता हो
हाँ कहने में शरमाता हो
आगे बढ़ने को कह करके
जो खुद पीछे हट जाता हो

---

1. प्रगतिशील कविता में व्यंग्य" - डॉ. रणजीत - पृ.352

मतलब पर दांत दिखाता हो
लेकिन पीछे गुर्राता हो
हर मसले को टकारता हो
नोटों से, वोटों, चोटों से
जो अपनी नैया हो खेता
हम उसको कहते हैं नेता ।। [गोपालप्रसाद व्यास]

पिछले सात दशकों में नेता तथा मंत्री को लक्ष्य बनाकर प्रचुर मात्रा में व्यंग्य का सृजन हुआ जो वस्तुतः मार्मिक था । यही नहीं नेता वर्ग जिन माध्यमों से अपनी नेतागीरी कायम रखता है उनपर भी व्यंग्यकारों की दृष्टि गई । आलोच्यकाल में भाषण देने का रोग देश में बुरी तरह फैल गया । वस्तुतः भाषण देना एक कला है किन्तु इसका दुरुपयोग नेताओं द्वारा भोली भाली जनता को मूर्ख बनाने केलिए किया जाने लगा ।

भाषण
[नेता का]
पान करो,
अंगूर के रस का पौष्टिक
ताज़गी देने वाला
महंगाई में दूसरा पेय नहीं
चावल, दाल,आटा,
कीमत सभी की बढ रही है -
रेडियो समाचार पत्रों और सभाओं में

....

1. रंग, जंग और व्यंग्य - गोपालप्रसाद व्यास - पृ.141

मुफ्त में पी लिया करो
पंचवर्षीय योजना में
भुखमरी निवारण का
यह एक साधन है[1]। [मृत्युंजय शाह देव]

कभी कभी व्यंग्यकार का आक्रोश इतना तीव्र हो जाता है कि वह क्रोध का रूप धारण कर लेता है। वह व्यंग्य तीक्ष्ण हो जाता है -

जो गलियों में डोले वो बच्चा गधा है
जो कोठे पे बोले वो सच्चा गधा है
जो माइके पे चीखे वो असली गधा है[2]।

चंदा चयन भी समाज में व्याप्त एक रोग है। अनेक कार्यों केलिए लोग चन्दा जमा करते हैं तथा उसे पचा जाते हैं। सुरक्षा-कोष के नाम से, संस्थाओं के नाम से अथवा अन्य कारण बताकर लोग चंदा एकत्रित करते हैं और फिर उसे निजी कार्य में उपयोग करते हैं। व्यंग्यकार ने इस असामाजिक प्रवृत्ति पर दृष्टिपात किया -

बातों का धन धन्धा प्यारा
"चन्दा" बन्दा रहे हमारा
कोठी कार दिलाने वाला
खुरचन खीर खिलानेवाला
घर भर को हरषाने वाला
भरता रहे रोज भण्डारा
"चन्दा" बन्दा रहे हमारा

---

1. हिन्दी की लोकप्रिय हास्यकविताएँ - सं.राबिनशा पुष्प - पृ.53
2. इधर भी गधे हे - उधर भी गधे हैं - ओमप्रकाश आदित्य - पृ.11

जन सेवा की जान रही है
नोट-पोट की खान यही है
संस्था रूप दुकान यही है
हथकण्डों का पाश पसारा
"चन्दा" बन्दा रहे हमारा[1] । {डॉ॰ हरिशंकर शर्मा}

शहरी संस्कृति भी व्यंग्यकारों के व्यंग्य बाणों की शिकार नहीं है । कृत्रिम व्यवहार आधुनिक सभ्यता का मूल भाव है -

होटल में, बागों में
बेमानी हंसते हैं
कैसे बेढंगे हैं गलियों में
बन ठन कर चलते हैं, गाते हैं
कमरे में नंगे हैं
सिन्दूर की गोल गोल बिन्दी से भोले हैं
x x x
बाहर से स्वस्थ सुखी
भीतर से बहुत दु:खी
पाण्डु रोगी से पीले हैं ।
x x x
रूप दृश्यों से, चित्रों से
किन्तु खण्ड बिम्बों से
परिचित से लगते हैं[2] ।

1• हिन्दी व्यंग्य विनोद - सं॰गोपालप्रसाद व्यास - पृ॰255
2• गीत - सं॰दिनेश सक्सेना, प्र॰कु॰स्नेही, पृ॰84

भूपेन्द्र कुमार स्नेही के "जीवन को झटका देती है", मौखिक चिन्तन की छलनाएं, बालस्वरूप राही की दृष्टि में आधुनिक सभ्यता में हर महकदार फूल बंदी है, मुक्त स्पात है, जहां मैं हूं"। रामानंद दोषी की दृष्टि में और घुटन ऐसी की जैसे कसमसाए खंडहरों में बावडी का बन्द पानी"। वीरेन्द्र मिश्र का कहना है "सतही सामाजिकता के मंच भरे इन चाय घरों का पात्र नहीं हूं मैं। पर टूटे मूल्यों के कोलाहल में यह सच है दर्शक मात्र नहीं हूं मैं"। और शेरजंग गर्ग की दृष्टि में "केवल औपचारिकता बांहों में कसकते हैं। हंसहंस कर रोते हैं। रो रोकर हंसते हैं"

जीवन के बदलते मूल्यों के संदर्भ में शहरी जीवन पर एक व्यंग्य है -

खुले आम सैकड़ों द्रौपदियों का
वस्त्रापहरण हो रहा है,।
कितने ही वेदव्यास पूज्य शासन के
चमत्कार गीत लिखने में नियुक्त हैं
वही पत्र सम्पादक ही सफल शिल्पी है
जो मूर्ख को साधु और साधु को मूर्ख
साबित करने का इलम जानता है
वहां मुस्कुराहट में व्यंग्य भरा है
मैत्री में अणुबम छिपा है[1]।

इस पौराणिक प्रतीक के माध्यम से आधुनिक समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अराजकता पर व्यंग्य किया गया है। आज की रुचि कितनी विकृत हो गयी इस पर एक व्यंग्य है -

---

1· प्रतिमान - सं· श्यामसुन्दर घोष - पृ·23

एक दिन मेरा मित्र पा गया लाटरी का टिकट
यानी मंत्री का सचिव पद
उसके चश्मे का शीशा अब बदलता है रंग
दिन में कई बार ।
अब वह जानने लगा है ब्लेकमनी का मजेदार राज
पिछले दरवाज़े, प्राफिट और शेयर

x x x

ड्राईंग रूम में बुद्ध, ईसा और गांधी की मूर्तियां सेल्फ
सेल्फ में बेपढी सुन्दर छपी पुस्तकें
उसे पसंद हैं तमाम बिलायती चीज़ें
भाषा, भूषा, निडर, शिष्टाचार और सूक्तियां
क्लब की शाम, कांकटेल पार्टियां।[1]

व्यंग्यकार की दृष्टि इस प्रकार सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में प्रत्येक विकृति पर जाती है एवं वह उन्हें लक्ष्य बनाकर अपना शर-सन्धान करता है । व्यंग्य की महत्त्वपूर्ण सीढियों के विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि 1930 तक जितने व्यंग्यकार थे वे सब दो टूक कहना चाहते हैं । आज उस की दृष्टि सूक्ष्मतर हो गई है । उस का क्षेत्र व्यापक हो गया है । उनका व्यंग्य आदिकालीन साहित्य से अधिक प्रभाव कारी हो गया है ।

---

1. प्रतिमान - सं॰ श्यामसुन्दर घोष - पृ॰80

आदिकाल से ही हिन्दी काव्य में व्यंग्य का अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा । शनै: शनै: उस का विकास होता ही गया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का समय हिन्दी कविता में व्यंग्य का पुष्कल काल रहा । भारतेन्दु युग में प्रथम बार हिन्दी काव्य में सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना पूर्ण विचारों का समावेश हुआ है । इस कविता का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा जिसके फलस्वरूप सामाजिक कुरीतियों व रूढ़ियों की आलोचना और विरोध से पूर्ण व्यंग्य कविताओं की रचना होने लगी । भारतेन्दु तथा उनके युग के कवियों ने मदिरा पीनेवालों, आलसियों, खुशामदों तथा हिंसा के समर्थकों पर प्रबल व्यंग्यात्मक प्रहार किया है । अपनी व्यंग्य कविताओं के द्वारा इन कविगणों ने धर्म के नाम पर होनेवाले ढोंग की पोल खोल दी ।

समाज सुधार को लक्ष्य कर के मानव चरित्र की दुर्बलताओं की आक्षेपात्मक आलोचना तत्कालीन हिन्दी कविता में होने लगी । सुधारवादी आन्दोलन में भारतेन्दु की व्यंग्य कविताओं का महती योगदान रहा है । "भारत वीरत्व", विजय-वैजयन्ती", सुमनांजली जैसे काव्यसंग्रहों की राष्ट्रीय कविताओं में यत्र-यत्र व्यंग्य की झलक है तो "बन्दर सभा", "बकरी का विलाप" जैसी आपकी रचनाएं हास्य-व्यंग्य प्रधान कृतियां हैं । व्यंग्य रचनाओं के द्वारा आपने सामाजिक कुरीतियों, रूढियों और बुराइयों के विध्वंस केलिए व्यंग्यात्मक स्वर मुखरित किया । हास्य - व्यंग्य द्वारा आपने समाज के पाखण्डों, आडंबर और अंग्रेज़-बाबुओं की खूब खिल्ली भी उड़ायी है ।

सामाजिक कुरीतियोंके विरुद्ध आवाज़ उठाने में भारतेन्दु मण्डल के कवियों द्वारा प्रयुक्त व्यंग्य रूपी सशक्त हथियार का प्रयोग द्विवेदी युगीन कविता में भी खूब दृष्टिगोचर होता है । भारतेन्दु काल से अधिक

द्विवेदी युग की सामाजिक राजनैतिक चेतना तीव्र हो चली थी । तदनुरूप द्विवेदी युगीन कविता में सामाजिक - राजनैतिक चेतना का स्वर अधिक मुखरित हुआ है । नवीन शिक्षा के प्रचार प्रसार एवं वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रभाव से इस युग में प्राचीनता के प्रति विद्रोह का स्वर बुलन्द हुआ । इस कारण समाज में रूढिवादिता एवं गली-सड़ी परंपराओं के स्थान पर मानवता के उच्चादर्शों के स्थापना को बल प्राप्त हुआ । बुद्धिवाद की प्रमुखता के कारण इस युग में अवतारवाद जैसी धार्मिक भावनाओं तथा अन्य अन्धविश्वासों के प्रति विद्रोह दिखाई पड़ा । यह प्रभाव युगीन कविता पर भी पडा है । विद्रोह को प्रकट करने में व्यंग्य अतीव सशक्त माध्यम निकला तो इन कवियों ने अपनी कविता में हास्य-व्यंग्य का खूब प्रयोग किया। द्विवेदीयुगीन कविगणों ने अपनी कविताओं में सामाजिक अत्याचार एवं धार्मिक असहिष्णुता की बड़ी कड़ी व्यंग्यात्मक आलोचना प्रस्तुत की है । अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", मैथिलीशरण गुप्त जी, रूपनारायण पांडे जैसे कवियों की कविताओं में यत्र-तत्र व्यंग्य की अनुपम छटा दर्शनीय है ।

समग्रत: विचार करने पर ज्ञात होगा कि भारतेन्दु ने आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य का सफल प्रयोग किया था, उनके युग के कवियों द्वारा यह स्वीकृत किया गया । द्विवेदी युग में भी व्यंग्य को प्रबल प्रश्रय प्राप्त हुआ तथा हिन्दी कविता में व्यंग्य ने अपना जबरदस्त प्रभाव डाला । सचमुच भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन कविगणों ने हिन्दी कविता में व्यंग्य की मज़बूत नींव खडी कर दी थीं जिस पर आगे के कवि व्यंग्य की महान् अट्टालिकाएं खड़ी करने में समर्थ निकले ।

...

पंचम अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य

बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों में हिन्दी में अनेक प्रबन्ध काव्य विरचित हुए । लगभग इसी काल में मुक्तक काव्यों की प्रगति हुई और उसमें व्यंग्य के प्रति सहज स्वीकार्य भाव अपेक्षा कृत अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । इस अवधि के सर्वाधिक महत्वपूर्ण महाकाव्यों में "प्रिय-प्रवास", "साकेत", "कामायनी" एवं कुरुक्षेत्र है । श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्तजी, माखनलाल चतुर्वेदी, आदि कवियों के मुक्तकों में तथा छायावादी कवियों की कविताओं में, प्रगतिवादी काव्यधारा में व्यंग्य अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ उपलब्ध होता है । इसी प्रकार दिनकर, बच्चन, नवीन आदि की कविताओं में तथा अज्ञेय तारसप्तक के कवियों की प्रयोगवादी रचनाओं में आनेवाला व्यंग्य अपने प्रभाव मार्मिकता एवं प्रहारधर्मिता के कारण उल्लेखनीय हैं ।

प्रबन्ध काव्यों में व्यंग्य

महाकाव्यों में व्यंग्य :-

प्रबन्धकाव्य पद्यबद्ध एवं सर्गबद्ध कथात्मक काव्य को कहते हैं । यह आवश्यक नहीं है कि सभी प्रबन्ध काव्य सर्गों एवं अध्यायों में विभक्त हो । लेकिन प्रबन्धकाव्य की सब से बडी विशेषता यह है कि उनमें मानवजीवन का पूर्ण दृश्य होता है, घटनाओं की परस्पर सम्बन्ध-शृंखला होती है एवं संपूर्ण घटनाओं का क्रम अत्यन्त स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी होता है । इसके अतिरिक्त एक बात और स्वीकार की गयी है कि प्रबन्ध काव्य में नाना भावों का रसात्मक अनुभव करानेवाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए । प्रबन्ध काव्य की अन्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

(1) उसका उद्देश्य प्रधान होना अर्थात् राष्ट्रप्रेम, जातीय भावना, धर्मप्रेम या आदर्श जीवन की प्रेरणा देने वाला होना एवं

(2) बौद्धिक ऊंचाई, भावों की गंभीरता एवं व्यापकता से युक्त होना भी है । साथ साथ उसका दृष्टिकोण एकांकी या संकीर्ण नहीं होता । प्रबन्ध काव्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - महाकाव्य तथा खण्डकाव्य ।

उस प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है जिसमें "महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा, गुण, गांभीर्य और महत्व, महाकार्य और जीवन का समग्र चित्रण, सुसंघटित जीवंत कथानक, महत्वपूर्ण नायक तथा अन्य पात्र, गरिमामयी उदात्त शैली, तीव्र प्रभावान्वित और गंभीर रस व्यंजना तथा अनवरुद्ध जीवनी शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता[1]"

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - भाग-1, पृ.579

जैसे गुण मौजूद रहते हैं । 1947 के पहले हिन्दी में कई महत्त्वपूर्ण महाकाव्यों का प्रणयन हुआ । जैसे प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी एवं कुरुक्षेत्र । इसके अतिरिक्त - रामचरित चिंतामणी - रामचरित उपाध्याय सन् 1920

नूरजहाँ	- गुरुभक्तसिंह भक्त	सन्	1935
सिद्धार्थ	- अनूपशर्मा	सन्	1937
श्रीरामचन्द्रोदय काव्य	- रामनाथ ज्योतिषी	सन्	1937
श्रीकृष्णचरित मानस	- प्रद्युम्न दुगा	सन्	1941
कृष्णायन	- द्वारिका प्रसाद मिश्र	सन्	1943
आर्यावर्त्त	- मोहनलाल महतो	सन्	1943
जौहर	- श्यामनारायणपाण्डेय	सन्	1945
साकेत सन्त	- बलदेवप्रसाद मिश्र	सन्	1946

आदि रचनाएं - 1920 से लेकर 1946 की अवधि में हुई । किन्तु महाकाव्य के नियमों के पालन करने वालों में केवल प्रियप्रवास, साकेत एवं कामायनी का नाम आता है । तदनंतर आधुनिक संवेदना को वहन करने की दृष्टि से इस युग का एक महत्त्वपूर्ण काव्य है "कुरुक्षेत्र" । कुरुक्षेत्र की मूलभूत संवेदना अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है, इसलिए उसके कई प्रसंगों में व्यंग्य एवं विडम्बना को उभारने तथा व्यंग्य को प्रहार के अस्त्र के रूप में प्रयोग की तत्परता दिखाई देती है ।

इन महाकाव्यों में व्यंग्य के अल्पमात्र में होने का सब से बड़ा कारण यह है कि महाकाव्यकार "केवल निजी व्यक्तिगत भावनाओं में लीन न रहकर बाह्यजगत के साथ रागात्मक संबन्ध स्थापित करता हुआ दिखाई देता है[1] । इतना ही नहीं, काव्य संबन्धी मान्यताओं के अनुसार

---

1. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - डा.गोविन्दराम शर्मा-पृ.457

महाकाव्य में व्यंग्य के प्रयोग की गुंजाइश इसलिए भी कम है, क्योंकि "वह कवि के निजी विचारों तथा भावनाओं को न अपनाकर जातीय भावनाओं और आदर्शों को प्रधानता देता है। महाकाव्य में कोई इतिहास प्रसिद्ध कथानक होता है। उस का नायक कोई लब्धप्रतिष्ठ महान व्यक्ति होता है। वह एक व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं, अपितु जाति या समाज के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आता है। महाकाव्य का विषय महान तथा व्यापक होता है और उसके आधार पर जीवन का सर्वांगीण चित्र अंकित किया जाता है[1]। काव्यसिद्धान्त के अनुसार प्रबन्ध काव्यों में रसतत्त्व की मुख्यता है इसलिए उनमें हास्य का पुट स्वीकार्य होता है और व्यंग्य का अवसर विरले ही होता है। तथापि हास्य व्यंग्य की सीमा में कतिपय विशिष्ट प्रसंगों में पहुंच जाता है।

व्यंग्य में मानवीय दुर्बलताओं एवं दुःखों का आकलन करते हुए उनपर प्रहार किया जाता है व अनुभूति भी व्यक्त की जाती है, जबकि महाकाव्य की पहली शर्त यह है कि उसका नायक महान तथा सबकी श्रद्धा का पात्र होना चाहिए। महाकाव्य में आदर्शों, सिद्धांतों, बड़प्पन, धीरोदात्तता की प्रतिष्ठा की जाती है जबकि व्यंग्य में इन गुणों का परीक्षण किया जाना भी आवश्यक है। डॉ॰ गोविन्द शर्मा का मंतव्य समीचीन लगता है "वर्तमान वैज्ञानिक युग की जीवन के प्रति बुद्धिवादी दृष्टि भी महाकाव्य की सृष्टि के अनुरूप दिखाई नहीं देती। पुरातन आदर्शों, जीवनमूल्यों और विश्वासों के प्रति वर्तमान युग की आस्था नहीं रही जो कि आदर्शोन्मुख महाकाव्य केलिए आवश्यक समझी जाती है। आजका बुद्धिजीवी साहित्यकार भी जीवन के भौतिक सत्य के उद्घाटन में ही अधिक प्रयत्न शील है, जीवन के अन्तस्तल में निगूढ मनोरम शाश्वत सत्य को प्रकाश में लाने की क्षमता उसमें बहुत कम दिखाई देती है।

1॰ हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - डॉ॰ गोविन्दरामशर्मा - पृ॰28

इस क्षमता के अभाव में उसकी लेखनी से महाकाव्य के निर्माण की आशा नहीं की जा सकती। इस कथन से दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथमत: यह कि महाकाव्य में पुरातन आदर्शों, जीवन मूल्यों और विश्वासों के प्रति आस्था होती है, किन्तु जीवन के भौतिक सत्य के उद्घाटन की प्रवृत्ति प्राय: नहीं होती, द्वितीयत: आज का युग भौतिक सत्य के उद्घाटन का युग है तथा वर्तमान वैज्ञानिक युग एवं उनकी बुद्धिवादी दृष्टि महाकाव्य की सृष्टि के सर्वथा प्रतिकूल है। आधुनिक काव्य में मानव-संबन्धों का उदात्त चित्रण करनेवाली प्रेम, विश्वास एवं आस्था की वे इकाइयां नहीं है जो महाकाव्यों की रचना केलिए आवश्यक हैं। नव काव्य में मानव-सम्बन्धों को व्यंग्य, रोष एवं चिढ की भाषा में भी अभिव्यक्त किया गया है।

"प्रियप्रवास" का प्रारंभ गाय चराते हुए कृष्ण द्वारा ब्रजजनों को आनन्द प्रदान करने की स्थिति से होता है। एक दिन मथुरा से राजा कंस का आमंत्रण पाकर ब्रजवासियों की इच्छा के प्रतिकूल कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं। वहाँ कंस का वध करके कृष्ण शासन संभाल लेते हैं एवं दुष्टों के दमन में लग जाते हैं। इस प्रकार कृष्ण स्वयं ब्रज न लौटकर ब्रजवासियों को सांत्वना देने केलिए उद्धव को भेजते हैं। उद्धव ब्रजवासियों के दु:ख से द्रवित होकर ब्रजधूली सिर पर धारण करते हुए मथुरा लौट जाते हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में "हरिऔध" ने संस्कृत छंदों के नए नए प्रयोगों से महाकाव्योचित गरिमा की सृष्टि करने का यत्न किया है। प्रस्तुत महाकाव्य में जिस तरह हमने व्यंग्य की सीमाएं बांधी है उक्त सीमा के दायरे में व्यंग्य केलिए कोई उदाहरण मौजूद नहीं है। संभवत: इसका कारण यह भी होगा कि "प्रियप्रवास" के कवि का प्रयोजन प्रेम की पीडा एवं आस्था को व्यक्त करना ही रहा होगा एवं उसके नायक व नायिका पर किसी प्रकार का व्यंग्य बाण चलाया जाना भी तत्कालीन महाकाव्योचित नियमों का उल्लंघन ही होगा।

1· हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - डॉ·गोविन्दरामशर्मा - पृ·29

प्रियप्रवास की तुलना में मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" {1932} के कतिपय प्रसंगों में व्यंग्य की प्रहारधर्मिता एवं आक्रमण शीलता निश्चय ही उपलब्ध है। वाद् संघर्ष एवं तर्कयुद्ध करते समय "साकेत" के कई स्थलों पर व्यंग्य का प्रयोग किया गया है। लंका पर राम के आक्रमण के समय रावण एवं राम के मुकाबिला होने पर राम के प्रति रावण का यह व्यंग्य द्रष्टव्य है, जिसमें राम ने "पुण्यजन" कहकर रावण को मन की कुटिलता दूर करने का संकेत किया है -

"धन्य पुण्यजन, धन्य शूरता, तुझ से जन की,
वीर दूर कर कुटिल क्रूरता अपने मन की"।[1]

यहाँ पुण्य एवं शूरता को "धन्य-धन्य" कहने में तिरस्कार या भर्त्सनायुक्त व्यंग्य है, यह आगे की पंक्ति में और भी स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार लक्ष्मण-मेघनाद के बीच हुए वाद्-संघर्ष में मेघनाद को ललकारते हुए लक्ष्मण व्यंग्य का प्रयोग ही करते हैं।

बैठा है क्यों छिपा अनोखे आयुधधारी,
उठ प्रस्तुत हो देख तनिक अब मेरी बारी।।[2]

"अनोखे" आयुधधारी" शब्द में निहित व्यंग्य स्पष्ट है; और अब जब लक्ष्मण कहते हैं -

पूर्ण करूँगा यज्ञ आज तेरी बलि देकर।[3]

---

1. साकेत पृ.482
2. वही पृ.486
3. वही

यहाँ तुझे मार डालूँगा न कहकर तेरी बलि देकर यज्ञ को पूरा करूँगा, कहा गया है । इस प्रकार के व्यंग्य में प्रत्युत्पन्नमति एवं संगति दोनों के दर्शन हो जाते हैं । मेघनाद की यज्ञशाला में लक्ष्मण के पहुँच जाने पर मेघनाद उन्हें देखकर भौचक्का रह जाता है एवं प्रश्न कर बैठता है -

.... कैसे तू आया।
घर का भेदी कौन यहाँ जो तुम को लाया।[1]

इस प्रश्न को सुनकर लक्ष्मण का विषम स्थिति में पड़ जाना स्वाभाविक था, क्योंकि यह सूचना उन्हें विभीषण से प्राप्त हुई थी एवं इस बात को मेघनाद समझ गया था । लक्ष्मण ने इस विषम एवं विकट स्थिति को अपने हाज़िरजवाबी भरे व्यंग्य के प्रयोग से इस संवाद की दिशा ही बदल दी -

अरे काल केलिए कौन पथ खुला नहीं है।
आता अपने आप अन्त तो सभी कहते है ।
मैं हूँ तेरा अतिथि युद्ध का, मुझ़ा ला तू,
कर ले कुछ तो धर्म - "अतिथि देवो भव आ तू[2] ।

लक्ष्मण द्वारा किए जानेवाला व्यंग्य अत्यंत तीखा है जो गुप्तजी की व्यंग्य क्षमता का परिचायक भी है । इस संवाद में तो जैसे व्यंग्य की भरमार ही भरमार है । लक्ष्मण के उक्त कथन के उत्तर में मेघनाद के ये वचन कि -

लक्ष्मण, तुम्हारा अतिथि देख मैं कब डरता हूँ ।
पर कह, क्या यह धर्म नहीं जो मैं करता हूँ।[3]

---

1. साकेत पृ·485

प्रस्तुत पद लक्ष्मण को अधिक व्यंग्य प्रहार करने को प्रेरित करते हैं। लक्ष्मण मेघनाद के धर्म-कर्म पर निम्नांकित व्यंग्य करते हैं -

"कौन धर्म यह शत्रु खड़े हुंकार रहे हैं -
तेरे आयुध यहां दीन पशु मार रहे हैं[1]।

एक ओर तो आयुध द्वारा दीन हीन पशुओं का वध किए जाने पर लक्ष्मण व्यंग्य करते हैं, और दूसरी ओर मेघनाद द्वारा इस धर्म कर्म को वैरि - विजय का साधन कहने पर लक्ष्मण और भी तीखे हो जाते हैं -

"तब है तेरा कपट मात्र यह देवाराधन[2]।

"साकेत के आरंभ में लक्ष्मण ऊर्मिला की जिस रस विलासपूर्ण संयोगावस्था का चित्रण कवि ने किया है उसे आज के शब्दों में मधु यामिनी की अवस्था कह सकते हैं"[3]। लेकिन उसमें संभोग की स्थूलता के स्थान पर श्रृंगार के परिपाक केलिए व्यंग्य विनोद का सहारा लिया गया है। मूर्तिमती उषा "सुवर्ण की सजीव प्रतिमा" कमल सी कोमल कनक लतिका" और "स्वर्ण सुमन" ऊर्मिला को देख विस्मय से शुक मौन हो गया। उसे चुप देखा -

प्रेम से उस प्रेयसी ने तब कहा
रे सुभाषी बोल, चुप क्यों हो रहा[4]।

---

1. साकेत पृ.485
2. वही
3. डॉ.देवराज उपाध्याय - अभिनन्दन ग्रंथ
4. साकेत

इस संदर्भ में लक्ष्मण ने अवसर का पूरा लाभ उठाया -

पार्श्व से सौमित्रि आ पहुँचे तभी,
और बोले - "लो, बता दूँ मैं अभी ।
नाक का मोती अधर की कान्ति से
बीज दाडिम का समझकर भ्रांति से
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है।[1]

यहाँ यह कहने में संकोच नहीं है कि प्रियप्रवास की तुलना में "साकेत" के द्वादश सर्ग के लक्ष्मण - मेघनाद संवाद में व्यंग्य का भी गंभीर रूप विद्यमान है । इस व्यंग्य को प्रहार तथा प्रत्युत्पन्नमति का सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है ।

जयशंकर प्रसाद की कामायनी [सन् 1935] में व्यंग्य के कई उदाहरण सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं । कामायनी में व्यंग्य प्रहार की भाषा में उत्पन्न किया गया है । प्रथम सर्ग में चिन्ता को -

"विश्व वन की व्याली"[2]

कहकर कवि ने चिन्ता पर व्यंग्य किया है । इसी सर्ग में अपने बल-वैभव का डंका बजा बजाकर पूर्णतः नष्ट हो जाने वाले देवताओं केलिए मनु द्वारा कहे गए निम्नांकित शब्द प्रहारात्मक व्यंग्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं -

"अरे अमरता के चमकीले पुतलो ! वे तेरे जयनाद,
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानो दीन विषाद[3] ।।

कामायनी के चिन्ताकुल मनु का व्यंग्य उक्त शब्दों में समाप्त नहीं हो जाता, स्वयं के मर्यादा हीन एवं उच्छृंखल नियंता देवताओं के पतन पर मनु का व्यंग्य कम तीखा नहीं है ।

प्रस्तुत सर्ग में मनु द्वारा आत्मव्यंग्य के रूप में जिस करुणा की सृष्टि हुई है, वह निश्चय ही हिला देने वाली है । देव जाति के स्वर्णिम युग एवं वैभव को नष्ट ध्वस्त कर डालनेवाले प्रलय की याद के उपरांत जब मनु स्वयं पर दृष्टि डालते हैं, तो अपने को जीवित पाने की प्रसन्नता से अधिक ग्लानि ही होती है । अमरता को जर्जरता दंभ मानकर असीम वेदना से छटपटाते हुए मनु ने स्वयं को निम्नांकित आत्मव्यंग्य के माध्यम से छील-छील डाला है ।

आज अमरता का जीवित हूं मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्र मय-सा विष्कंभ ।[1]

क्योंकि भोगविलास में लिप्त देवजाति के सर्वनाश की सत्यकथा कहने का कार्यभार नियति ने इसी "विष्कंभ" पर तो डाला है । नाटक के पहले ही अंक में अधम पात्रमय विष्कंभ की उपस्थिति कितनी वेदनापूरित हो सकती है, इसकी कल्पना सरलता से की जा सकती है -

चिन्ता के अलावा "ईर्ष्या" एवं "संघर्ष" सर्गों में भी व्यंग्य के दर्शन होते हैं । "ईर्ष्या" में मृगया से लौटे हुए मनु पर श्रद्धा द्वारा, मनु में व्याप्त हो गयी हिंसा पर व्यंग्य किया गया है । निरीह पशुओं पर अस्त्र चलाना कहां तक उचित है; मनुष्य को यदि स्वयं को पशु की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करना है तो उसे भवनिधि में सेतु बनाना ही होगा -

---

1. कामायनी (सातवां संस्करण) पृ. 18

अपनी रक्षा करने में जो चल जाय तुम्हारा कहीं अस्त्र;
वह तो कुछ समझ सकी हूँ मैं हिंसक से रक्षा करे शस्त्र ।
पर जो निरीह जी कर भी कुछ उपकारी होने में समर्थ;
वे क्यों, न जियें, उपयोगी बन इसका मैं समझ न सकी अर्थ ।
x x x x x x
पशु से यदि हम कुछ ऊँचे हैं तो भव जलनिधि में बनें सेतु[1] ।

पशु से यदि हम कुछ ऊँचे है जैसी प्रश्नवाचकता ने जिस गहन व्यंग्य की सृष्टि की है, वह युद्धोन्मत्त एवं हिंसक मनोवृत्ति पर एक संवेदनशील प्रहार है ।

"संघर्ष" सर्ग में मनु एवं इडा दोनों ने ही एक दूसरे पर व्यंग्य प्रहार किए हैं । इडा जब मनु का साथ छोड़कर जाने को तत्पर हो जाती है तब मनु ने व्यंग्य से उसे "मायाविनि" का सम्बोधन किया है[2] ।

इसी प्रकार इडा भी मनु पर निम्नांकित व्यंग्य करती है -

"किन्तु आज अपराध हमारा अलग खड़ा है
हाँ में हाँ न मिलाऊँ तो अपराध बड़ा है[3] ।।

इडा द्वारा व्यक्त की गयी यह परवशता, कि उसे प्रजापति मनु की प्रजा होने के नाते मनु की हाँ में हाँ मिलानी ही होगी चाहे अपराध किसी का भी हो, पैने एवं मार्मिक व्यंग्य की सृष्टि करती है ।

---

1. कामायनी - पृ. 146-147
2. वही पृ. 196
3. वही पृ. 197

अतः यह स्पष्ट है कि कामायनी में आक्रमणशील व्यंग्य के कुछ अच्छे उदाहरण मौजूद हैं, चाहे वह व्यंग्य, व्यंग्यकर्ता द्वारा दूसरों पर किया गया हो अथवा स्वयं पर ।

इन महाकाव्यों के बावजूद रामधारी सिंह दिनकर के सप्त सर्ग बद्ध महाकाव्य "कुरुक्षेत्र [1946]" के प्रसंगों में करुण एवं आक्रोशयुक्त, लेकिन वेहास्य के उदाहरण मिलते हैं । महाभारत के युधिष्ठिर-भीम-संवाद पर आधारित इस काव्य में कवि ने युद्ध की समस्या पर मार्मिक भाव तथा विचार व्यक्त किए हैं । संभवतः 1941 में हुए द्वितीय विश्वयुद्ध की भयच्छाया ने ही कवि को "कुरुक्षेत्र" के माध्यम से युद्ध की विभीषिका पर प्रकाश डालने केलिए प्रेरित किया हो । इस रचना में युद्ध के औचित्य अनौचित्य पर कवि का शंकाकुल दिल मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोलता है । महाभारत की महान् कथा भूमि का आश्रय ले कर जब कवि ऐसे युद्ध की समस्या पर विचार करता है, जिस में पराजित तो रोष रहता ही नहीं, अपनी विजय को देखने केलिए विजेता केलिए भी हर्ष नाम की कोई वस्तु शायद नहीं ही रहती । महाभारत युद्ध की समाप्ति पर मृतभूमि में उठती हुई यह आवाज़ जीवन-व्यंग्य करती है -

देख लो बाहर महा सुनसान है,
सालना जिनका हृदय में, लोग वे सब जा चुके ।
x x x x
मर गए जो, वे नहीं सुनते इसे
हर्ष का स्वर जीवितों का व्यंग्य है ।[1]

---

1. कुरुक्षेत्र [दूसरा संस्करण] पृ. 4

भीष्म पर विजय प्राप्ति की पीडा एवं राजसुख को लोहू-भरे कीच का कलम कहकर धर्मराज युधिष्ठर इस पीडा की अत्यंत करुण व्यंग्याभिव्यक्ति करते हैं -

विजय कराल नागिन-सी डसती है मुझे
इस से न जूझने को मेरे पास बल है,
ग्रहण करूं मैं कैसे। बार बार सोचता हूं
राजसुख लोहू भरी कीच का कमल है ।[1]

युद्ध के बाद प्राप्त विजय को निस्सार एवं व्यंग्यमय बताकर भी कवि शांति को पूर्णतः स्वीकृत सत्य नहीं मान लेता । वह शांति की आलोचना भी करता है । ऐसी शांति जो अन्याय एवं अनीति पर टिकी हो, मगर क्रांति केलिए बाधक बनकर लोगों को पंगु बना रही हो, ऐसी शांति पर व्यंग्य का स्वर इस काव्य में अत्यंत तीखा है -

"समर निंद्य है, धर्मराज पर कहो शांति वह क्या है।
जो अनीति पर स्थिर होकर भी बनी हुई सरला है।
सुख समृद्धि का विपुल कोष संचित कर कल, बल, छल से,
किसी क्षुधित का ग्रास छीन, धन लूट किसी निर्बल से,
सब समेट, प्रहरी बिठलाकर कहती, "कुछ मत बोलो,
शांति सुधा बह रही, न इस में गरल क्रांति का घोलो[2] ।

1· कुरुक्षेत्र [दूसरा संस्करण] पृ·1।
2· वही पृ·2।

इसके मुताबिक अनीति पर चलने वाली एवं क्रांति को टालने वाली तथाकथित शांति पर व्यंग्य के साथ साथ इस काव्य में सत्ताधारियों की अनीति पद्धति, समाज के अन्यायी, अविचारी सूत्रधारों एवं सत्य बोलनेवालों द्वारा भुगती जाने वाली मृत्युयातना पर भी व्यंग्य है -

"जहाँ पालते हों अनीति-पद्धति को सत्ताधारी
जहाँ सूत्रधर हो समाज के, अन्यायी, अविचारी
नीतियुक्त प्रस्ताव संधि के जहाँ न आदर पायें
जहाँ सत्य कहने वालों के शीश उतारे जायें।[1]

इस प्रकार महाकाव्यों की सुदीर्घ परंपरा में "साकेत" "कामायनी" एवं "कुरुक्षेत्र" में व्यंग्य के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण मौजूद हैं। "साकेत" में संवाद के ज़रिए व्यक्तिगत हाज़िरजवाबी में लपेटकर व्यंग्य किए जाने के उदाहरण हैं; वहाँ "कुरुक्षेत्र" में अत्यंत व्यापक संदर्भों एवं समस्याओं को लेकर युद्ध एवं शांति की ज्वलंत समस्या एवं दोनों की विसंगतियों को भी व्यंग्य के माध्यम से दिखाया गया है। वैसे ही "कामायनी" आत्मव्यंग्य के उदाहरणों से संपुष्ट है। महाकाव्योचित सीमाओं को कहीं कहीं पार करके कविगण व्यंग्य के विविध रूप प्रकट करने में भी सफल हुए। उक्त प्रकार व्यंग्यों में उपदेशात्मकता का अभाव कुरुक्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र प्राप्त होता है। कहीं कहीं आक्रमण शील व्यंग्य फीका भी हो गया है। निष्कर्ष यह है कि महाकाव्यों में प्रिय प्रवास के अलावा अन्यत्र सभी में व्यंग्य का प्रयोग महत्वपूर्ण तरीके में मौजूद है।

---

1. कुरुक्षेत्र - पृ.22

खण्डकाव्यों में व्यंग्य -

प्रबन्धकाव्य का दूसरा रूप है खण्डकाव्य, जिसे लघु काव्य की संज्ञा भी दी जा सकती है । कथा-प्रबन्ध के लक्षणों से पूर्णत: समन्वित होते हुए भी जिन काव्य रचनाओं को महाकाव्य नहीं कहा जा सकता, उन्हें खण्डकाव्य कहे जाने की पूर्ण संभावना रहती है । महाकाव्य में जहां विभिन्न रसों एवं छंदों का मेल होताहै, वहां खण्डकाव्य में यह सब अनिवार्य नहीं है । "खण्डकाव्य एक ऐसा पद्य बद्ध कथाकाव्य है, जिसके कथानक में इस प्रकार की एकात्मक अन्विति हो कि उसमें अप्रासंगिक कथाएं सामान्यतया अन्तर्मुक्त न हो सकें, कथा में एकांगिता हो तथा कथाविन्यास में क्रम आरंभ, विकास चरम सीमा एवं निश्चित उद्देश्य में परिणत हो । कथा की एकांगिता के परिणामस्वरूप खण्डकाव्य के आकार में लघुता स्वाभाविक है और साथ ही उद्देश्य की महाकाव्य जैसी महनीयता संभव नहीं है[1] ।

अत: महाकाव्य को खण्डकाव्य से भिन्न कुछ इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि जो अन्तर उपन्यास और कहानी में होता है, प्राय: वही अन्तर महाकाव्य एवं खण्डकाव्य में है । महाकाव्य में जीवन के विविध पक्षों को लिया जाता है, जब कि खण्डकाव्य में एक ही पक्ष की ओर दृष्टि केन्द्रित रहती है । खण्डकाव्य का कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक, कल्पित एवं प्रतीकात्मक हो सकता है । महाकाव्य की भांति विविध प्रकार के छन्दों के प्रयोग की अनिवार्यता खण्डकाव्य में नहीं होती एवं सपूर्ण काव्य की रचना एक छंद में भी की जा सकती है ।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - भाग-1, पृ.248

हिन्दी में कई महत्वपूर्ण खण्डकाव्यों की रचना हुई । मैथिली शरणगुप्त ने "जयद्रथ वध, पंचवटी आदि अनेक रामनरेश त्रिपाठी ने "मिलन" "पथिक" एवं "स्वप्न" रत्नाकर ने "गंगावतरण" एवं उद्धवशतक, सियाराम शरण गुप्त ने "आत्मोत्सर्ग" एवं "उन्मुक्त" जैसे श्रेष्ठ खण्डकाव्यों की रचना की । छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद ने "प्रेम पथिक", पंत ने "ग्रंथी" एवं निराला ने तुलसीदास जैसे खण्डकाव्य लिखे । इन खण्डकाव्यों में प्राय: रामायण, महाभारत, अन्य पुराण एवं बौद्ध साहित्य के कथानकों को, मध्यकालीन भारतीय इतिहास की वीरता एवं आत्मत्याग-पूर्ण तथा आधुनिक देशभक्ति के भावों से उद्‌बुद्ध करने वाली कल्पित कथाओं एवं कहीं कहीं वास्तविकताओं को भी काव्य-रचना केलिए चुना गया है ।

खण्डकाव्य की रचना में भी मूलत: महान एवं उदात्त चरित्रों की सृष्टि करने की प्रवृत्ति कार्य करती रही है, इसलिए जहां तक व्यंग्य का प्रश्न है ये खण्डकाव्य भी भली भांति समृद्ध नहीं है । इस अर्थ में "उद्धव शतक" एवं "तुलसीदास" में ही हमें व्यंग्य के उदाहरण उपलब्ध होते हैं ।

उद्धवशतक में कृष्ण के गोकुल छोड़कर मथुरा चले जाने पर उनकी विरह कहानी के परिप्रेक्ष्य में कई स्थानों में व्यंग्यात्मक उक्तियों द्वारा भी व्यक्त किया गया है । विशेष रूप से उद्धव-गोपी संवाद में गोपियों ने अपने व्यंग्य बाणों से उद्धव के मन-प्राण एवं तर्कों को पूर्णत: बींध-बींधकर छिन्न भिन्न कर दिया है । व्यंग्य की दृष्टि से "उद्धवशतक" की विशिष्टता दर्शाने केलिए उसका एक छंद ही पर्याप्त होगा । उद्धव द्वारा गोपियों को ज्ञान की गरिमा से संपन्न प्रवचन दिए जाने पर गोपियां उद्धव के ज्ञानोपदेश की सार्थकता एवं योग की महत्ता की खिल्ली ही नहीं उड़ातीं, तीखा एवं पैना व्यंग्य भी करती है -

धरि राखो ज्ञान गुन गौरव गुमान गोई
गोपिनि कौं आवत न भावत भड़ंगा हैं ।
कहैं रत्नाकर करत न टाँय टाँय वृथा
सुनत न कोऊ इहाँ यह मुहचंगा है ।
और हू उपाय केते सहज सुढंग ऊधौ
साँस रोकिबैं कौं कहा जोग ही कुढंग है ।
कुटिल कटारी है अटारी है उतंग अति
जमुना तरंग है तिहारो सतसंग है ।।[1]

कुटिल कटारी से कट मरने, ऊँची अटारी से कूद पड़ने एवं जमुना तरंग में लीन हो जाने के साथ साथ मृत्यु प्राप्ति का सर्वाधिक सरल उपाय "तिहारे सतसंग" बताकर गोपियों ने उद्धव की ज्ञान गरिमा को तो आड़े हाथों लिया ही है, उनकी अवांछित उपस्थिति को "सतसंग" में की संज्ञा दे कर व्यंग्यमात्र का भरपूर प्रयोग किया है । उद्धव शतक में गोपियों ने इस प्रकार के व्यंग्य बाण केवल उद्धव पर ही बरसाये हैं, कृष्ण के संबन्ध में कुछ भी कहते हुए गोपियाँ केवल उपालंभ ही दे पाई हैं । व्यंग्य की दृष्टि से खण्डकाव्यों में उद्धवशतक एक अनमोल कृति है ही ।

निराला क्रांतिदर्शी कवि माने जाते हैं, इसलिए उनके खण्डकाव्य "तुलसीदास" (1938) में व्यंग्य के प्रादुर्भाव को आकस्मिक नहीं माना जा सकता । इस व्यंग्य में कटूक्ति एवं प्रहार है बल्कि हास्य व विनोद बिल्कुल विरले हैं । अंततोगत्वा आक्रमण शील एवं दुःख भरे व्यंग्य इनकी कविताओं में प्रायः दृष्टिगोचर है । अपनी पत्नी रत्नावली के पास

---

1. उद्धवशतक - पृ. 67वां पद

तुलसीदास के अनिमंत्रित चले जाने पर रत्नावली द्वारा तुलसीदास का तिरस्कार एवं उन्हें राम का नहीं काम का सुत कहे जाने की स्थिति व्यंग्य के एक श्रेष्ठ उदाहरण के साथ साथ कवि की आधुनिक दृष्टि की परिचायक है -

> धिक् ! आये तुम अनाहूत,
> धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
> राम के नहीं, काम के सुत कहलाए !
> हो बिके जहाँ तुम बिना दाम ।
> वह नहीं और कुछ हाड़ चाम !
> कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए ।[1]

ऐसे तीखे एवं मर्मान्तक व्यंग्य ने लगभग तुलसीदास के जीवन में क्रांति मचा दी थी । निराला ने उक्त स्थल पर सटीक व्यंग्य का प्रयोग करके यह घोषणा भी कर दी है कि व्यंग्य का प्रभाव मानव मन पर कितना तीव्र एवं मर्मस्पर्शी हो सकता है ।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी के महाकाव्यों एवं खण्डकाव्यों में, प्रबन्ध काव्य की स्वीकृत मान्यताओं के अनुशासन के होते हुए भी, श्रेष्ठ व्यंग्य के कई प्रसंग एवं उदाहरण सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं । यह भी बताया जा सकता है कि प्रबन्ध काव्यों में व्यंग्य का सर्वथा अभाव नहीं है ।

---

1. अपरा (तीसरा संस्करण) पृ. 163

मुक्तकों में व्यंग्य -

मुक्तक काव्य वह है जिसमें कथात्मक प्रबन्ध या विषयगत बहुत विस्तृत वर्णन की योजना नहीं होती । स्फुट, प्रबन्धहीन, एवं विशेष प्रकार के भावों व विचारों को वहन करने वाली पद्यबद्ध रचनाओं को अभी तक मुक्तक काव्य के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा रहा है । परंतु निराला ने मनुष्य की तरह कविता की मुक्ति का प्रसंग उठाकर उसे छंदों से मुक्त कर डालने का आग्रह किया । अतः मुक्त छंद को, जो कि अब तक काव्य में उपेक्षित नहीं रहा है अथवा पूर्णतः प्रतिष्ठत हो चुका है, हम मुक्तक काव्य के अन्तर्गत ही मिलायेंगे । मुक्तक काव्य, गीतिकाव्य एवं मुक्त छंद - इन दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है । गीतिकाव्य में गीत, गीतात्मक रचनाएं तथा छंदयुक्त रचनाएं स्थान पाती हैं एवं मुक्त छंदों में उन रचनाओं की गणना की जाती है, जिस में छंद के बन्धनों को तोड़ करके मात्र शब्द-प्रवाह एवं किंचित् लय-तत्त्व की ओर ध्यान दिया गया है एवं छंद, प्रवाह एवं लय के किसी भी प्रकार के पूर्णतः मुक्ति की घोषणा की गई है । इसके बावजूद मुक्तक-काव्य प्रबन्धकाव्य के नियमों से भी मुक्त होता है । उस परम महान् चरित्रों की सृष्टि करने एवं जीवन के उदात्त पक्ष को देखने व विविध रसों की सृष्टि करने जैसा कोई दायित्व नहीं होता । प्रबन्ध काव्य व्यंग्य की दृष्टि से मुक्तक काव्य की तुलना में अपेक्षाकृत कम है ।

भारतेन्दु युग में तो विविध प्रकार की छोटी-मोटी कविताओं में युगीन विडम्बनाओं, नष्ट होते हुए मूल्यों एवं अंग्रेज़ों की शोषण वादी नीतियों को भली-भांति उभारा ही गया । अत्यंत गूढ़ गंभीर एवं वैष्णव माने जाने वाले गुप्त जी ने भारत-भारती के वर्तमान खण्ड को

उसमें निहित व्यंग्य के कारण तत्कालीन विसंगतियों का दर्पण बना दिया था । वैसे ही निराला की "कुकुरमुत्ता" एवं बच्चन का "बंगाल का काल" क्रमशः हास्य व्यंग्य करुण तथा तीक्ष्ण व्यंग्य के लिए उदाहरण है । अतः इस प्रकार की कविताओं में व्यंग्य का भली-भाँति विकास दृष्टिगोचर होता है ।

गीतात्मक एवं छंदयुक्त कविताओं में भारतेन्दु आदि के व्यंग्यों के बावजूद मैथिलीशरण गुप्त की "भारत भारती" का वर्तमान खण्ड व्यंग्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है । इस संदर्भ में तमाम तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक अविचारों को प्रहारात्मक करुणा से युक्त भाषा में सपाट शैली में उद्घाटित किया गया है यह काव्य पूर्णतः गीतात्मक तो कहा नहीं जा सकता, मगर इस में छंद एवं तुकों का निर्वाह कुशलतापूर्व किया गया है । माखनलाल चतुर्वेदी की "कैदी और कोकिला" तथा "जय तुम्हारी जय" रचनाएं गंभीर आक्रोशयुक्त व्यंग्यात्मक गीतों के समीचीन उदाहरणों से भरपूर है । इन दोनों गीतों में अंग्रेज़ी शासन की कूट एवं छल नीतियों पर व्यंग्य है । माखनलाल जी के व्यंग्यगीतों में सहज गीतात्मकता न होकर क्रूरता एवं प्रहार है ।

यही बात नवीन की व्यंग्य कविताओं के सिलसिले में भी बतायी जा सकती है । उनकी "जूठे पत्ते", "पिंजर मुक्ति युक्ति", "परीक्षा के प्रश्न पत्र" जैसी छन्दयुक्त कविताओं में गीतात्मकता एवं तुकों के निर्वाह के मुताबिक इनकी मूल संवेदना इतनी तीव्र क्रूर एवं करुणा से भरपूर है कि उन्हें शुद्ध गीतों की संज्ञा नहीं दी जा सकती ।

छायावादियों में निराला ने गीतात्मक व्यंग्य रचनाएं {मानव जहां बैल घोड़ा है आदि} भी लिखीं, मगर बिल्कुल कम। पंत जी की व्यंग्य कविताओं में छन्दबद्धता तो है, मगर गीतात्मकता नहीं। भगवतीचरण वर्मा छन्दों के समर्थक हैं, मगर गीतात्मकता उनके व्यंग्य में भी नहीं है। तुकों का सफल निर्वाह एवं शब्दों का सटीक चयन होने के कारण भगवतीचरण वर्मा के "वर्मा जी ने खाए आम" एवं वर्माजी ने मारी लात प्रभृति गीतों को सफल व्यंग्य गीत कहा जा सकता है।

बच्चन ने अपने ि कतिपय गीतों में यथा, "मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता" जैसी व्यंग्य पंक्तियों में गीतात्मकता को पूर्णतः सुरक्षित रखा एवं व्यंग्य की धार भी कुंठित नहीं हुई। दिनकर के व्यंग्य में छंदों का निर्वाह एवं प्रयोग है, मगर गीतों जैसी उदात्त, कोमल एवं प्रौ अभिव्यक्ति नहीं है। शिवमंगलसिंह सुमन जी की कविताओं में जो व्यंग्य है उनमें करुणा के पुट के साथ साथ पर्याप्त कोमलता भी मिल जाती है।

भावुक उदात्त एवं पूर्णतः संवेदन शील कवियों ने छन्दयुक्त व्यंग्य तो पूर्णतः सफल लिखे हैं। लेकिन उन कविताओं में यही दोष अक्सर दिखाई कि उन में गीत के गुण किंचित रूप में भी नहीं है।

व्यंग्य की दृष्टि से इसे अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता व्यंग्य क्यों कि कटु सत्य यद्यपि वह अति क्रूरता का पर्याय है तो भी बोल कहने में हिचकता नहीं है एवं कोमलता एवं औपचारिकता केलिए उसमें प्राय अवकाश नहीं होता, अतः व्यंग्यकार से ऐसे गीतों की अपेक्षा की ही नहीं जानी चाहिए। सृजनशील एवं महान रचनाकारों की रचनाओं में व्यंग्य देश काल के शर से बिंधकर आया है। जहां तक प्रस्तुत अध्याय का कार्य है इस सिल सिले में जो अध्ययन किया गया है इस से बताया जा सकता ।

कि इस काल के कवियों द्वारा छन्दयुक्त व्यंग्य लिखे जाने का औचित्य इसलिए भी स्वयं सिद्ध है, क्योंकि इस काल में छन्दों से मुक्त होने की लहर तो आ गई थी, मगर ऐसे बहुत से कवि उस काल में रचनारत थे, जो गीतात्मकता एवं छंदों को कविता केलिए अनिवार्य मानते थे। निष्कर्ष यह है कि इस काल अवधि में भी इतनी सीमायें होतीह हुई भी व्यंग्य पर्याप्त मात्रा में इन कवियों की कविताओं में विद्यमान है।

मुक्तछंद की कविताओं में व्यंग्य की दृष्टि से निराला की "कुकुरमुत्ता" एवं -नए पत्ते" की कविताएं, बच्चन की "बंगाल का काल" नागार्जुन एवं "तारसप्तक" के समस्त कवियों की व्यंग्य कविताओं की गणना की जा सकती है। कुकुरमुत्ता, जिस की रचना छंदमुक्त एवं भाषा के परंपरागत आभिजात्य को तोडकर की गयी थी। कुकुरमुत्ता को दीन हीन सामान्य जन एवं गुलाब को शोषक एवं अभिजात वर्ग का प्रतीक मानते हुए निराला ने प्रचलित भाषागत रूढियों एवं तथाकथित शिष्टता को तिलांजलि देकर नई भाषा गढी एवं सामान्य जन की प्रतिष्ठा केलिए नई सामाजिक भावभूमि भी तैयार की।

कुकुरमुत्ता एक लंबी व्यंग्य कविता है। कुकुरमुत्ता के नवीन संस्करण में विविध संशोधनों के कारण भाषा, ध्वनि, भावादि में काफी व्यतिरेक आ गया है। यह संशोधन-परिमार्जन कहीं गलत मुहावरों को ठीक करने केलिए किया गया है तो कहीं भाषा को सजीव बनाने केलिए, कहीं लय के उचित जोर अनुचित संधान केलिए अर्थ व्यंजना को गहराई देने केलिए और कहीं कहीं अर्थ परिवर्तन केलिए किए गए हैं। जगह जगह में इन परिवर्तनों से लय भंग हो गया है, या सही मुहावरा गलत हो गया है या भाषा की रवानगी की जगह एक सपाट विवरणात्मकता ने जगह ले ली है। जगह जगह इन परिवर्तनों से एक सुघड़ अभिव्यक्ति, स्थिर

जड़ और प्रवाह हीन हो गयी है । उचित या अनुचित दोनों प्रकार के संशोधन-परिवर्तन कभी शब्दों की जगह बदलकर एकाध नया शब्द घटा बढ़ाकर क्रियापद, पूर्वकालिक क्रिया बढ़ाकर शब्दों की वर्तनी में परिवर्तन करके, पर्यायवाचियों के द्वारा या उपसर्ग - पर सर्ग बदलकर किए हैं । कहीं कहीं ये परिवर्तन उर्दू के लहजे या उसकी अप्रचलित मुहावरेदानी को हटाने केलिए भी किए गए हैं ।

कुकुरमुत्ता की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है । एक नवाब ने फारस से कुछ गुलाब मंगाये तथा अपने बगीचे में उगवाए । उनके साथ साथ कुछ देशी पौधों को भी बोया गया । बहुत से नौकर-चाकरों द्वारा उनकी देख-रेख की गई । बाडी में बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जूही, नरगिस, रात की रानी, कमलिनी, गुलमेहंदी, आदि दर्जनों किस्म के फूलों की क्यारियां थी । यहीं पर फारस से मंगाया गया गुलाब भी खिला । इसी गुलाब के पास नाले में एक "कुकुरमुत्ता" खड़ा हुआ अकड़ रहा था । बगीचे के बाहर झोंपडों में नवाब के नौकर डेरा जमाये थे । उन में से एक मालिन की लड़की गोली, राजकुमारी बाहर की सहेली थी । एक दिन दोनों सहेलियां बाग की सैर को गई, जहां गुलाब एवं कुकुरमुत्ता साथ साथ खिले थे । पूछने पर गोली ने बाहर से बताया कि कुकुरमुत्ते का कबाब बहुत ही स्वादिष्ट एवं लज़ीज़ बनता है । दोनों सहेलियों ने कबाब तैयार करके चखा । फिर क्या था ! बाहर ने कबाब की चर्चा नवाब से की एवं नवाब ने हुक्म जारी कर दिया कि कुकुरमुत्ते का कबाब बनाया जाय । माली ने जवाब दिया, "हुजूर, कुकुरमुत्ते अब नहीं रहे हैं बाग में, रहे हैं सिर्फ गुलाब ।" सुनते ही नवाब क्रोध से कांपने लगे एवं फिर हुक्म जारी किया - जहां गुलाब उगाए गए है, वहीं पर कुकुरमुत्ता उगावो । मालिने माफी मांगते हुए उत्तर दिया - हुजूर कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जा सकता ।

---

1. कुकुरमुत्ता (भूमिका में, दूधनाथ सिंह) - निराला - पृ. 19

प्रस्तुत कहानी महत्त्वपूर्ण नहीं मानी जा सकती, लेकिन इसके माध्यम से व्यंग्य का संप्रेषण एवं प्रस्तुतीकरण गजब का हुआ है। इस कविता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष यही है कि कवि ने कुकुरमुत्ता के माध्यम से अभिजात वर्ग, असामान्य जनों पर प्रहारात्मक व्यंग्य करते हुए सामान्य जन के बड़प्पन की अकड़, दंभ, स्वाभिमान एवं उपयोगिता का उन्नयन किया है। नवाब द्वारा माली से की गई "कुकुरमुत्ते" की फरमाइश पर माली का यह उत्तर कि कुकुरमुत्ता उगाए नहीं उगता; एक बड़े सत्य को समर्थन देता है अर्थात् इससे प्रमाणित होता है कि सामान्य या साधारण मनुष्य खुद पैदा होता है।

कुकुरमुत्ते का स्वाभिमान उससे गुलाब केलिए यहाँ तक कहलवा देता है कि

"खून चूसा खाद का तू ने अशिष्ट,[1]
डाल पर इतराता है केपीटलिस्ट"

इसके मुताबिक यह कथन बुर्जुआ, पूंजीवादी, अभिजात वर्गों के प्रति सामान्य व्यक्ति का तर्क बन जाता है। संसार की हर महान कृति अथवा रचना में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से साधारण जन का हाथ एवं योगदान रहता है। इसी तथ्य को कुकुरमुत्ते द्वारा किए गए अपने गुणगान में भी देखा जा सकता है।

नहीं मेरे हाड़, काँटे, काठ या,
नहीं मेरा बदन आठों गाँठ का
रस ही-रस में हो रहा
सफेदी को जहन्नम रोकर कहा।

---

1. कुकुरमुत्ता - निराला (दूसरा संस्करण) पृ. 37

दुनिया में सभी ने मुझी से रस चुराया ।
रस में मैं डूबा उतराया ।
मुझी में गोते लगाए बाल्मीकि व्यास ने
मुझी से पोथे निकाले भास कालिदास ने ।
टुकुर देखा किये मेरे ही किनारे खड़े
हाफ़िज़-रवीन्द्र जैसे विश्व-कवि बड़े बड़े ।
मेरी सूरत के नमूने पीरामिड
मेरा चेला था यूक्लीड ।
रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर
जगन्नाथ, जितने मंदिर सुन्दर
मैं ही सब का जनक
जेवर जैसे कनक ।
हों कुतुबमीनार
ताज, आगरा या फोर्ट चुनार
विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता
मस्जिद, बगदाद, जुम्मा अलबत्ता
सेंट पीटर्स गिरजा हो या घंटाधर
गुम्बदों में गढ़न में मेरी मुहर ।।[1]

प्रस्तुत रचना में निराला ने सामान्य व्यक्ति के प्रतीक "कुकुरमुत्ता" के माध्यम से सभ्यता की विशाल अटारी पर खड़े हुए, किन्तु उसके निर्माता सामान्य जन की महत्ता से अनभिज्ञ समस्त अभिजात वर्ग, पूंजीपतियों, सेठों पर तीखा व्यंग्य किया गया है, इस के बीच बीच में

---

1. कुकुरमुत्ता - निराला [दूसरा संस्करण] पृ. 45-47

हास्य भी है । अतः हास्ययुक्त व्यंग्य केलिए भी यह उदाहरण है । दूधनाथ सिंह के अनुसार इस कविता में "कहीं शब्दों में तान पलटने से, कहीं पंक्तियों को तोड़कर, कहीं वाद्यों या नृत्य भेदों की सूची इकट्ठी कर, कहीं सूदखोरों के ब्याज डूबने को लेकर, कहीं सिर्फ तुकों की ठेठ भिड़ंत से, कहीं नवाब के बाग के वर्णन से कहीं अंग्रेज़ी या उर्दू व फार्सी के शब्दों को डालकर और कहीं लंबी चौड़ी हाँकते हुए कुछ कुछ अशिष्टता की सीमा को छूकर - यह व्यंग्य उत्पन्न किया गया है[1] ।

निराला के इस व्यंग्य संधान में स्पष्टतः उनकी विक्षिप्त चेतना का दर्शन होता है । जवानी का तेवर उतरते ही उनका संयम क्रमशः ह्रासशील होने लगता है । सारे स्वप्नवासी पड़ जाते हैं । कवि हृदय साहित्यिक राजनीतिक एवं सामाजिक संसार से तिरस्कृत होने के कारण अंदर ही अंदर सुलगता रहा जिसका विस्फोट कुकुरमुत्ता जैसे व्यंग्य कविता में हुआ । इस में कवि की सहानुभूति जन सामान्य के प्रति होते हुए भी तटस्थ है । उनके व्यंग्य बौछार से न तो गुलाब ही बचता है और न कुकुरमुत्ता ही । लगता है कि कवि विरोधों के बीच से गुजरकर प्रत्येक वस्तु का उपहास करता हुआ अपने प्रति किए गए समस्त अत्याचारों का बदला लेना चाहता है[2] ।

कुकुरमुत्ता का व्यंग्य चाहे जो भी हो उसकी उपलब्धि अमूल्य है । इस से निराला काव्य धारा में जो ऐतिहासिक मोड़ आता है, वह निस्सन्देह निराला को युग कवि घोषित करता है । कुकुरमुत्ता के रूप में परंपरागत भाषा, संगीत और उपमाएं, शब्द चित्र आदि सब विलीन हो

---

1. कुकुरमुत्ता [दूसरा संस्करण] पृ. 3।
2. क्रांतिकारी कविनिराला - बच्चनसिंह - पृ. 158-159

गए है और एक नयी कला का जन्म हुआ । यह कला कुकुरमुत्ता के ही समान बंजर धरती की उपज है । इस में रूप, रंग, गंध आदि की कमी है । यह भावों की सुकुमारता से नहीं गुद-गुदाती पाठकों को सोचने केलिए विवश करती है । कुकुरमुत्ता के समान ही उसकी उपादेयता है[1] ।

"नए पत्ते" की समस्त कविताएं छंदमुक्त है तथा व्यंग्य से ओतप्रोत है । "रानी और कानी" यदि एक आंख से कानी युवती की दुखद एवं दारुण स्थिति के व्यंग्य को उभारती है तो "मास्को डायेलाग्स" तथा "महगू महगा रहा" जैसी कविताएं राजनीति एवं राजनीतिज्ञों के कारनामों पर व्यंग्य करती है । गर्म पकौडी, प्रेम संगीत जैसी कविताओं में आभिजात्य एवं तथाकथित बडप्पन के विरुद्ध सामान्य जन को प्रतिष्ठित करने पर बल है । "गर्म पकौड़ी" में जहां कवि बहन की पकाई घी की कचौड़ी को छोड़कर "तेल की भुनी नामक मिर्च मिली "गर्म पकौड़ी पर ललचाया हुआ है, वहां प्रेमसंगीत में बहन का लड़का एक जात की कहारिन पर जान देने को तत्पर है । अत: निराला के संबन्ध में यह नि:संकोच स्वीकार किया जा सकता है कि निराला आधुनिक हिन्दी के युगप्रवर्तक व्यंग्यकार हैं, जिन्होंने व्यंग्य को आभिजात्य एवं छन्द दोनों से मुक्त कर दिया ।

"नए पत्ते" की कविताओं में कवि-दृष्टि विशेषकर हास्य एवं व्यंग्य की रही है, लेकिन दलितों की दयनीय स्थिति ने कवि को उनके जीवन दर्शन के चित्रण केलिए बाध्य किया है जिस से वर्ण्यविषय को भी स्थान मिल गया है । वर्ण्यविषय के आधार पर इन कविताओं को वर्ग-चेतनात्मक, वर्गसंघर्षात्मक, हास्य व्यंग्य एवं विविध विषयक कविताओं में विभाजित किया जा सकता है ।

---

1. त्रयी [जानकी वल्लभशास्त्री द्वारा उद्धृत] प्रकाशचन्द्रगुप्त-पृ.45

वर्गचेतनात्मक कविताएं भावाभिव्यक्ति केलिए अत्यंत तीक्ष्ण है। निराला ने एक कविता में अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी पूंजीवाद का उल्लेख कर उसके कुपरिणामों के रूप में देश की शस्य-श्यामला भूमि को रेगिस्तान होते बताया है।

बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया।
टापू में ले चल कर रखा और कैद किया।
एक का डंका बजा
बहुतों की आंख झपी।
लह लही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा[1]।

निराला के अतिरिक्त छायावादियों में उदयशंकर भट्ट ने "मनुष्य का अहम्" "साहित्य स्रष्टा : मैं" दफ्तर का बाबू" तथा "लाहौर की लपटों में" कविताओं में क्रमशः मनुष्य के अहंकार, साहित्य स्रष्टा की विडम्बनापूर्ण जिन्दगी दफ्तर के बाबू की करुण एवं विसंगत दिनचर्या, सांप्रदायिक दंगों के कारण झुलसते हुए पंजाब के रेशमी नगर की स्थिति पर कहीं हास्य उत्पन्न करने वाला, कहीं करुण तथा कहीं कटु व्यंग्य कियाहै।

हरिवंशराय बच्चन ने सन् बयालीस के आसपास बंगाल में पड़ने वाले भयानक अकाल पर अत्यंत मार्मिक रचना की है "बंगाल का काल" इस लंबी कविता के कतिपय स्थलों पर आक्रोश एवं विद्रोह से युक्त व्यंग्य है जो भूख का अर्थ बताता हुआ गहन करुणा जगाने में सक्षम है। प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन की मैथिली में रचित दो कविताएं "बूढवर" एवं लखिमा" में क्रमशः भारतीय समाज में व्याप्त वृद्धविवाह की हास्यास्पदता तथा सामंती बहुपत्नी प्रथा की विडंबना को व्यंग्य के माध्यम से उभारा गया

---

1. नए पत्ते - निराला - पृ.29-30

केदारनाथ अग्रवाल ने "हम पात्र हैं" में मानवीय असहायता एवं परवशता की विडंबना को उभारा है ।

तारसप्तक {1943} की अधिकांश कविताएं छंदमुक्त हैं । इन कविताओं में व्यंग्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है । "तारसप्तक" की प्रयोगवादी कविता "निम्न मध्यवर्ग"[1] में निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक विसंगतियों को नितान्त करुणायुक्त व्यंग्य के माध्यम से उभारा गया है, क्यों कि इस वर्ग के अधिकांश प्राणियों का जीवन मात्र नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता में ही बीत जाता है । "गेहूं की सोच"[2] में दो कदम आगे बढ़कर उस भारतीय कृषक की जीवन विडम्बना की व्याख्या है, जो गेहूं की धनी धनी बालियां उगाकर भी अंततः : गेहूं के दानों की बजाय आंसू के दाने पाते हैं । ये दोनों कविताएं आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं की करुणा को उभार कर उनपर तीखा व्यंग्य प्रहार करती हैं । "आत्म संवाद"[3] रचना में नाटकीय संवाद के माध्यम से आत्म व्यंग्य को उभारने का कार्य किया गया है । "पहिए"[4] कविता आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के बढ़ते हुए पहियों द्वारा प्रदत्त मानसिक तथा शारीरिक अशांति पर व्यंग्य है, "तो शाम की धूप"[5] में मध्य वर्गीय बाबुजनों की फटेहाल जिन्दगी का करुण नक्शा खींच दिया गया है । कवि गाता है[6] में सेठों को खुश करने वाले, मात्र गानेवाले, अफसरों एवं प्रशासकों के समक्ष रिरियाने वाले संक्रांतिकाल के अजागरूक कवियों पर कटाक्ष एवं करुणायुक्त व्यंग्य मिलता है । "शिशिर की राका निशा"[7] में चांदनी को वीभत्सता की कसौटी पर कसकर यह

5

1. तारसप्तक - पृ. 204
2. वही 196
3. वही 68
4. वही 33
5. वही 43
6. वही 9
7. वही 286

सिद्ध किया गया है कि चांदनी भी अब असली नहीं रही ।[1] वर्ग भावना सटीक एवं "जयतु हे कंटक चिरंतन"[2] में क्रमशः उच्चवर्ग के खोखले दावों एवं तथाकथित नासमझ संपादकों की साहित्यिक सूझ बूझ पर व्यंग्य करके इनके परखचे उड़ाये गए हैं ।

निष्कर्ष यह है कि प्रबन्ध काव्यों में व्यंग्य उस मात्रा में उपलब्ध नहीं है, जितना की मुक्तक काव्य में । महाकाव्यों एवं खण्डकाव्यों की प्रकृति से सर्वथा भिन्न पड़नेवाला व्यंग्य इन रचनाओं में संभव भी नहीं थी लेकिन ज्यों ज्यों मूल्यों के विघटन को अभिव्यक्ति देने की दिशा में ध्यान गया, चेतना आई, राजनीति ने जीवन को पग पग पर प्रभावित करना आरंभ किया, आर्थिक विसंगतियों की मौजूदगी को समग्र मानवीय विकास केलिए बाधक समझा गया, व्यंग्याभिव्यक्ति की आवश्यकता भी बढ़ती गई । इस के बावजूद समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था एवं जातीय आडंबरों की दायरे में कैद व्यक्ति का अहम अभिव्यक्ति केलिए बेचैन था एवं इस दृष्टि अहम् की विडम्बनाओं को व्यंग्य के माध्यम से उभारने की तत्परता का विकास होता गया ।

उन्नीसवीं सदी के शुरू में व्यंग्य कविताएं अपना एक निश्चित रूप धारण कर चुका था । शासन के खिलाफ कवि अपना आक्रोश व्यक्त करने लगा था एवं सुधार करने की प्रवृत्ति बलवती हो चली थी । सामाजिक कुरीतियों को उखाड़कर फेंकने केलिए एक वातावरण बनने लगा था । शायद इसलिए आर्यसमाज आन्दोलन लोकप्रिय हो चला था ।

---

1. तारसप्तक - पृ.298
2. वही 299

पं॰ हरिशंकर शर्मा ने अपनी व्यंग्य कविताओं में सुधारवादी प्रवृत्ति को अपना लिया। समाजवादी रूढियों के प्रति उनका आक्रोश इनकी व्यंग्य कविताओं में परिलक्षित होता है। अंग्रेज़ों के चाटुकार भी कांग्रेस के सदस्य चार आना देकर बन रहे थे। "चवन्नी का चमत्कार" शीर्षक व्यंग्य में इन्होंने उनकी खबर ली है -

जो देश भक्ति से द्रोह किया करते थे
जो अमन सभा की महिमा पर मरते थे
जनता में निश दिन भीरू भाव भरते थे
वे आज चवन्नी चन्दे को भुगता कर
बन रहे तपस्या पुंज सफल गुण - आकर।[1]

कवि ने अपने व्यंग्य काव्य में व्याज-स्तुति का प्रचुर प्रयोग किया है। इनके व्यंग्य के लक्ष्य पंच, वकील, नेता, चन्दा हजम करने वाले, पुरोहित, अवसर वादी तथा तथाकथित साहित्यकार रहे। शर्माजी ने जन प्रिय लोक धुनों पर भी व्यंग्य काव्य लिखा। "झंडा ऊंचा रहे हमारा" की लोकधुन पर चन्दा हजम करने वालों पर व्यंग्य द्रष्टव्य है :

कोठी कार दिलाने वाला
खुरचन खीर खिलाने वाला
घर भर को हरषाने वाला
भरता रहे रोज भण्डारा
चन्दा बन्दा रहे हमारा।[2]

---

1. चिड़ियाघर - पृ॰ 133
2. वही 125

तत्कालीन युवक अंग्रेज़ी पढ़कर फैशन-ग्रस्त हो रहे थे, अपनी संस्कृति को तिलांजली दे रहे थे, "कमरफोड़ कम्बख्तराय" शीर्षक कविता में उन्होंने ऐसे नवयुवकों को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया :

पढ़कर अंग्रेज़ी भरपूर
भारतीयता कर दी दूर
निज संस्कृति का पेट निराला
बन बैठा बोझम विद्वान[1] ।

रिश्वत का लेना देना बढ़ रहा था । व्याज स्तुति शैली में शर्माजी ने "रिश्वत रानी" शीर्षक व्यंग्य में लिखा -

न्यायालय में तेरा तप है
धर्मालय तेरा जप है
दुनिया भर तेरी खप है
दश दिशि तेरा पुण्य उदय हो
रिश्वत रानी तेरी जय हो[2] ।।

शर्माजी की भाषा सरल है । अंग्रेज़ी एवं उर्दू के शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग मिलता है । मुहावरों का सफल प्रयोग भी इनके व्यंग्य काव्य में मिलता है । खड़ी बोली के अतिरिक्त इन्होंने ब्रजभाषा में भी लिखा । "नेता" को लक्ष्य बनाकर ब्रज भाषा के एक पद की पैरोडी इस दिशा में दृष्टव्य है -

---

1· हास परिहास - सं· बटब बनारसी एवं सुधाकर पाण्डेय - पृ·120
2· वही 123

नेताजी, मेरे औगुन चित न धरो । .
सेवा सों सुनों हिय-सर है, स्वारथ नीर भरो ।।
परमारथ को नाम सुनत ही हा ! बिन मौत मरो ।
रिसवत को रुपया चट चाट्यो, चन्दा चुप चरो ।
अहंभाव की ओढ उढनियां, घर बाहर झगरो
दीन हीन निर्धन नर-नारी, रोबत फारि गरो ।
पै तिन के हित हेत न अबलों, कोउ काम करो ।
सुन सुन "त्याग तपस्या" बतियां जियरा जात जरो ।
हौं तो कर्मवीर नर-पुंगव तुम्हरी सरन परो ।
सुरग और अपवरग न चाहत, मांगत वोट खरो ।।
हे प्रभु जी, चुंगी को चेरो करो न टेक टरो[1] ।।

व्यंग्य कविताओं के संदर्भ में बनारसी दास चतुर्वेदी जी ने हिंदी में दो नए शब्द चलाए । (1) घासलेट (2) जरायमपेशा साहित्यिक । जरायम पेशा साहित्यिकों का विचार शीर्षक व्यंग्य में चतुर्वेदी जी ने निरालाजी के यमदूत को सम्मुख उपस्थित करके "जरायमपेशा" शब्द पर व्यंग्य किया है । प्रस्तुत कविता में सुमित्रानंदन पंत, रामनरेश त्रिपाठी एवं डॉ॰ बाबूराम सक्सेना, को भी यमराज के सम्मुख खड़ा किया गया है । चतु जी ने समालोचकों द्वारा अश्लील एवं मूर्खतापूर्ण शब्दों के प्रयोग करने पर मार्मिक व्यंग्य किया है । डॉ॰ हजारी प्रसाद ने "कविता का भविष्य" नामक अपने लेख में लिखा था कि आज का कवि प्रगतिशील होता है । वह सौन्दर्य को नहीं किन्तु सत्य को खोजता है । उन्होंने उसमें यह भी लिखा था कि वे कविता को सुर, छंद तुक आदि के बंधनों से मुक्त करने के पक्ष में हैं । चतुर्वेदी जी का मत है कि जो कविता छन्द को भी नहीं मानती, अलंकार को भी नहीं मानती उस को हम कविता कहें ही क्यों[2] इस भाव के समर्थन में उन्होंने "करेला लोचनी" शीर्षक व्यंग्य लिखा:-

---

1॰ हास्यकवि सम्मेलन - सं॰ गोपाल प्रसाद व्यास - पृ॰19
2॰ कविता का भविष्य - सरस्वती पत्रिका - हजारी प्रसाद द्विवेदी

कैसे आज बताऊँ लोचन।
कमल नयन यदि कहता हूँ
तो कहलाऊँगा दकियानूसी ।
मृगलोचनी बताता हूँ तो
बन जाऊँगा मक्षक-भूसी
{प्रगतिशील उपमा की इच्छा}
सुन्दर न, हो सत्य अलबत्ता,
यह उनका मत है हे प्रेयसि।
बसते जो कि निकट कलकत्ता !
परख से है उपमा कैसी।
प्रेम रोग में अनोपान का काम सदा होती है आँखें,
या वे उछल हृदय पर चढती ज्यों मेंढक पिछली टाँगें !
कहो, यही यह उपमा कैसी।
{बुरा मान मत जाना प्रेयसि !
मेंढक अपने में महान् है ।
आलोचक जो प्रगतिशील है
उनका यह निश्चित विधान है[1] }

"आम फहम" शब्द को लेकर तथा हिन्दी के रूप में उर्दू को चलाने की कुप्रवृत्ति को लेकर श्रीनारायण चतुर्वेदी ने एक व्यक्तिगत व्यंग्य बनारसीदासचतुर्वेदी पर लिखा :

आली जनाब पंडित चौबे बनारसी जी
दाम इकबलहू की खिदमत में आया था ।
"जीवन साहित्य" नामी दिल्ली से रिसाला एक
हरीं बद्‌टाउ पंडित साहब का निकाला हुआ ।

---

1. छेड़छाड़ - पृ.78-79

ओरछा में महलों की करके मेहमानदारी
खाली जनाब पंडित साहब की तोंउ तो -
निकली चली आ रही थी बेतहाशा, वैसे ही
जैसे उपदेश मुंह से उनके निकलते हैं ।
x x x x
हाज़री बात एक कहनी है आप से,
मेरी गुस्ताखी को मुआफ फरमाइए,
(कहने से बाज तो न आऊँगा वैसे भी
अपनी जुबान ज़रा आमफहम कीजिए ।
मसलन यह आपने जो लफ्ज "साहित्य ही है -
किया इस्तेमाल, वह सकील होगा लोगों को ।
लिखना था आप को "अदब" लफ्ज उसकी जगह
लफ्ज "लिटरेचर" आमफहम होना ज्यादा ही ।
मुझे उम्मीद है कि कामयाब होंगे आप
ढोल निज कीर्ति का सदा बजाते जाइए ।
मित्रों की सम्मति मंगाकर हज़ारों ही -
टेस्टिमोनियल्स की पूरी बेटरी लगाइए ।[1]

दयाशंकर दीक्षित देहाती ने पिछले पच्चास वर्षों में अपने व्यंग्य साहित्य को अपने व्यंग्य काव्य से अभिवृद्ध किया है । इनके व्यंग्यात्मक दोहे मार्मिक होते हैं । उक्ति वैचित्र्य इनकी एक विशेषता रही । नारियों में बढती हुई फैशनप्रियता पर देहाती जी के दोहे व्यंग्य का समुज्वल उदाहरण है -

---

1. छेड छाड - पृ.42

न्यू फैशन की तियन को, प्रिय पर इतिम अनुराग
जिमि लेडी को गोद में, है रूसी बुलडाग ।
देशी तियन चलावते, हैं इंग्लिश की चाल,
भैंसिन-खुर में ज्यों बंधी, है घोडन की नाल ।
पढि विद्याबल पाइके, जो सबला होइ जाँय,
अबला झाँसी-सी बने, तबला वाली नाँय ।[1]

देहाती जी के व्यंग्यों में आक्रोश कम बल्कि हास्य एवं आनन्द का पुट अधिक है । इन्होंने समसामाजिक जीवन के यथार्थ तत्व को गहराई से पकड़ा है । निष्कर्ष रूप से बताया सकता है कि इनका व्यंग्य अन्तर्विरोधों पर आधारित हैं ।

बेढब बनारसी उत्कृष्ट कोटि के व्यंग्यकार थे । इनके व्यंग्य भी तिलमिला देने वाला है । फैशन परस्तों को इन्होंने भी अपने व्यंग्य काव्य का लक्ष्य बनाया -

बडी इन्सल्ट है मेरी जो कहना बाप का मानूं
नहीं इंग्लिश पढी और रोब वो इतना जमाते हैं
न बदरीनाथ जाते हैं न अब जावें हैं वह काशी
मिसों के दरशनों को लंदनों पेरिस वह जाते हैं ।[2]

तत्कालीन नेता इतने पाखंडी होते जा रहे थे कि उनकी कथनी तथा करनी का विरोधाभास जनता के सम्मुख स्पष्ट होता जा रहा था -

---

1. हिन्दी व्यंग्य विनोद - सं. गोपाल प्रसाद व्यास - पृ.93
2. बेढब की बहक - पृ.86

बाहर सभा में देखिए खद्दर का ठाट है,
घर में मगर विलायती सब ठाट है
मिलते हैं चुपके - चुपके गवर्नर से, लाट से
लेक्चर में मुंह पे रहता सदा बायकाट है[1]।

पाश्चात्य वेशभूषा तथा रहन सहन के ढंग का प्रभाव नवयुवकों तथा नवयुवतियों पर इतना अधिक पड़ा कि भारतीय संस्कृति को प्रायः भूलने लगे । उनका रूप रंग ही बदल गया -

नजाकत औरतों सी, बाल लम्बे साफ मूंछें हैं
नए फैशन के लोगों की अब सूरत जनानी है ।
पता मुझ को नहीं कुछ इण्डिया में भी है लिटरेचर
मगर याद है सारा मिल्टनो - बेकन जबानी है ।
जनेऊ इनकी नेकटाई है पाण्डर इनका टीका है
नए बाबुकी ह्विस्की आजकल गंगा का पानी है[2]।

काका हाथरसी का पूरा नाम प्रभुलाल गर्ग है । इन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक व्यंग्य अधिक लिखे । अनर्गल कविता लिखने वालों को लक्ष्य बनाकर लिखे गये दोहे व्यंग्य के संदर्भ में प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

बड़े वही कविराज है, और सभी कवि व्यर्थ ।
श्रोता जिनके काव्य का, समझ न पावें अर्थ[3]।

---

1. बेढब की बहक - पृ.2
2. वही पृ.10
3. दुलत्ती - पृ.13

चित्रकला में "एब्स्ट्रैक्ट" की जो धारा चली उस पर भी एक व्यंग्य इन्होंने लिखा है -

वोटर असली है वही, देय उसी को वोट ।
थमा देत जो हाथ में, दस रुपए का नोट[1] ।।

रिश्वत का प्रचार देश के कोने कोने में फैलता चला जा रहा है । धर्म समाज तथा राजनीति का कोई क्षेत्र इससे अछूता नहीं बचा । यह कैसी विडम्बना है कि बडी से बडी रिश्वत लेने वाले येन-केन अपने को दण्डित होने से बचा लेते हैं ।

कूटनीति मन्थन करी, प्राप्त हुआ यह ज्ञान ।
लोहे से लोहा कटे, यह सिद्धांत प्रमान ।
यह सिद्धांत प्रमान, जहर से जहर मारिये ।
चुभ जाये कांटा, कांटे से ही निकालिये ।
यह "काका" कवि, कांप रहा क्यों रिश्वत लेकर
रिश्वत पकडी जाय, छूट जा रिश्वत देकर[2] ।

नेताओं की स्वार्थ परता पर व्यंग्य काव्य पर्याप्त मात्रा में लिखा गया । जनता की सेवा के नाम पर भाई-भतीजावाद खूब पनपा । काका ने इस प्रवृत्ति पर लिखा -

आफीसर मैं ने बनाया
ताऊ के खास जमाई को
फौजी ठेका दिलवाया था
भाभी के छोटे भाई को ।

---

1. दुलत्ती - पृ.14
2. काका के कारतूस - पृ.85

सम्बन्धी, रिश्तेदारों के
क्षण भर में संकट हरता हूँ
जनता की सेवा करता हूँ ।।[1]

ऋषिकेश चतुर्वेदी भी प्रभावकारी व्यंग्यकार थे । इन्होंने समाज, साहित्य एवं राजनीति में व्याप्त असंगतियों पर मार्मिक व्यंग्य लिखे । छात्रों में अनुशासन हीनता एवं फैशनप्रियता का प्रारंभ हो चुका था । छात्रों की उद्दंडता को लक्ष्य बनाकर उन्होंने लिखा :

काले अक्षरों को गिने भैंस के बराबर जो,
शिष्टतर न जाने किस चिड़िया का नाम है ।
फिरते स्वच्छन्द छैल, जैसे बिना नाथ बैल,
बे-नकेल ऊँट या कि घोड़ा बैल गाय है ।
मेलों में मचलते हैं, चलते विचरते हैं
छेड़ छाड छोड़ जिन्हें दूसरा न काम है ।
ऐसे सूट धारियों अब-छात्र "धासलेटियों" ने,
किया आज छात्रों का समाज बदनाम है ।[2]

इनकी दृष्टि पैनी थी । स्पष्टवादिता इनकी विशेषता थी । इन्होंने अपने व्यंग्य काव्य में प्राचीन छंदों का उपयोग किया है । हिन्दु समाज में विवाह पद्धति अत्यन्त दूषित हो चुकी है । बारातियों का व्यवहार कितना अशिष्ट एवं अमानवीय हो गया है । कवि ने एक बारात का व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया है -

---

1. विविधा - पृ. 7
2. छेड छाड - पृ. 63

शस्त्र-साज-बाज से सुसज्जित स-दल-बल
आकर उन्होंने चट घेर लिया नाका है
मांग है सहस्त्रों की न चिंता से है काम उन्हें
द्रव्य आप का है, किसका है पर कहाँ का है ।
भूषन, बसन, पात्र, अन्न, पशु वाहनादि
हाथ लगा जो भी, सब आप के पिता का है
खातिर जमाई - जैसी सभी चाहते हैं भला ।
आप ही बताइए बरात है कि डाका है।[1]

राष्ट्रीय कविता में व्यंग्य

इन लोगों के अलावा व्यंग्य की दृष्टि से अलग अलग धारायें भी इस काल विभाग में उत्पन्न हुई । इस में महत्वपूर्ण है राष्ट्रवादी धारा । राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत ऐसा साहित्य एक समय में लिखा जाता रहा जो देश की जातीय विशेषताओं का परिचय देता है । इस तरीके के साहित्य में जाति का समस्त रागात्मक - स्वरूप एवं उसके उत्थान - पतन का विवरण भी आया है । इस धारा की महत्वपूर्ण एवं सफल कृति है मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती । प्रस्तुत कृति में पूर्वजों की गौरव गाथा के गान एवं तत्कालीन राजनीतिक - सामाजिक परिस्थितियों में जातीय ह्रास के प्रस्तुतीकरण के साथ साथ भविष्य केलिए उद्बोधन का स्वर भी ऊँचा रहा है । राष्ट्रवादी धारा के कवियों की रचनाएं देश प्रेम की भावना से ओत प्रोत रही हैं । उत्साह, आत्म निरीक्षण, वीर भावना आदि इस धारा की प्रमुख विशेषताएं हैं । राष्ट्रवादी धारा के अधिकांश कवि भी स्वाधीनता केलिए गोरों की काली जेलों में भी रहे एवं उन्होंने तरह तरह की पीडाएं झेली ।

---

1. छेड छाड 5 - पृ.9

इनकी जीवन दृष्टि स्वाधीनता तथा देश भक्ति के आदर्शों से संपन्न थी एवं इनका सबसे बडा आदर्श था, देश से फिरंगियों को खदेड़ कर नए समाज, राष्ट्र एवं जाति का पुनरुद्धान । इन कवियों की रचनाओं में जहां व्यंग्य उभरा है अथवा किया गया है, वहां ये विदेशी शासन की दमन-नीतियों, भारतीय जनता के नैतिक पतन उनके विदेशी संस्कृति एवं सभ्यता पर मुग्ध हो जाने एवं जातीय चारित्रिक गुणों के नष्ट हो जाने की विडम्बना पर व्यंग्य करते दिखाई देते हैं ।

मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में राष्ट्रप्रेम की ध्वनि दूर दूर तक सुनाई पड़ती है । उनके काव्य में जहां व्यंग्य उभर कर आया है वहां ऐसे मूल्यों के विघटन की पीडा है जो नष्ट होने योग्य नहीं थे, परंतु नष्ट होते जा रहे थे । "भारत-भारती" के वर्तमान खण्ड में गुप्त जी ने इस प्रकार के व्यंग्य को पूरी तीव्रता एवं आक्रोश के साथ उभारा है । लुप्त होते हुए राष्ट्रीय एवं जातीय आत्माभिमान, नष्ट होते हुए प्राचीन चिह्नों, दारिद्र्य, दुर्भिक्ष, कृषि एवं कृषकों की बिगडती हुई स्थिति, भ्रष्ट-वाणिज्य, रईसों द्वारा उडाए जा रहे गुलछर्रों, रईसों के सपूतों की करतूतों, अविद्या, शिक्षा की दुरवस्था, साहित्य क्षेत्र में फैली स्वार्थपरता, सभाओं एवं उपदेशकों में पाए जाने वाले मिथ्याचार, महंतों एवं साधु संतों के चारित्रिक पतन, वैश्यों की व्यवसाय लोलुपता आदि पर गुप्त जी ने "भारत-भारती" में कई स्थलों पर मार्मिक व्यंग्य किया है ।

मैथिलीशरण गुप्त की जीवनदृष्टि आदर्शवादी थी एवं वे राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे । उन्होंने भारत भारती में उस समय की वास्तविक स्थिति को उजागर किया है, जब राष्ट्रीय आन्दोलन पूरे ज़ोरों पर था, देश अपनी आज़ादी की लडाई पूरी शक्ति से लड़ने को तत्पर था ।

यही कारण है कि उन्होंने व्यंग्य प्रहार का निशाना तत्कालीन रईसों को बनाया, जो अंग्रेजों की नकल तो पूरी करते थे, परन्तु ये जाहिल और अशिक्षित मात्र ऐश आराम करना ही जिनकी अमीरी का परिचायक था।[1]

इसके बावजूद तत्कालीन सेठों की मनोवृत्ति कुछ ऐसी थी कि यदि कोई यह सोच भी लेता कि शिक्षा के अभाव में वह निरक्षर भट्टाचार्य रह गया है, लेकिन अपने बच्चों को तो कुछ लिखा-पढ़ा दे, तो पत्नी पति के मध्य जो संवाद हो जाया करता था, उसका गुंजन गुप्त जी ने यों दिया है :-

श्रीमान शिक्षा दें उन्हें तो श्रीमती कहती वही -
घेरो न लल्लाको हमारे, नौकरी करनी नहीं।
शिक्षे, तुम्हारा नाश हो, तुम नौकरी के हित बनी;
लो मूर्खते! जीती रहो, रक्षक तुम्हारे हैं धनी।[2]

इन पंक्तियों का व्यंग्य गहरी टीस एवं पीडा की अभिव्यक्ति का अच्छा उदाहरण है। लेखक ने इस व्यंग्य में भर्त्सना की भंगिमा का कुशल निर्वाह किया है। हल्की सी हंसी आती है, जो पीडादायक है। इस सिलसिले में निर्धनों की स्थिति तथा शिक्षा के विकास हो जाने पर अपेक्षाकृत अधिक निर्ममता से व्यंग्य मिलता है। शिक्षा चाहने वालों की नियति कुछ इस प्रकार निर्धारित थी।

---

1. भारत भारती [अट्ठाइसवां संस्करण] पृ. 117
2. वही पृ. 120

बिकने लगी विद्या यहाँ अब, शक्ति हो तो क्रय करो,
यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रहकर ही मरो[1] ।।

लेखक ने साहित्यिक क्षेत्र में पनप रही दोषपूर्ण स्थितियों पर भी तीखा व्यंग्य किया । उन्होंने अपने व्यंग्य का निशाना, विशेष रूप से ऐसे कवियों को बनाया, जो भगवान श्रीकृष्ण के नाम की ओट में खुली श्रृंगारिक कविताएं लिख रहे थे । घटिया रुचि के लोकप्रिय उपन्यासकारों और पक्षपात रोग से पीड़ित समाचार पत्रों पर भी उन्होंने व्यंग्य किया है । जनसेवी संस्थाओं का कार्य मात्र चंदा उगाहना रह गया था, इस पर निम्नांकित पंक्तियों में किया गया व्यंग्य उदाहरणार्थ पेश किया जा सकता है ।

"यदि बिना उनका घड़ी भर काम कुछ चलता नहीं,
पर शोक है ! तो भी यहाँ समुचित सुफल मिलता नहीं ।
है वीर ऐसे भी बहुत जो देश हित के व्याज से -
अपने लिए है प्राप्त करते दान-मान समाज से[2] ।

अब तो यह स्पष्ट है कि गुप्त जी ने अपने समय में व्याप्त हर प्रकार के मिथ्याचार एवं पाखंड को "भारत-भारती" के वर्तमान खण्ड में स्पष्ट-मार्मिक तथा पैनी व्यंग्याभिव्यक्ति दी है । ऊंचे मूल्यों के विघटन के प्रति पीडायुक्त व्यंग्य एवं समाज की सच्ची तसवीर पेश करते हुए चेतना को जगाने का प्रयत्न इस रचना में है । सच्चे वैष्णवकवि मैथिलीशरण गुप्त के माध्यम से कहं डालने का भी दुःख था, जिसे उन्होंने इस कृति की प्रस्तावन में व्यक्त भी किया है[3] । गुप्तजी ने स्वयं बहुत पीडा का अनुभव करके

---

1. भारत भारती (अट्ठाइसवां संस्करण) पृ. 122
2. वही पृ. 130
3. वही पृ. 6

तत्कालीन स्थितियों को उनके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने की इच्छा से लेखनी उठाई थी । अतः उनके व्यंग्य का प्रयोजन सत्य को उद्घाटित करके उन स्थितियों को समाप्त करने की दिशा में जनता को प्रेरित करना था, जो मूल्यों के विघटन के प्रति उत्तरदायी थी ।

माखनलाल की कविता में व्यंग्य

राष्ट्रवादी कवियों की अग्रणी पंक्ति में अपने के साथ साथ माखनलाल जी को छायावाद के प्रथम कवि के रूप में भी स्मरण किया जाता है । द्विवेदी युगीन साहित्यादर्शों तथा प्रेम पीडा एवं वेदना की संगम उनके काव्य में मिलता है । माखनलाल जी के जीवन का अधिकांश भाग राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में जेलों में बीता था । इसलिए उनके काव्य में स्वतंत्रता प्राप्ति की ललक एवं देश प्रेम की अजस्र धारा समान रूप से प्रवाहमान थी । बालक माखनलाल में व्यंग्य विनोद की प्रवृत्ति थी जो उनके धनीराम पंडित वाले, प्रसंग से ज्ञात होती है[1]।

दूसरा प्रसंग इनकी बुआ से संबन्धित है । इनकी बुआ प्रभाती में सूर एवं तुलसी के पद गाया करती थी । बुआ ने बालक माखनलाल को प्रभाती गाते पाया । बहुत प्रसन्न हुई किन्तु जब प्रभाती के शब्दों पर ध्यान दिया तो पासा ही पलट गया ।

"उठो मेरे दोनों बैल, भोर भयो प्यारे ।
जंगल में चरो घास, अब तो छोड़ो घर की आस
भोर भयो प्यारे[2]।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ.9-10
2. वही पृ.68-69

इस प्रकार ये तुकबंदियां हंसी दिल्लगी थी, पर इन्हें देखने से यह आभास अवश्य मिल जाता है कि माखनलाल जी में व्यंग्य विनोद की अद्भुत क्षमता थी । यह क्षमता एक ओर तो तत्कालीन काव्याभिजात्य के कारण दब गई, दूसरे राष्ट्रीय संघर्ष ने कवि को कहीं कहीं विडम्बना को व्यक्त करता हुआ तीखा व्यंग्य तो दिया पर हंसी दिल्लगी में गंभीर बातें कह डालने की आकांक्षा नहीं ।

इस विडंबना की अभिव्यक्ति उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में प्राय: हुई है । "कैदी और कोकिला" में कवि ने कोकिला के माध्यम से गुलामी एवं अंग्रेज़ी शासन पर प्रहार किया है -

क्या? - देख न सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियां क्यों? यह ब्रिटीश राज का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूं - जीवन की तान ।
हूं मोट खींचता लगा पेट भर जुआ,
खाली करता हूं ब्रिटीश अकड़ का कुआ
दिल में करुणा क्यों जगे रुलाने वाली?[1]

जंजीरों एवं हथकड़ियों को ब्रिटीश राज का गहना तथा कोल्हू के चर्रक चूं को जीवन की तान मानकर मोट खींचने वाला कवि ब्रिटीश अकड़ का कुआँ खाली करता हुआ अंग्रेज़ी शासन को अपने प्रहार एवं व्यंग्य का निशाना बनाकर अन्त में यह भी कह देता है -

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ. 69

"काली तू रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली"[1]

आज़ादी के दीवाने माखनलाल जी में शासकों की टुकड़ फेंक नीतियों के प्रति अदम्य व्यंग्यभाव के दर्शन "सौदा एवं मरण त्योहार" रचनाओं में होते हैं। कोई सुविधा कोई सुख अन्तस्तल की आवाज़ को दबाने में सफल नहीं हो सकता। ऐसा धंधा करने के इच्छुकों पर सौदा में व्यंग्य के साथ साथ उपहास भी किया गया है जो अन्तत: पीड़ाजनक वातावरण की सृष्टि करता है -

चाँदी सोने के टुकड़ों पर अन्तस्तल का सौदा
हाथ पाँव जकड़े जाने का अभिमानपूर्ण मसौदा।
टुकड़ों पर जीवन की श्वासें। कितनी सुन्दर दर है।
हूँ उन्मत्त तलाश रहा हूँ कहाँ वधिक का घर है।
दमयन्ती के एक चीर की माँग हुई बाजी पर
देश निकाला स्वर्ग बनेगा तेरी नाराज़ी पर[2]।

इसी प्रकार "मरण त्योहार"[3] में लापरवाह एवं बलिदान को उत्सुक माखन लाल जी ने अत्याचारियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए व्यंग्य किया। माखनलाल जी में विश्वशांति की दुहाई देने वालों, किन्तु उसके विपरीत आचरण करने वालों के प्रति तीखे व्यंग्य का भाव मिलता है। "जय तुम्हारी जय" में अंग्रेज़ों, अमेरिकनों की शांति संबन्धी दुरंगी नीति और आचरण का विद्रूप द्रष्टव्य है[4]। यही नहीं यह आक्रोश

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ. 30
2. हिम किरीटिनी - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ.26
3. वही पृ.30
4. युग चरण - पृ.7

गांधीजी के सिद्धान्तों पर आचरण न करने वालों पर भी व्यंग्य हुआ है -

नाम गांधी का, कि ढब हम ज्वार से सीखे
मेल की झंकार हम तलवार से सीखे
मौन रहना हम समुद्री ज्वार से सीखे
प्राण - पूजा हम कहाँ, संहार से सीखे ।
"यह जमाना" "वह जमाना" लग रही है हाट
तुल रहा ईमान बल पर चढ रहे हैं बाट[1] ।

लेकिन इससे आगे "क्रन्दन" कविता में यह व्यंग्य इतना तेज हो गया है कि उसकी धार नश्तर के समान पैनी है -

खा रहे हो अन्न, मरणासन्न
मेरी हड्डियों का स्वाद कैसा लग रहा है
सुलगाना चाहा, नहीं मेरे हृदय का क्रोध आज सुलग रहा है ।
चूसते हो फल संभालो -
रक्त मेरा भर रहा है सब फलों में,
और वह भी सर रहा है, जो झरा करता अभागे दृगजलों में[2] ।

कैसे न कह दें कि कवि में यह आग अंग्रेज़ी शासन के प्रति ही है । स्वाधीनता प्राप्ति की अदम्य आकांक्षा एवं पराजय को विजय में परिवर्तित कर डालने की वांछा ही उनके काव्य का प्रेरणाबिंदु रही, जिस में अमूल्य काव्य को कोरी तुक बंदी मानने की विनम्रता भी विद्यमान है[3] ।

---

1. युग चरण - पृ.7
2. वही पृ.10
3. आधुनिक कवि - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ.140

उनका स्वातंत्र्यपूर्ण व्यंग्य अधिकांशत: शासन की शोषक नीतियों पर हुआ है । इस में प्रहार का पैनापन तो है, पर हास्य की गंभीरता नहीं है । उन्होंने सच्ची एवं गहरी अनुभूतियों को समसामायिक मुहावरे में ही व्यक्त किया । प्राय: यह देखने में आया है कि जहां माखनलाल जी ने व्यंग्य को उभारने का प्रयत्न किया है, वहां उनकी भाषा बोलचाल के नज़दीक हो गई है एवं उसमें "हड्डी", "जमाना", "कोल्हू" "अकड़", गजब जैसे सामान्य बातचीत के शब्द आ गए है । वह युग पूर्णत: आक्रोश एवं व्यंग्य का नहीं था, भाषा के परिष्कार का था, तथापि, माखनलाल जी के विद्रोही व्यक्तित्व में जो आग थी उसकी अभिव्यक्ति अपने स्वाभाविक रूप में हुई । चतुर्वेदी जी सच्चे कवि थे, अत: सत्याभिव्यक्ति करते समय उनमें जो गहरा रोष मुखरित हुआ है, वह उनके व्यंग्य को मानवीय साहस, लापरवाही एवं संवेदना की त्रिमूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित करता है ।

नवीन जी की कविता में व्यंग्य

राष्ट्रवादी कविता के प्रमुख कवियों में नवीन जी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जागरण के इतिहास में साप्ताहिक "प्रताप" यदि गणेश शंकर विद्यार्थी का कीर्तिमन्दिर था, तो नवीन जी उसके आधार स्तंभ थे । जीवन के कई वर्ष जेलों में बिताकर एवं अपने कवि व्यक्तित्व को इन्हीं गुलाम जेलों में विकसित करके भी नवीन जी में मस्ती एवं औघड़पन विद्यमान रहा ।

एक ओर नवीन में औघड़पन था तो दूसरी ओर विप्लव एवं प्रहार का उत्तरदायित्वपूर्ण स्वर भी मौजूद था । जहां अंग्रेज़ी राज्य की कुत्सित नीतियां उन्हें उत्तेजित करती थीं, वहां मूढ परंपराएं, वर्गगत आर्थिक विषमता, पारस्परिक वैमनस्य आदि भी उनकी चिन्ता के विषय थे ।

नवीन जी की कविताओं में इन्हीं कारणों से व्यंग्य उभर कर आय तथा उसकी प्रहार धर्मिता तीव्र हुई है । जब नवीन शोषण का न है तो उनकी सारी आस्तिकता धराशायी हो जाती है एवं उनके ईश्वर के अस्तित्व के प्रति भी सन्देह हो जाता है ।

अरे चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैं ने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूं आग आज इस दुनिया
यह भी सोचा: क्यों न टेंटुआ घोटा जाय स्वयं जगपा
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति

लेखक के इस प्रकार की कविताओं में मानवद्वारा मानव के की विडम्बना को उभारा गया है । गुलामी का बहुत बड़ा कारण एवं अज्ञान ही वे मानते हैं । "पिंजर-मुक्ति-मुक्ति" कविता में लेख पिंजर बद्ध तोते को प्रतीक बनाकर व्यंग्य किया है -

रहे असंस्कृत अब तक, तो क्या छोड़ें आशा संस्कृति की।
थे क्या वह ऊसर है - जिस पर कोई बीज नहीं जमता।
सुआ राम क्या यों ही बने रहोगे जंगली के जंगली।
वन्य भाव अब छोड़ो करो पठित एकाध नाम अक्षर[2] ।

इसी प्रकार तत्कालीन राजनीति में हिंसा एवं अहिंसा क द्वंद्व सर्वत्र विद्यमान होने की स्थिति पर लेखक की दृष्टि साफ रहती एवं वे दुर्बल आडम्बरपूर्ण अहिंसा की स्थिति समझते हुए इस विडंबना को निम्नांकित प्रकार से उभारते है -

---

1. हम विष पायी जनम के - पृ॰493-494
2. वही पृ॰ 30

हिंसा और अहिंसा की यह तत्व दीपिका मत समझाओ,
तुम छोड़ो यह नाद व्यर्थ का, चलो चलें संग, मित्र हम आओ
इस हिंसक साम्राज्यवाद के बड़े बड़े तानाशाहों की
गरज रही है भीषण तोपें, क्या बिसात है वां आहों की।
x x x x
हम से तो तुम खूब कहोगे, ज़रा कही उन से भी जाकर
ज़रा देख लो क्या होता है उन्हें अहिंसावाद सुनाकर[1]।

नवीन जी के व्यंग्य में मस्ती है, पर हास्य का पुट विरल है। व्यंग्य की विशेषता के रूप में यह लिखना अच्छा रहेगा कि लेखक का व्यंग्य आक्रोशयुक्त है, जो करुणा से भी अधिक अमर्ष की सृष्टि करता है। "परीक्षा के प्रश्नपत्र" में उन्होंने जिस फक्कड़पन से मन की बात कही है, वह उनकी आक्रोश पूर्ण व्यंग्य शैली का परिचय देती है -

"कितने आतुरता से देखे अपने परचे वाली
निर्दय परीक्षकों की कृतियां कैसी है विकराली।
दुनिया भर की बात पूछते, यह सब भ्रम का जाल,
मन के दुर्बल मिलन का उनका ज़रा नहीं है ख्याल।
आखर अमित अर्थ थोड़ा, यह प्रश्न पत्र का खेल।
जी में आता है आज जला दूं इन सब को बे-तेल[2]।।

अंतिम पंक्ति में व्यक्त आक्रोश के साथ साथ "आखर अमित अर्थ थोड़ा" कहकर कवि ने अपनी "अर्थ अमित आखर थोड़े" वाली बानगी प्रस्तुत कर दी है। अपनी इस विकट लापरवाही एवं बिना कहे बहुत कुछ

---

1. हम विषपायी जनम के - पृ.243
2. वही पृ.594

कह देनेवाली भंगिमा के कारण नवीन कबीर का आधुनिक संस्करण लगते हैं। इस कथन की पुष्टि में नवीन जी की कविता "अब यह रोना धोना क्या" उद्धृत की जा सकती है, जिस में उनके व्यंग्य कौशल, फकीराना मस्ती एवं सबकुछ न्योछावर कर डालने की बेबाकी एक साथ दिखाई देते हैं -

क्या आशा अभिलाषा बन्दे। अब यह रोना धोना क्या।
दृष्टि लग चुकी जब कि नियति की, तब जादू और टोना क्या।
x x x x x
नंगे नहाये ताल-तलैयाँ, धोना और निचोना क्या।
जब यों बेधर-बार हुए, तब बाती-दीप संजोना क्या।
जब आकाश बन चुका चंदुआ, तब छप्पर में सोना क्या।
जब सौदा का विद्याह छूटा, तब अब स्वर्ग-खिलोना क्या।
तुम ने कब दूकान लगायी। तब ड्योढा औ पौन क्या।
मस्त रहो, ओ रमते जोगी, लुटिया आज डुबोना क्या।¹।

मुक्त कविता में यद्यपि व्यंग्य दृष्टिगोचर नहीं होता, लेकिन विडम्बना को ओछापन के साथ उभारने पर उस से जो करुण उत्पन्न हुई है, वह अतुल्य है। तुम ने कब दूकान लगायी। तब ड्योढा या पौना क्या। कहनेवाला कवि ही व्यंग्य की विसंगता एवं दो टूकपन को निबाह सकता है। नवीन की और एक कविता है "घड़ियाल बजानेवाले" जिसमें उन्होंने नपे-तुले शब्दों में निठल्ले बैठकर घड़ियाल बजाने वालों पर व्यंग्य किया है -

---

1. हम विष पायी जनम के - पृ.594

"छन छन करते चले जा रहे हैं ये बैठे-ठाले,
क्या पागल हो गए आज घड़ियाल बजाने वाले।
सुबह - शाम, दिन रात गिन रहे हैं ये बीती घड़िया
जमा हुए है यहाँ निठल्ले देखो, बड़े निराले ।
क्षण क्षण चली आ रही है अति निकट अन्त की घटिका
अरे, आखिरी घड़ी टली है कभी किसी के टाले।

उपरोक्त पंक्तियों में लेखक ने ऐसे भक्तों पर व्यंग्य किया है जो मौत की घड़ी टालने केलिए घड़ियाल बजाते हुए ईश्वर गान में अपना समय इसलिए काटते रहते हैं कि शायद थोड़ी लंबी उमर औरमिल जाए ।

लेखक की कविताओं में व्यंग्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें आर्थिक विषमता, धार्मिक अंध विश्वासों एवं जनता की अकर्मण्यता के प्रति गहरा रोष था । अपने इस रोष को वह रत्नों जैसे फक्कड़पन की शैली में व्यक्त करते थे एवं कहीं कहीं उनका आक्रोश इतना तीक्ष्ण हो जाता था कि "जगपति का टेंटुआ" तक घोंटने को उतारू हो जाते थे । जेल की कोठरियों में रातों जाग जागकर लेखक ने अपनी अधिकांश रचनाएं लिखी थीं शायद इसलिए होगा कि इन में हास्य युक्त व्यंग्य तो प्राय: कहीं भी मौजूद नहीं है, परंतु व्यंग्य युक्त गहरा विषाद अवश्य है, जो उनकी संपूर्ण मस्ती, विनोद प्रियता, ठेठ बोलचाल के शब्दों को कविता में प्रयोग किए जाने के बावजूद उनकी कविताओं में झांक झांक जाता है । भवानी प्रसाद मिश्र ने नवीन के काव्यों के संदर्भ में यों बताया है - "नवीन का काव्य जीवन यौवन, शक्ति, ओज, माधुर्य, प्रेम एवं करुणा के सप्त स्वरों से झंकृत है । एक ओर उस में हृदय वशीकरण की जीवनी-शक्ति है, तो दूसरी ओर मस्तिष्क को प्रबुद्ध करने की अनुपम सामर्थ्य भी"[1] ।

---

1. बालकृष्ण शर्मा नवीन - पृ.3।

अतः कहा जा सकता है कि नवीन की कविताओं में जीवन, शक्ति, ओज एवं करुणा के स्वरों की झलक उनकी व्यंग्य प्रधान अथवा व्यंग्यात्मक कविताओं में भी मिल जाती है ।

हरिकृष्ण प्रेमी की कविता में व्यंग्य -

हरिकृष्णप्रेमी के काव्य एवं नाटकों में रची राष्ट्रीयता की भावना के कारण उन्हें राष्ट्रीय कवियों में ही स्थान मिल गया है । "अग्निगान" उनकी विद्रोही एवं राष्ट्रीय रचनाओं का संकलन है । इनका व्यंग्य स्वर पराधीनता एवं सामाजिक विषमताओं के खिलाफ मुखरित हुआ है । भूखे पत्नी-बच्चे की तकलीफ का गम गलत करने के आकांक्षी मन द्वारा किया गया यह व्यंग्यमय आर्तनाद पैनी करुणा की सृष्टि करता है -

मत छीनो मुझ से प्याली मत छीनो मुझ से झारी ।
ओ मधुशाला के मालिक, ले आओ मदिरा सारी ।
भूखे हैं घर में बच्चे, भूखी है घर में नारी ।
क्यों रोक रहे हो मुझको, मति मारी गई तुम्हारी ।।[1]

इसके बावजूद, आर्थिक पीड़ा से ग्रस्त मन के माध्यम से कवि दूसरों की परेशानी न समझने वालों पर भी व्यंग्य-प्रहार करता है । अपनी "स्वर्णद्वीप" रचना में भी प्रेमीजी ने आर्थिक वैभव-विलास के पुतलों पर जमकर व्यंग्य के तमाचे जड़े हैं । स्वर्णद्वीप में पहुंचकर फक्कड़ एवं संत कवि को

---

1. संघर्ष के स्वर - पृ.90

जब यह सुनने को मिलता है कि तुम फटेहाल एवं नंगी हो, तब वह ज्वलंत सत्य को नंगा करके रख देता है ।

भारत वर्ष में हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत 19वीं शताब्दी से पुनर्जागरण काल माना जाता है । यह वह समय है जब कि सदियों से बंधी हुई भारतीय संस्कृति अथवा राष्ट्र की आत्मा अवाह्य लबादों को फेंककर पुनर्जागरण के लिए अंगडाई लेने लगी । इसे राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक जागरण अथवा पुनर्जागरण आदि नामों से याद किया गया है । इसे मध्यकालीन रूढियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना अवश्य निहित है किन्तु भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि और संस्कृति के पुन: स्थापन का प्रवल आग्रह था । विद्रोह या क्रांति की यह भावना जैसे प्रत्येक क्षेत्र में लक्षित हुई, वैसे ही साहित्य के क्षेत्र में भी । कहा जाता है कि मध्यकालीन साहित्य या तो परलोककी ओर केन्द्रित किया जाता था अथवा राजा, महाराजाओं, रईसों और जमीन्दारों के दरबारों में सिमटता जा रहा था, उसका संबन्ध समाज से दूर होता जा रहा था । सारे समाज से उसका जैसा संबन्ध होना चाहिए वैसा नहीं था । जनता के स्तर का यह पुनर्जागरण संबन्धी आन्दोलन साहित्य की ओर भी बढा, और हिन्दी साहित्याकाश के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने निर्देश में चलने वाली साहित्यिक मंडली के साथ साहित्य और समाज के विच्छिन्न संबन्ध को पुन: जोडने लगे । बंधे हुए वर्ग की बंदी हुई भावना से जब साहित्य में बासीपन आ जाता है तब सजग साहित्यकार खुली प्रकृति और खुले जीवन को महत्त्व देता है और रूढ तथा निर्जीव विधि-विधानों की उपेक्षा करता हुआ साहित्य को नवीन आभा से मण्डित कर देता है । हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में इस स्वच्छन्द वृत्ति का उद्रेक श्रीधर पाठक तथा पाण्डे बन्धुओं के माध्यम से आरंभ हुआ [1] ।

---

1. छायावादी काव्यदर्शन - पृ. 15-16

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता से ऊब कर छायावादी कवियों ने मनुष्य की समस्त मृदुल एवं सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने की दिशा में कदम बढ़ाए थे। स्थूल सौन्दर्य की निर्जीव आवृत्तियों से थके हुए, कविता की परंपरागत नियमावली से बुरी तरह ऊबे हुए कवियों को न तो पूरी तरह यथार्थ चित्रण ही स्वीकार्य रहा और न ही उन्हें कविता का रूढ़िगत आदर्श पसन्द आया। छायावादी कवियों ने नवीन रूपरेखाओं में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति और मानवीय सुखदुःख को अत्यन्त बारीकी से सर्वथा नवीन शैली में व्यक्त करने पर बल दिया। प्रस्तुत काव्य धारा के चक्र में आनेवाले कवियों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट और एक सीमा तक बच्चन भी हैं। इन सभी कवियों की काव्यगत विशेषताएं अलग अलग हैं।

प्रसाद, महादेवी, रामकुमार वर्मा में जहाँ निजी दुःख की सूक्ष्म अभिव्यक्तियों के दर्शन होते हैं, वहाँ निराला, पंत, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट एवं बच्चन में एक जनवादी चेतना भी है जो तथाकथित प्रगतिवादियों से भिन्न है, मगर जिस में सामाजिक परिवेश के प्रति सजगता अवश्य है। यही कारण है कि प्रसाद, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि में सामाजिक विडम्बनाओं पर बहुत कम मात्रा में व्यंग्य मिलता है, जब कि इन से भिन्न उपर्युक्त कवियों में यह व्यंग्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

मुख्य रूप में छायावादी कवियों में व्यंग्य जीवन की विडम्बनाओं एवं नियति की मार आदि के सन्दर्भ में भी उपलब्ध होता है। व्यंग्य की दृष्टि से छायावादी काव्य पूर्ण रूपेण शून्य नहीं है। छायावाद में व्यंग्य कवियों के निजी रुझान एवं काव्यगत परिवेश की छाया-छाया ही उभर आयी है।

छायावादी काव्यधारा के मशहूर कवि स्व॰जयशंकर प्रसाद की कविताएं संभवत: अपने व्यंग्य केलिए आलोचकों का ध्यान आकर्षित नहीं कर सकी हैं। सचमुच प्रसाद की काव्यकृतियों में व्यंग्य हमारे अभीष्ट अर्थों में उपलब्ध अवश्य होता है। गंभीर स्वभाव के सहज और संकोची व्यक्तित्व के धनी प्रसाद जी के काव्य में हास्य भले ही न लाया हो, उनके महाकाव्य "कामायनी" के "चिन्ता" एवं "संघर्ष" सर्गों में विडम्बना को दर्शाने वाला एवं प्रहार धर्मी व्यंग्य प्रसाद जी की व्यंग्य करने एवं उसे उभारने की क्षमता का अच्छा परिचय देता है।

वैसे ही प्रसाद जी विनोदी स्वभाव के थे। रायकृष्णदास लिखते है कि - उन्नीस सौ छत्तीस के अन्त में लखनऊ में एक धूमधामी प्रदर्शनी हुई थी। जब प्रसाद वहाँ जाने का मंसूबा बाँध रहे थे, एक दिन काशी के खादी-भंडार में सुनहले रंग की एक बड़ी सुन्दर रेशमी छींट दिखाई दी। उसको मुझे दिखाकर कहने लगे - आओ, हम, तुम इसका रूईदार ओवर कोट और कंटोप बनायें और वही पहन कर प्रदर्शनी में निकलें। लोग प्रदर्शनी देखना भूल भलकर हम को ही देखने लगेंगे[1]।

इस प्रकार हमारे पास यह समझने का कोई कारण नहीं है कि प्रसाद में व्यंग्य की ललक नहीं थी। यह बात अलग है कि उन्होंने अपने लेखन में व्यंग्य को प्राथमिकता प्रदान नहीं की।

निराला की कविता में व्यंग्य -

छायावादी काव्य की प्रवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल हास्य-व्यंग्य की धारा प्रवाहित करने में निराला का सर्वाधिक योगदान है। भारतेन्दु के बाद निराला ही ऐसे कवि हैं जो व्यंग्य की दृष्टि से सर्वाधिक मनन करने

---

1. युगप्रवर्तक जयशंकर प्रसाद (प्रकाशन विभाग-भारत सरकार-रायकृष्णदास- पृ॰17

योग्य हैं । वास्तव में निराला की "कुकुरमुत्ता" ने द्विवेदी युग एवं छायावाद की गंभीरता को झटका दिया एवं यह झटका उन्होंने हल्के फुल्के प्रसंगों में नहीं, अपितु सरोज स्मृति जैसे शोकगीत में दिया -

वे जो यमुना के - से कछार
पद फटे बिवाई के उधार
खार के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गंध,
उन चरणों को मैं यथा अंध,
कल प्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूं ऐसी नहीं शक्ति
ऐसे शिव से गिरजा - विवाह
करने की मुझ को नहीं चाह ।[1]

दुःख की दर्दनाक परिस्थिति में निराला ने "चमरौधा जूता" जैसे तीखे व्यंग्य को प्रस्तुत किया है, जो काव्य में अन्यत्र दुर्लभ होने के साथ साथ तत्कालीन कविता-रुचि के प्रतिकूल भी था । इस के बावजूद कवि ने छायावादी संस्कारों पर प्रहार करके उसकी गुरु गंभीरता को तोड़ने के साथ साथ गंभीर, मार्मिक, करुणा एवं पीड़ा दायक प्रसंगों को भी व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया । उपेक्षितों का उन्नयन एवं जनसामान्य की प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति प्रायः निराला की अधिकांश रचनाओं में मौजूद है ।

---

1. अनामिका (तीसरा संस्करण) पृ. 129-130

इस प्रकार की छायावादी आभिजात्य निराला की कतिपय रचनाओं यथा "विधवा", "वह तोड़ती पत्थर", "भिक्षुक" में उपलब्ध है। इन रचनाओं के पात्रों में सहनशीलता की उच्चाशयता मिलती है। जिसे छायावादी काव्य-आभिजात्य का ही अंग माना जा सकता है। इसके बावजूद निराला की लम्बी व्यंग्य कविता "कुकुरमुत्ता" व इनके संग्रह "नए पत्ते" की "रानी और कानी", "खजोहरा", "मास्को डायलाग्स", "गर्म पकौड़ी", "प्रेम संगीत" आदि रचनाओं का स्वभाव आभि-जात्य का नहीं है। यही वही बिन्दु है, जहाँ से निराला के व्यंग्य का अध्ययन आरंभ किया जा सकता है। "नए पत्ते" की पहली कविता "रानी और कानी"[1] ही सामाजिक व्यंग्य का श्रेष्ठ उदाहरण है, जो निराला के व्यंग्य के पैने पन, सारगर्भिता एवं सच्चाई का द्योतक है। इस समूची कविता में हमें भाषा-प्रयोग का सर्वथा नया रूप दिखाई देता है। प्राचीन आलोचना के मानदंडों के अनुसार प्रायः अधिकांश प्रयुक्त शब्द कविता की स्वीकृत भाषा के सर्वथा प्रतिकूल - भदेस, देशज - कहे जा सकते हैं। परंतु निराला ने पुरानी काव्य मान्यता की बंदिश को नकारकर उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जो पुरानी मान्यताओं एवं काव्य आभिजात्य पर कुठाराघात करते हैं। इसके अतिरिक्त "रानी और कानी" का कथ्य अपनी संपूर्ण करुणा के साथ व्यक्त हुआ है।

चेचक के दाग वाली, काली, नाकचपटी, गंजे एवं कानी आँख वाली कुरुप लड़की को माँ, "रानी" कहकर पुकारती है एवं उसके बीनने, काड़ने, कूटने, पीसने, बुहारने, करकट फेंकने एवं घड़ों पानी भरने के बाद भी माँ का दिल बैठा रहता है, क्यों कि वह मन मसोसकर कानी की ब्याह की बात सोचती है। जबकानी पड़ोसिन से अपने कानेपन के प्रति लांछन सुनती है, तो उसका दिल हिल जाता है एवं माँ के दुःख से दुखी हो, वह एक आँख से रो पड़ती है। प्रस्तुत संपूर्ण कविता गहन करुणा, पीड़ा एवं स्थितियों की दारुणता का अच्छा उदाहरण है।

---

1. नए पत्ते - पृ. 16

निराला की समस्त व्यंग्य कविताएं इसी स्तर की नहीं है तथा उनमें हास्य के अतिशय पुट के कारण अर्थगाम्भीर्य में बाधा भी पड़ती है । किन्तु इसी संकलन की "मास्को डायेलाग्स" एवं "गर्म पकौडी" कविताएं अपने गंभीर अर्थ और पैने व्यंग्य के कारण क्रमशः राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों पर सटीक व्यंग्य करती है । "मास्को डाललेग्स"[1] में श्री·गिग्वानी नामधारी एक समाजवादी नेता के राजनीतिक व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत करती है । इस रचना में बहरूपिए, अनपढ़, राजनीतिक व्यक्तित्व पर करारा व्यंग्य है । इसी प्रकार गर्म पकौड़ी में तेल की भुनी, नमक मिर्च की मिली गर्म पकौडी केलिए अपनी पसन्द बताते हुए बहन की पकाई हुई एवं घी से तली हुई कचोड़ी के आभिजात्य पर व्यंग्य करने के साथ साथ कवि उसका तिरस्कार करता हुआ भी पाया जाता है ।

निराला में मानवीय कुरूपता को व्यक्त करके उसे दूर करने का प्रयास हमें पग पग पर दिखाई देता है । अर्थ वैषम्य की कुरूपता के कारण निराला को बहुत कुछ भोगना पड़ा तथा इसी भार और पीड़ा ने उनके व्यंग्य को सार्वभौमिक भी बनाया । "वन बेला"[2] कविता में निराला ने अर्थ वैषम्य के दर्द को गंभीर आक्रोशपूर्ण करुणा की मुद्रा में भली प्रकार उभारा है । इस कविता में निहित व्यंग्य सामाजिक और आर्थिक वैषम्य तथा टुच्ची मनोवृत्तियों पर प्रहार करता हुआ यह सोचने को भी विवश करता है कि व्यक्ति को विद्वान भी बना सकता है तथा समस्त विद्याधर [शिक्षित विद्वान] भी उसी समय अनुचर बन पाते हैं जब कि

1· नए पत्ते - पृ·25-26

2· अनामिका- पृ·85

व्यक्ति के पास पैसे का अभाव न हो । इस कविता में कवि अपने अर्थहीन होने की विडम्बना को उभारने के साथ साथ विद्याधरों की नियति एवं नीयत पर भी व्यंग्य कर देता है । प्रचार का एक प्रमुख साधन अखबार पूंजीपतियों के हाथ का खिलौना बना हुआ है, यह व्यंग्य भी इस रचना में पूर्णत: स्पष्ट हो गया है ।

आधुनिक हिन्दी कविता में निराला व्यंग्य के उन्नायक है एवं उन्होंने मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता को भी छन्दों के बन्धन से मुक्त करके भाषा शैली के आभिजात्य से पूर्णत: छुटकारा दिलाकर आगे वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग प्रशस्त करने के साथ साथ अपने समय की कुरूपताओं को आक्रोश, करूणा, अमर्ष युक्त शैली एवं कहीं कहीं उस में हास्य का पुट देकर व्यक्त किया है । विशेष रूप से कुकुरमुत्ता में अधिक स्पष्टता दिखाई देता है ।

पन्तजी की कविता में व्यंग्य -

छायावाद के कोमल - कांत कवि सुमित्रानंदन पंत की ख्याति प्रकृति के कवि के रूप में रही है । यद्यपि "युगवाणी" की रचनाओं में पंत जीवन के अधिक निकट आ गए थे एवं उनकी कविता का चिन्तन पक्ष अथवा धारणा पक्ष सामने आने लगा था, यथापि "ग्राम्या" में पन्तजी ने सहानुभूति के माध्यम से ग्रामीण जीवन के आवर्तों - विवर्तों का स्पर्श अधिक मात्रा में किया है । अत: यह कहा जा सकता है कि यदि "युगवाणी" कवि की मार्क्सवादी चिन्ता का बौद्धिक पक्ष है, तो "ग्राम्या" में काव्यात्मक एवं व्यावहारिक पक्ष उभरकर आया है ।

पंतजी के काव्य के संदर्भ में डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी ने कहा है कि "निराला की भांति कविवर पंत ने भी 'ग्राम्या' में व्यंग्य लिखे, किन्तु मुख्यत: पंत जी ने व्यंग्य रचना को विशेष महत्व नहीं दिया"[1]। वैसे ही प्रो॰ हरिनारायण मिश्र ने भी पंत के व्यंग्य के सम्बन्ध में लिखा है - "व्यंग्य के दर्शन पंत की 'ग्राम्या' में भी हो जाते किन्तु मुख्य रूप में नहीं। चोट करने की जितनी सामर्थ्य और शक्तिमत्ता निराला में है, उसका यहां अभाव है। यहां व्यंग्य का पुट भाव है[2]। पंत के व्यंग्य की तुलना निराला से करना पंत के साथ निश्चय ही अन्याय करना होगा। पंत के व्यंग्यों को उनके काव्य के परिप्रेक्ष्य में रखकर ही देखना होगा, तभी हमें पंत काव्य में व्यंग्य का, चाहे थोडा ही, आनन्द मिल सकेगा।

प्रस्तुत संदर्भ में 'ग्राम्या की कई कविताएं उल्लेखनीय है, यथा, ग्रामदेवता, ग्रामवधु, भारत ग्राम, वह बुड्ढा, गांव के लडके, कठपुतले, वे आंखें आदि। इन रचनाओं में कवि ने ग्रामीण करुणा को अत्यन्त सहानुभूति के साथ उभारा है। व्यंग्य का सहानुभूति वाला पक्ष इन रचनाओं में प्रचुरता से विद्यमान है। इन कविताओं में ग्रामजीवन की कुरुपता एवं कठोरता को चित्रित किया गया है। विशेष रूप से "वे आंखें" रचना महत्वपूर्ण है, जिस में स्वतंत्र देश के उस किसान की आंखों का वर्णन है जो जीवन से छला गया है। उसके हरे भरे खेत बेदखल हो गए। कारकुनों की लाठी से इकलौता पुत्र भरी जवानी में मार डाला गया, बैलों की जोडी महाजन ने बिकवा दी, बगैर दवाई के पत्नी चल बसी, दुध मुंही बेटी भी दो दिन बाद मर गई एवं अन्तत: विधवा पतोहु

---

1. हिन्दी साहित्य में हास्य रस - पृ॰300
2. नई कविता - हरि नारायण मिश्र - पृ॰99

ने कोतवाल द्वारा बलात्कार किए जाने के परिणाम स्वरूप कुएं में डूब कर आत्महत्या कर ली । इन आँखों का अथाह नैराश्य अपनी पूर्ण शक्ति एवं तीव्रता के साथ इस कविता में व्यक्त हुआ है -

आँखों में ही घूमा करता वह उसकी आँखों का तारा,
कारकुनों की लाठी से जो गया जवानी में ही मारा ।
बिका दिया घर द्वारा महाजन ने न ब्याज की कौड़ी छोड़ी
रह रह आँखों में घुमती वह कुर्क बरधों की जोड़ी[1] ।।

यहाँ ग्रामीण समाज में व्याप्त महाजन के अत्याचारों एवं उनसे प्रभावित दीन हीन ग्रामीण जनों की करुण विडम्बना को कवि ने सहानुभूति का स्वर दिया है । इसी प्रकार "ग्राम देवता"[2] कविता में ग्राम देवता की रूढिवादिता की व्यंग्यपूर्ण आलोचना है ।

ग्रामदेवता को कल्पवत् एक याम, प्रगति पथ के विराम और जन विश्वासों का अंधकूप कहकर ग्रामीण जन और जीवन के पिछड़ेपन की आलोचना की गई है । "ग्रामवधु" कविता में किंचित हास्य का वातावरण बताते हुए कवि ने ग्रामवधु के कृत्रिम रुदन का चित्रांकन अत्यंत मधुर शैली में किया है -

भीड़ लग गई लो, स्टेशन पर,
सुन यात्री ऊँचा रोदन स्वर
झाँक रहे खिड़की से बाहर
जाती ग्राम वधु पति के घर ।

1• ग्राम्या [तृतीय संस्करण] - पृ•25
2• वही पृ•58

चिन्तातुर सब कौन गया मर,
पहियों से दब, कट पटरी पर,
पुलीस कर रही कहीं पकड़ घर
जाती ग्राम वधु पति के घर ।
x x x
विदा फुआ से ले हाहाकार
सखियों से रो धो बतिया कर
पड़ोसिनों पर टूट, रंभाकर
जाती ग्रामवधु पति के घर[1] ।।

प्रस्तुत प्रसंग में व्यंग्य दृष्टि का चमत्कार देखने योग्य है । "वह बुड्ढा" कविता में बुढ़ापे की करुण विडम्बना का मार्मिक चित्रण मिलता है । इसी प्रकार "गाँव के लड़के" में ग्रामीण बालकों का शब्द चित्र बिना कहे भी समूची ग्रामीण विसंगतियों को उभारने में सक्षम है ।

पंत जी ने अपने महाकाव्य "लोकायतन" में वानप्रस्थ कवि माधो-गुरू और उनके शिष्य "वाग्विलास" पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है । पंत जी के काव्य में व्यंग्य के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि यद्यपि पंत प्रकृति के कवि हैं, परन्तु उन्होंने अपने संकलन "ग्राम्या" की कतिपय रचनाओं में सहानुभूति एवं करुणा से युक्त व्यंग्य की सफल सृष्टि की है ।

---

1. ग्राम्यवधु

महादेवी वर्मा की कविता में व्यंग्य -

छायावादी काव्य की एक मात्र प्रतिनिधि कवयित्री महादेवी जी का का काव्य चिरन्तन यौवन, रागतत्व एवं गूढ संवेदना का काव्य रहा है। उनके काव्य में व्यंग्य भी जीवन की नश्वरता को न समझने एवं क्षणिक सुख के अभिमान में फूले रहने तथा प्रिय के प्रति उलाहने एवं शिकायत के रूप में आया है। सुख के मतवालों के अभिमान को धूल में लोटते देखकर महादेवी कह उठती है -

"जिस मानस में डूब गए कितनी करुणा कितने तूफान,
लोट रहा है आज धूल में उन मतवालों का अभिमान ।।[1]

वैसे ही अपने को उपालंभ मय व्यंग्य के रूप में अत्यंत पीडा भाव से उन्होंने कहा -

"भिक्षुक से फिर जाओगे जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे इन प्राणों का महंगापन ।।[2]

इस के बावजूद भी "सुमन" के प्रति उदबोधित एक गीत में महादेवी जी ने विश्व की स्वार्थपरता पर वार करते हुए ईश्वर प्रदत्त विडम्बना को भी व्यंग्य के माध्यम से उभारा है -

---

1. यामा [चतुर्थ संस्करण] पृ.15
2. वही पृ.16

मत व्यथित हो फूल ! किसको सुख दिया संसार से
स्वार्थमय सब को बनाया है यहाँ करतार ने[1]।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा के काव्य में व्यंग्य जीवन की नश्वरता की करुणा को अभिव्यक्त करने और कुछ स्थलों पर फटकार के रूप में भी आया है । "वसंत के मोहमय छल के प्रति कवि अपनी करुणा मिश्रित वाणी कुछ यों मुखरित करता है, जिसमें कोमल ही सही, किन्तु व्यंग्य प्रहार अवश्य है"[2] ।

वैसे ही एक अन्य गीत में भी वर्मा ने जीवन की नश्वरता, अशांति, मृत्यु की परिधि में बन्धे जीवन तथा दुःख के धनकी रक्षा करने वाले सुख की स्थितियों की पीड़ा को सहज व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दी है[3] ।

"नूरजहाँ" एवं सलीम के प्रणय प्रसंग में हमें अवश्य ही वर्माजी के व्यंग्य का तीखा रूप मिलता है । जहाँगीर की निर्ममता पर प्रहारात्मक व्यंग्य के दर्शन उनकी एक कविता में इस प्रकार है -

वह मोती का प्यार-चुप रहा ये सलीम मत बोलो
इस सौन्दर्य सुधा में मत विषमयी वासना घोलो
x x x x
केवल छवि का मोल, वासना ही के उपहारों में
और प्रेम का मोल रत्न के हीरों के हारों में
करता है संसार, यही है उसकी रीति निराली,
अंधकार में तारों का विक्रय करती निशि काली[4] ।

1· यामा (चतुर्थ संस्करण) पृ॰30
2· आधुनिक कवि - पृ॰36
3· वही पृ॰42
4· वही पृ॰66

लगातार इस प्रकार की कविताओं में व्यंग्य प्रकृति एवं प्रेम की विसंगतियों को व्यक्त करता हुआ आया है । बाद के महा काव्य "एकलव्य" में व्यंग्य आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों में उभरा है ।

भगवती चरण वर्मा की कविता में व्यंग्य :-

भगवतीचरण वर्मा ने कविताएं बहुत नहीं लिखी, लेकिन उपन्यास रचना की ओर उन्मुख हो गए । इस के मुताबिक लेखक की कविताओं को कम महत्व नहीं दिया गया एवं उन्हें हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में स्थान दिया गया । वर्माजी के काव्यों में मस्ती है, फक्कड़पन है एवं निरर्थक लापरवाही भी दृष्टिगोचर है । व्यंग्य के संबन्ध में उनका विचार इस प्रकार है - "व्यंग्य वाला हास्य अधिक बौद्धिक है और वर्तमान बौद्धिक युग में यह व्यंग्यात्मक हास्य श्रेष्ठ समझा जाता है । लेकिन व्यंग्य वाले हास्य में कटुता आ जाने का खतरा रहता है और अधिकांश लेखक व्यंग्य को कटुता से दूर नहीं रख पाते । व्यंग्य स्वयं में कटु होता है, और व्यंग्य से कटुता को इस हद तक गौण बना देना कि साधारण पाठक को ऐसी कटुता का आभास भी न हो, बहुत थोडे से कलाकार कर सकते हैं[1]।

प्रस्तुत कथन को लेखक ने अपनी रचनाओं में लागू करने का प्रयास भी समय समय पर किया है । उनका व्यंग्य प्रगतिवाद अर्थात् गरीबों, श्रमिकों के प्रति सहानुभूति की छाया लिए हुए है अतः उनका सामंतों एवं राजाओं के प्रति व्यंग्यशील होना अस्वाभाविक नहीं है । "राजा साहब का वायुयान" कविता में उन्होंने राजा साहब को निम्नांकित रूप से दानशील एवं दयावान कहा है - .

---

1. साहित्य की मान्यताएं - भगवतीचरण वर्मा - पृ.144

राजा साहब है दानशील
राजा साहब है दयावान
राजा साहब के पैसों से
पलते है कितने ही नेता
पलते हैं कितने कवि लेखक
पलते हैं कितने ही गुंडे
पलते हैं कितने ही महंत
पलते हैं कितने ही नौकर
पलते हैं कितने ही किसान[1] ।

यहां स्पष्ट हो जाता है कि नेता, कवि, लेखक गुंडे, महंत, नौकर, किसान पलते नहीं, अपितु पले जाते हैं ।

लेखक की व्यंग्यात्मक कविताएं फकीराना ठाठ लिए होती है । जिनमें कवि व्यंग्य भी करता चलता है एवं अपने फक्कड़पन को बनाए रखता है । "चहल पहल की इस नगरी में" "दोस्त एक भी नहीं इस नगरी में", दोस्त एक भी नहीं जहां पर", "आकाश गामी से", "देखो सोचो समझो" नगर तुम्हारी जाली है, "उलटी सीधी-वर्माजी की कुछ ऐसी कविताएं हैं" । चहल पहल की इस नगरी में "कविता में माया मोह", धन वैभव में डूब हुए प्राणियों की स्थिति पर व्यंग्य किया गया है । संचय लोलुपों पर भी इस रचना में व्यंग्य किया गया है[2] ।

1• विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा - पृ•64
2• रंगों से मोह - " पृ•29

"दोस्त एक भी नहीं जहाँ पर"[1] में जीवन की कटु सच्चाईयों को व्यक्त करते हुए मान और अपमान के अद्भुत खेल-घृणा हिंसा से दूषित सहमी साँसों और शैतान का बाना धारण किए हुए मनुष्य की विडंबना को उभारने का प्रयत्न है । इसी प्रकार "आकाशगामी-"[2] कवि आकाशगामी को संबोधित करते हुए कह रहा है - "जरा पहले तुम अपनी सीमा तो नाप लो, अपने उर की गहराई तो देख लो, धरती की मौन व्यथा, उसकी भूख प्यास और रक्त लिखित करुण कथा सुन लो । प्रस्तुत कविता में अंतरिक्ष की खोज डालने वाले मानव पर व्यंग्य करते हुए कहा गया है कि यह तो सही है कि तुम अन्तरिक्ष की सुन्दरता पर मुग्ध एवं बेसुध हो, लेकिन यह भी ठीक है कि तुम्हारे पैरों के नीचे से रसवंती धारा खिसकती चली जा रही है -

"देखो सोचो समझो" में प्रबुद्ध ज्ञानियों एवं अतिशय अभिमानियों की स्थिति पर व्यंग्यात्मक प्रहार है ।

"देखो, सोचो, समझो, सुनो गुनो औ जानो !
इसको, उसको, संभव हो निज को पहचानो !
लेकिन अपना चेहरा है जैसा रहने दो
जीवन की धारा में अपने को बहने दो
तुम जो कुछ हो वही रहोगे, मेरी मानो[3]।

"उल्टी सीधी" में भी संगीतज्ञ, कलापारखी, नेता, वेदांती, प्रयोगवादी, आदि को उल्टी-सीधी सुनाकर व्यंग्य किया गया है ।

---

1. रंगों से मोह - भगवतीचरण वर्मा - पृ.30
2. वही पृ.57
3. वही पृ.59

नेता पर किए गए व्यंग्य की शोभा निम्नांकित पंक्तियों में से मालूम हो जाएगा -

कल पढा तुम्हारा था मैं ने वक्तव्य,
अब मैं ने देखी मूर्ति तुम्हारी भव्य,
तुम नेता हो, तुम अभिनेता हो मित्र,
तुम में जग के अधिकार और कर्तव्य
तुम तप की ऐसी अग्नि की जिस में सुख वैभव है हव्य !
भर आया मेरी आखों में जो अश्क,
मैं नहीं कर रहा हूं अभिनय का मश्क,
तुम बुरा न मानो तो मैं कहु दूं साफ
हो रहा मुझे है तुम से बेहद रश्क ।
इसको मत खींचो इस थैली में है थोडा ही द्रव्य[1] ।

एक सहज नाटकीय अन्दाज़ में नेता की वक्तव्य प्रवणता और द्रव्य-प्रियता की धज्जियां इस कविता में उडाई गई हैं । इस प्रकार "कुत्ते की दुम"[2] कविता में कलुआ कुत्ते की टेढी दुम से संसार की तुलना करते हुए कवि ने विसंगतियों को उभारा है ।

"वर्माजी ने खाये आम"[3] एवं "वर्माजी ने मारी लात"[4] ये दोनों कविताएं उनकी हास्य व्यंग्य शैली का प्रमाण है । वर्माजी ने खाये आम में बाज़ार के पैसे से सेठ बुलाकी राम द्वारा खिलाए गए आमों से वर्माजी बीमार पड जाते हैं, इसका मनोरंजक चित्रण है । "वर्माजी ने

---

1. रंगों में मोह - भगवतीचरण वर्मा - पृ.59
2. वही पृ.91
3. वही पृ.93
4. वही पृ.94-95

"मारी लात" में पूर्णतः लापरवाह शैली में कवि के स्वाभिमान द्वारा सेठ करोड़ी की नौकरी पर लात मारने का वर्णन है । वर्मा ने वहाँ वहाँ लात मारी है, जहाँ कवियों को भाँड आदि का दर्जा दिया गया एवं उचित पुरस्कार नहीं दिया गया लेकिन अंत तक पहुँचते ही यह कविता "लात मारने वालों को लात खानेवाला" बनाकर एक गहरी विडम्बना को उभार देती है -

"डटा करोड़ी जा मोटर पर
वर्माजी से बोल हँसकर
"यहीं" पास तो है, पैदल ही
कवियों को ले चल मेरे घर ।
वर्माजी के वक्षस्थल पर हुआ एक गहरा आघात,
वर्माजी ने कहा कड़ककर
रे अज्ञानी । रे धन चक्कर !
तू मेरा अपमान कर रहा
इसलिए जो मैं हूँ नौकर
तुच्छ नौकरी तेरी, यह ले, इस पर मैं ने मारी लात
आज साल भर की बेकारी,
दर दर घूम रहे वर्माजी,
हर मालिक है यहाँ करोड़ी
और नौकरी सदा नौकरी
हम कहते हैं ताल ठोंककर वर्माजीने खाई लात ।
वर्माजी ने मारी लात ।[1]

---

1. रंगों से मोह - भगवती चरण वर्मा - पृ॰94-95

निष्कर्ष यह है कि वर्माजी के व्यंग्यों में सादगी के माध्यम से प्रहार करने की क्षमता है । उनकी हल्की-फुलकी, बिलकुल निरर्थक सी लगने वाली कविताएं भी कितनी सार्थक एवं मार्मिक है, इसका अनुमान वर्माजी ने मारी लात कविता से लगाया जा सकता है ।

उदयशंकर भट्ट जी की कविता में व्यंग्य -

उदयशंकर भट्ट का नाम छायावादी काल में हुआ था, लेकिन छायावादी गीतों के अतिरिक्त लेखक ने विडम्बना, विसंगति को उभारने वाली यथार्थ परक रचनाएं भी लिखी । यद्यपि लेखक ने व्यंग्य कविताओं में कहीं कटुता एवं क्रूरता नहीं आने दी है तथापि उनमें जीवन की सच्चाइयों को अवश्य उभारा गया है, जिस में व्यंग्य का करुण भाव परिलक्षित है ।

सीधे प्रहार करते हुए व्यंग्य भट्ट ने नहीं लिखे, परंतु आत्म विडंबना को उभारने वाली, सामाजिक विसंगति को दर्शाने वाली तथा आर्थिक विषमताओं का चित्र प्रस्तुत करनेवाली उनकी कई कविताएं उल्लेखनीय है । "मनुष्य का अहम्" कविता में उन्होंने मानवीय "मैं" अहंकार और अहंकार की मनोवृत्ति पर मुग्ध कर डालने वाला कटाक्ष किया है[1] ।

---

1. पूर्वापर - पृ.100

"साहित्य स्रष्टा में" नामक कविता में कवि ने राजनीतिज्ञों द्वारा साहित्यकार को छोटा साबित किए जाने की विडंबना पर व्यंग्य किया है कि किस प्रकार हिन्दी साहित्य के विषय में कुछ भी न जानने वाला राजनीतिज्ञ साहित्य के बारे में हल्की एवं सतही बातें कर जाता है। यदि राजनीतिज्ञ से हिन्दी के कृतिकारों की चर्चा की जाय, तो उसका उत्तर कुछ निम्नांकित प्रकार का होता है -

कौन निराला। हाँ वह कवि है, किन्तु समुद्धत् ।
प्रेमचन्द अच्छा लेखक था,
जयशंकर, क्या वह भी कवि था।
और पंत, भाष अच्छी है,
बच्चन भी कुछ कुछ गाता है ।
और महादेवी, हाँ नाम सुना है ।
कवि तो शेली, वर्डसवर्थ या कीट्स हुए है,
नाटक भी शेक्सपियर लिख गया,
या इब्सन, शा, गाल्सवर्दि ही ।
प्रभृति यही लेखक है केवल ।
क्या तुम भी कुछ लिख लेते हो।
हिन्दी के लेखक, ये क्या है।
क्या लिखते हैं।[1]

भट्टजी की अत्यन्त मार्मिक एवं सच्ची कविता है "दफ्तर का बाबू" । प्रस्तुत रचना में सरकारी क्लर्क की दयनीय दशा का चित्रण नहीं है परंतु "टाई-कालर", कोट-पतलून, चुरूट युक्त गर्वयुक्त अधिकार मिश्र "साहब" की मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है ।

---

1. पूर्वापर - पृ.85-86

बच्चन की कविता में व्यंग्य

सन् 1930 से 1960 तक के तीस वर्षों में दो सशक्त, प्राणवान कवि ऐसे हैं जिन की काव्य-भूमि बदलती रही है, एक हैं श्री सुमित्रानंदन पंत एवं दूसरे हरिवंशराय बच्चन । बच्चन की काव्य विषयक - भूमि को मुख्यतया पांच खानों में रखा जा सकता है -

§1§ राष्ट्रीय भावना से अभिभूत हारे युवक बच्चन का जीवन गान मधुशाला कालीन युग - मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, हलाहल की रचनाएं ।

§2§ सामाजिक - निराशामय वातावरण में ही प्रथम पत्नी श्यामा की मृत्यु से मर्मान्तिक पीडा का युग-निशा निमंत्रण, एकान्त संगीत, आकुल अन्तर की §दुःख में सुख की किरन खोजने का प्रयास§ रचनाएं ।

§3§ वैयक्तिक सुख - सुविधा की प्रतिक्रिया स्वरूप, द्वितीय पत्नी का संयोग, सुख का युग - सतरंगिनी, मिलन, यामिनी, प्रणय पत्रिका एवं "धारती और अंगारे" §की कुछ रचनाएं§

§4§ युग व्यापी महत घटनाओं से आन्दोलित कवि के बहिर्जगत के साथ रागात्मक सामंजस्य का युग-बंगाल का काल, खादी के फूल और सूत की माला तथा "धार के इधर-उधर" की §कतिपय§ रचनाएं

§5§ आज §1960§ की लोकधुन पर आधारित लोकमानस स्पर्शिनी रचनाएं ।

बच्चन का काव्य व्यक्ति एक विद्रोही युवक के रूप में रंगमंच पर आता है, जिसकी विद्रोही प्रवृत्ति एवं जिसका यौवनोचित मनोभाव करीब

दिनकर की कविता में व्यंग्य -

दिनकर के काव्य रचना - काल की शुरुआत लगभग सन् 1930 में मानी जाती है । यों उनका पहला खण्ड काव्य "प्रण भंग" 1929 ई॰ में प्रकाशित हुआ था । दिनकर की कविता विभिन्न दिशाओं में विकसित हुई, किन्तु सामाजिक और राजनीतिक पाखंडों पर व्यंग्य करने में भी वे कभी पीछे नहीं रहे । दिनकर की व्यंग्य कविता का विकास स्वाधीनता के बाद पर्याप्त मात्रा में हुआ ।

सरकारी उदासीनता एवं विदेशी सरकारी तंत्र द्वारा की गई कागज़ी कार्रवाई पर यह कड़ा व्यंग्य है । महामारी के समय उभरी हुई मार्मिक परिस्थितियों को तो दिनकर ने इस कविता में व्यक्त किया ही है, साथ ही दिनकर जी नकली और सतही आधुनिकता के भी शुरू से विरोधी रहे हैं । किसी आधुनिकतापरस्त पर किया गया दिनकर का यह व्यंग्य बहुत तीखा है -

आधुनिकता की बही पर नाम अब भी तो चढ़ा दो,
नायलन का कोट हम सिलवा चुके हैं
और जड़ से नोच कर बेली चमेली के द्रुमों को
केक्टसों से भर चुके हैं बाग हम अपना ।[1]

दिनकर ने राजनीतिक व्यंग्य ही अधिक लिखे । लेखक के स्वाधीनता पूर्व की रचनाएं एक आक्रोशवान प्रगतिशील कवि की रचनाएं थी, जो नव जागरण का मंत्र फूंकता हुआ नई पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी दोनों को जगाने के प्रति प्रतिबद्ध था, इसलिए उन्होंने दारुण स्थितियों के व्यंग्य को उभारा ।

1॰ सामधेनी - पृ॰20 (1964 में रचित)

शिवमंगल सिंह सुमन की कविता में व्यंग्य -

शिवमंगल सुमन जी रोमान्टिक प्रेम भावना के कवि रहे हैं। इनकी कविता में व्यंग्य का वह रूप मिलता है, जिनमें या तो एक प्रकार का तीक्ष्ण प्रहार होता है अथवा करुण स्थितियों के व्यंग्य को उभारा जाता है। हास्ययुक्त व्यंग्य सुमन ने प्रायः नहीं लिखा है।

सुमन जी की कई रचनायें हैं जिनमें उन्होंने व्यंग्य विडंबना को भली-भांति उभारा है। "मास्को अब भी दूर है" में उन्होंने रूसी साम्यवाद पर हुए हमले के फलस्वरूप तानाशाहों के क्रूर व्यंग्य पर व्यंग्य किया[1]।

"गुनिया का यौवन" में विवाह के पश्चात तीन वर्षों में ही बूढ़ी बन जानेवालीगुनिया की कथा कहते हुए कवि ने चरम मार्मिकता की सृष्टि करके उस कारण की ओर भी संकेत किया है, जिस से देश की हज़ारों "गुनिया" अपना यौवन खोकर असमय बूढ़ी हो जाती है -

"वे दिन सपने से गए कहां।
यौवन जीवन से गया हार
यौवन गरीब का हो क्षण का
संध्या के लेकिन पल अपार[2]।

निष्कर्ष यह है कि उन्होंने गरीबी, शोषण विडम्बनापूर्ण स्थितियों को उभारने के साथ, देश में व्याप्त परस्पर धर्मांधता के मूल में विदेशी राजनीति की कूटनीतिक चाल को भी समझने का प्रयत्न किया।

---

1. प्रलय सृजन - पृ.68-69
2. वही 30

नागार्जुन की कविता में व्यंग्य -

निराला के बाद की पीढ़ी के समर्थ एवं श्रेष्ठ व्यंग्य कवि नागार्जुन की ज्यादातर कवितायें मैथिली में रचित है। नागार्जुन में व्यंग्य का विकास स्वतंत्र्योत्तर अवधि में अत्यंत क्षिप्र गति से हुआ एवं उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यंग्य कविताएं इसी काल में लिखी गई। मैथिली काव्य संग्रह "चित्रा" में संकलित उनकी कविताएं, यथा, बूढवर, लखिमा एवं द्वन्द्व निश्चय ही उपलब्ध रचनाएं हैं। पहली दो कविताओं में सामंती मनोवृत्ति पर कटु एवं करुण व्यंग्य है। "बूढवर" में बूढे वर की हास्यास्पद एवं उसकी विवाहिता के अन्तर की करुण तसवीर है, तो लखिमा में विद्यापति की प्रेयसी तथा राजा शिवसिंह की रानी का मार्मिक अर्न्तद्वन्द्व है।

नागार्जुन की प्रारंभिक रचनाओं में ही व्यंग्य का वह रूप उपलब्ध हो जाता है, जिस में प्रगतिशीलता की धुन है, नए को सही संदर्भ में ग्रहण करने की ललक है एवं जीर्णशीर्ण मान्यताओं को काव्य के तर्क स्तर पर खंडित करने की तत्परता के साथ-साथ वह करुणा भी है तो व्यंग्य को साहित्य की गरिमा प्रदान करती है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखा है - केदारनाथ नई पीढी के उन लेखकों में से हैं, जो शहर की नकली संस्कृति से ऊब गए हैं, दिखावा एवं बनावट से जिन्हें चिढ है और उनके हृदय में अपने देश की धरती के लिए सच्चा प्यार है। अगर कविता में धरती की गंध आ सकती है, तो वह गंध केदार की कविताओं में आती है।[1]

1॰ प्रगति और परम्परा - पृ॰133

गोबर गनेश - सा मारे आसन एवं सूंड लपेटे हैं कर्ज की ग्रामीणों को की करुण संगति सारी-की-सारी विसंगति के प्रति नश्तर सा वार करती है एवं "रोकड़ कांड" तथा "शोषण कांड" की तुक सारे बेतुकेपन को बडी आसानी से उघाड़कर रख देती है । केदारनाथ ने यद्यपि अधिक मात्रा में व्यंग्य नहीं लिखा, तथापि प्रगतिवादी कविता में व्यंग्य के क्षेत्र में उनका यह यत्किंचित्त योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बीसवीं शती के दूसरे दशक से हिन्दी काव्य में व्यंग्य की जो छटा दर्शनीय है वह आगे चलकर परंपरावादी, स्वच्छन्दतावादी, छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी तथा अत्याधुनिक कवियों में भी मूलस्वर होकर अभिव्यक्ति को प्राप्त करती है । इसका मुख्य कारण विसंगतियों के प्रति कवि प्रतिभा का आक्रोश एवं सामयिक बुराइयों के प्रति क्रोध है । जब समाज में विद्रूप बढ़ता है तब कवियों का मन उसके प्रति प्रतिक्रियात्मक बनता है । इसलिए इस शताब्दी के अंतिम चार शतकों की कविताओं में व्यंग्य का नारा बुलंद है ।

यहां केवल ऐसे कृतिकारों के व्यंग्य पर विचार किया गया है जो प्रस्तुत पक्ष को महती योगदान से उदात्त करने का प्रयत्न कर चुके हैं या करते आ रहे हैं । इनके अलावा अनेकानेक ऐसे छोटे-बडे हिन्दी कवि हैं जिन्होंने कतिपय व्यंग्यकविताओं से सीमित रूप में ही सही व्यंग्य काव्य को समृद्ध किया है । उनका दिङ्मात्र परिचय भी यहां संभव नहीं हो पाया है । बीसवीं शताब्दी की कविताओं में ठोस रूप से जिस व्यंग्यधारा का सशक्त प्रवाह है उसी को प्रस्तुत करने का ही यहां मन्तव्य रहा है ।

*****

छठा अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य व्यंग्य कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

भारत की स्वतंत्रता के समय हिन्दी काव्य में विभिन्न धाराओं का प्रचलन था। राष्ट्रीयवादी धारा के रचनाकार मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन एवं हरिकृष्णप्रेमी, छायावादी कवि निराला, पंत, महादेवी आदि, प्रगतिवादी कवि दिनकर, शिवमंगल सिंह "सुमन" एवं नागार्जुन और प्रयोगवादी कवि अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, भरतभूषण अग्रवाल के साथ साथ नई कविता के बहुत से कवि देश के बदले हुए वातावरण को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दे रहे थे। सब की अलग अलग दृष्टियां थी। इसके मुताबिक सबों ने स्वतंत्रता के आगमन का स्वागत अपने ढंग से किया। पुराने एवं नवीन विद्वान लेखकों ने इसे एक उपलब्धि के रूप में ग्रहण किया। परंतु जब स्वतंत्रता का विधान हुआ एवं उनका मोह भंग हुआ तब वे भी कोप कलुषित हो गए थे।

लम्बी अवधि के पश्चात् एवं लम्बी पीडाओं के सहन करने के बाद देश स्वाधीन हुआ । इस स्वाधीनता के सन्दर्भ में लाखों लोगों को शहीद होना पडा । इसके बावजूद कई लोगों को अपनी जवानी जेलों की भयानक कोठरियों में काटनी पडी । शायद इसलिए एक ओर तो स्वाधीनता प्राप्त होते ही देश का युवा मन अनंत संभावनाओं से आन्दोलित हो उठा होगा । इसके बावजूद उसकी आशाएं विभिन्न दिशाओं में जागीं । लेकिन दूसरी ओर, उन लोगों ने देश के विभाजन के परिणाम स्वरूप रक्तपात, उत्पीडन, अत्याचार आदि के अमानुषिक दृश्य देखे । इसके बीच में ही गांधीजी की हत्या कर दी गई । ऐसी राजनीतिक वातावरण में कवि का तर्कशील मन पूर्णता उल्लसित न हो सका एवं उसने इस संपूर्ण स्थिति को एक दायित्व के रूप में ग्रहण किया ।

स्वाधीनता के आस पास के कवियों में सर्वाधिक उत्फुल्लता एवं उत्साह के दर्शन हुए । इस धारा के सभी कवियों यथा मैथिलीशरण, माखनलाल जी, नवीन आदि ने स्वाधीनता संग्राम में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया था एवं माखनलाल जी एवं नवीन जी को तो लम्बी अवधि अंग्रेज़ों की जेलों में काटनी पडी थी । अतः यह स्वाभाविक है कि वे स्वाधीनता के दिन में अतीव आनन्द तथा उत्साह का अनुभव करते । इस समय के सभी कवि पुनरुत्थान की भावना से अनुप्राणित थे एवं स्वाधीनता प्राप्ति के आरंभिक काल में इन्होंने निश्चय ही उसका मुक्त भाव से स्वागत किया, क्योंकि गांधीजी के साथ साथ इस काल में कवि भी राम-राज्य का सपना देख रहे थे । डॉ॰ रघुवंश ने इस सपने पर व्यंग्य करते हुए लिखा, "उनके रामराज्य में राजा और प्रजा की स्थिति इस प्रकार निश्चित है कि वे राजा पर सारे रामराज्य की व्यवस्था का भार सौंप कर निश्चिंत हो जाते हैं ।

उन से इससे अधिक की आशा करना व्यर्थ भी था।[1] आज़ादी के प्रारंभिक काल में इन कवियों ने शासन की बुराइयों एवं कमियों को आलोचना का विषय नहीं बनाया। इन लोगों ने यह भी नहीं स्वीकारा कि मूल्यों का इतना विघटन हो चुका है कि अब सुधार की कोई गुंजाइश नहीं रही। वे सावधान होकर देश के नए कार्यकलापों एवं शासन रीति का अध्ययन करते रहे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब स्वदेशी शासक मनमानी शासन करने लगे तो, जिस शासन की स्थापना के लिए इन कवियों ने जीवन भर संघर्ष किया उसके स्थापित होते ही ये उसके प्रति भी खड्गहस्त हो जाते। अतः जब इन्हें लगा कि विदेशी शासन की बुराइयां स्वदेशी शासकों में भी आ गई हैं, उन्हें मौन रहकर सहन करना कठिन है, तब इन कवियों ने भी प्रहार केलिए अस्त्र उठाया।

जब राष्ट्रवादी कवियों का पूर्णः मोहभंग हो गया, तब वे शासन का विरोध करने से नहीं चूके। लगभग सन् 1940 से लेकर 1960 तक के राष्ट्रवादी कवियों ने विसंगतियों पर अपने अपने ढंग से प्रहार किए। माखनलाल चतुर्वेदी ने स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् काफी समय तक शासन की आलोचना नहीं की, शायद इस आशा में कि इतने बलिदानों के बावजूद आजादी का संगोपन बलिदानों के अनुरूप ही होगा। लेकिन ज्यों ज्यों उन्होंने पाया कि भ्रष्टाचार भूल से नहीं, जानबूझकर स्वार्थवश हो रहा है, तो वे स्वदेशी शासन के आलोचक भी बने एवं उन्होंने व्यंग्य भी किया। "हिम किरीटिनी" (1941) हिम तरंगिनी (2008 वि॰) माता (2008) समर्पण (2013) युगचरण (2013 वि॰) इन की काव्य कृतियां छायावादोत्तर काल की रचनाएं हैं।

---

1. डॉ॰ रघुवंश : साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - पृ॰ 134-135

इनकी कृतियों में स्वतंत्रता संघर्ष एवं सामाजिक समस्याओं का भी स्वर सुनाई पड़ता है। माखनलाल में व्यंग्य का भाव पीड़ा लिए हुए आया है कुछ इस शैली में मानो वे अपने ऐसे सगों से शिकायत कर रहे हों जिस से उन्हें बहुत आशाएं थीं। "उलाहना" अपनों को ही तो दिया जाता है न। इसी शीर्षक कविता में माखनलाल जी ने अपने शासक साथियों पर व्यंग्य करते हुए सन् 1956 में लिखा -

भुला दी सूलियाँ जैसे जमाने में
सभी कुछ तालियों में पा लिया तुम ने।
न तुम बहले, न युग बहला, भले साथी
बताओ तो किसे बहला लिया तुम ने।
x x x x
तुम्हारी चरण रेखा देखते हैं वे
उन्हें भी देखने का तुम समय पाओ
तुम्हारी आन पर कुरबान जाते हैं
अमीरी से जरा नीचे उतर आओ।
तुम्हारी बाँह में बल है जमाने का
तुम्हारे बोल में जादू जगत का है,
कभी कुटिया निवासी बन जरा देखो
कि दलिया न्योतता रमलू भगत का है।[1]

कवि ने प्रस्तुत व्यंग्य उलाहने के रूप में अपने उन साथियों के प्रति किया है जो एकाएक बड़े बन गए हैं और उन्हें "छोटापन" से कोई सरोकार

---

1. आधुनिक कवि - 6. माखनलाल चतुर्वेदी [पहला संस्करण] पृ. 138-139

नहीं रह गया है । इसके बावजूद उन्होंने और आगे बढ़कर आज़ादी के बाद पनपने वाली खुदगर्जी, बन्दर-बाँट नीति आदि पर कसकर व्यंग्य किए । "खेतों से पूछो" में उन्होंने लिखा है -

आज़ाद हो गए । बेगर्जी रक्खेंगे।
जिम्मेवारी है, हम मर्जी रक्खेंगे ।
मर्जी रख लेते यदि हम पहिले स्वामी
तो हंसने को क्या कम थी वही गुलामी ।
स्वतन्त्र पड़ गया अब तो हाथ हमारे
अब लाख विनोबा विनती करें, पुकारे ।
हम हैं, हमने तो तोड तोड खाया है
कोई क्यों बोले। हिस्से में आया है[1] ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग दस वर्ष बाद रचित उनकी कविता "कागज़ की पतवार" [1957] में तत्कालीन नेतृत्व पर व्यंग्य का तीखा तमाचा जड़ते हुए कहा गया है कि जो लोग स्वयं कागज़ी है, वे माता की पतवार बनने का दम भर रहे हैं अर्थात् जो स्वयं ही पथभ्रष्ट हैं वे जनता जनार्दन को कौन सा पथ दिखाएंगी । यह रचना ओछे और नकली नेताओं पर, भ्रष्ट प्रशासकों पर करारा एवं सच्चाई से भरपूर व्यंग्य करती है -

"समझ गए तुम गलत कि बस अब सारा काम तमाम हो गया,
चार महीनों की जेलों ने आज़ादी दी - राम हो गया ।
x x x
कहा समस्या ने - रे स्वार्थी, तेरे बुद्धि विचार नहीं है
मैं ने सुना - सभा में मेरी क्यों अब बन्दनवार नहीं है ।

---

1. आधुनिक कवि - 6 - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ. 142-43

कुछ वर्षों के शिशु - शासन पर हम बूढे चढ बैठे ऐसे
मीठी कुरसी, मीठे रुपए, मीठे सपने कैसे-कैसे ।
मेरा लड़का, तेरा नाती, उसकी भावज, उसकी बेटी
तू सच्चा है, पक्षरहित है, अन्धे तू परोस दे रोटी ।

"कागज़ की पतवार" आग बरसाती हुई कविता है । बरसों जेल में रह कर भी आज़ादी पा जाने पर जिस में स्वार्थ - लोलुपता का लेश भी न हो, वह जब चार महीने जेल में रहकर आ जाने वाले स्वार्थी नेताओं को गुलछरे उडाते हुए पाये, तो उसके द्वारा किया जाने वाला यह व्यंग्य स्वाभाविक ही लगता है । यह व्यंग्य एक ऐसे तपे हुए कवि की वाणी है, जिसने दर्द को साक्षात् भोगा है, उसकी अभिव्यक्ति में यथा संभव संयम बरता है, मगर जब सब कुछ हद से गुज़र गया तो निर्भीक मन से प्रहार भी किया है¹।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी एक कविता में रेल यात्रियों की दुर्दशा का व्यंग्यात्मक नक्शा खींच कर कहा है कि जब मेरे जैसे व्यक्ति की "भारतीय रेल में यह दुर्गति हो सकती है तो साधारण व्यक्ति तो सचमुच बहुत संकट में होगा । राष्ट्रीयता में लगातार संलग्न नवीन जी को अपने जीवन के अंतिम चरण में भयंकर बीमारी का सामना करना पड़ा । मोहभंग उनका भी हुआ लेकिन अपने मोहभंग को पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर पाए ।

निष्कर्ष रूप में बताया जा सकता है कि माखनलाल की रचनाओं में निश्चित रूप से व्यंग्य की प्रहार धर्मिता अपने संपूर्ण एवं बिखरे हुए रूप में उपलब्ध होती है । लगभग इसकाल की मैथिलीशरण की रचनाओं में व्यंग्य का वह रूप प्रस्तुत नहीं कर पाए जिस की अपेक्षा उन जैसे कवि से की जा सकती है । नवीन में भी वह आग देखने को नहीं मिलती, जो

---

1. आधुनिक कवि - 6 - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ.144

उनकी 1945 की पूर्व रचनाओं में विद्यमान थी । लेकिन डॉ. रघुवंश लिखते है कि "राष्ट्रवादी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन में स्वाधीनता के बाद अध्यात्म तथा रहस्य का विशेष आग्रह बना है । लगता है, आदर्शवादी राष्ट्र प्रेम का यही पर्यवसान है, देश की स्वाधीनता के बाद देश के संबन्ध में जैसे उनके पास कहने केलिए विशेष कुछ रहा नहीं है"[1]।

माखनलाल की ही उपर्युक्त ताज़ी, पैनी एवं सच्ची कविताओं को देखते हुए तथ्यहीन लगने लगता है । नवीन भले ही सटीक व्यंग्य न दे पाये हों, मगर राष्ट्रवादी कवियों में माखनलाल एक ऐसे स्तंभ हैं जो अपनी 1945 के बाद सच्ची एवं व्यंग्ययुक्त रचनाओं के कारण राष्ट्रवादी धारा पर यह आँच नहीं आने देते कि राष्ट्रवादी कवियों ने आज़ादी को मुग्धभाव से लिया एवं देश की स्वाधीनता के बाद देश के संबन्ध में जैसे उनके पास कहने केलिए कुछ नहीं रहा ।

वैसे ही राष्ट्रवादी कवियों में हरिकृष्ण "प्रेमी" का नाम भी अलग से लिया जा सकता है । उन्होंने इसकाल में की चरित्रहीनता स्थितियों पर जम कर व्यंग्य किया । स्वाधीनता के बाद पनपी आपाधापी एवं विसंगतियों पर उन्होंने व्यंग्य किया है[2] ।

स्वदेशी शासन के भ्रष्टाचारों पर व्यंग्य पहार करने के साथ साथ दो विदेशी आक्रमणों के संदर्भ में प्रेमी जी ने लिखी अपनी कविताओं में विदेशी शासनों की अदूरदर्शिता तथा शेखचिल्लीपन पर व्यंग्य करके पूरी

---

1. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - रघुवंश - पृ. 153
2. संघर्ष के स्वर - पृ. 119

तरह जता दिया कि उनमें राष्ट्रीयता की भावना का अभी भी ह्रास नहीं हुआ है। भारत ने चीन को जितनी सहायता तथा प्रोत्साहन दिया, यह किसी से छिपा नहीं है, किन्तु जब इसी चीन से सन् 1962 में चोरी-छुपे भारत पर आक्रमण कर दिया तो प्रेमीजी को व्यंग्य करने केलिए विवश होना पड़ा[1]।

प्रेमी ने अपनी कविताओं को चीख की संज्ञा देते हुए अत्यंत मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा - "मेरा देश प्राणवान बने, देश की आज़ादी और उसके स्वाभिमान की रक्षा हो, राष्ट्रीय एकता स्थापित हो, आर्थिक और सामाजिक विषमताएं दूर हों, स्वार्थपरता और बेईमानी समाप्त हो तथा त्याग और बलिदान की भावना जनमानस में भरे, मेरी इन रचनाओं की यही पुकार है। यह तो एक चीख है - कविता के गुण इस में है, या नहीं यह तो मैं नहीं जानता[2]।

1945 के बाद की कवियों में भी उनकी प्रकृति के अनुरूप बदलाव आ गया था एवं उनमें भी इस अवधि की विसंगतियों को देखकर उतना ही क्षोभ उत्पन्न हुआ जितना पूर्णतः युवा पीढी में। हाँ, इस क्षोभ को अभिव्यक्त करने की शैली में अन्तर होना अस्वाभाविक नहीं है।

1945 तक छायावाद प्रायः समाप्त हो चला था, किन्तु कतिपय छायावादी कवि अवश्य ही रचनारत थे। सर्वश्री सुमित्रानंदन पंत, बच्चन, नरेन्द्रशर्मा, अंचल प्रभृति कवि निरन्तर कुछ न कुछ लिख रहे थे। पंत स्वयं को युगानुरूप बदल रहे थे एवं उधर बच्चन तथा

---

1. संघर्ष के स्वर - पृ.29
2. वही एक चीख [भूमिका]

नरेन्द्रशर्मा अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक बनने की दिशा में प्रयत्नशील थे। छायावादी कवियों में महादेवी जी ने इस अवधि में कोई ऐसी काव्य रचना नहीं की, जिस में युग की सामाजिक या राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति व्यंग्य भाव के दर्शन होते। वैसे ही भगवती चरण वर्मा उपन्यास लेखन की ओर उन्मुख हो गए थे। डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने 1958 में प्रकाशित अपने महाकाव्य "एकलव्य" में व्यंग्य का वह रूप अवश्य दर्शाया है जो विसंगतियों एवं विवशताओं की अभिव्यक्ति करके प्रहार भी करता है। सामाजिक, राजनीति एवं आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन के साथ साथ छायावादी कवियों में भी इतना परिवर्तन आ चुका था कि वे प्र चलित अर्थों में छायावादी नहीं रह गए थे।

बच्चन पूर्णतः छायावादी कभी रहे ही नहीं, पन्त एवं नरेन्द्र शर्मा भी इस अवधि में प्रगतिशील बनकर लोकोन्मुख हो चुके थे। निराला अपना अधिकांश साहित्य स्वातंत्र्य पूर्व लिख चुके थे।

युगवाणी एवं ग्राम्या में पंत ने 1945 के पहले तक की अवधि में जनसामान्य के जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए थे। लेकिन स्वाधीनता के बाद पंत की कविता में अनुभूति का वह ताप देखने में नहीं आया जो उन्हें यथार्थ व्यंग्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता। "लोकायतन" में पंतजी ने थोडा बहुत व्यंग्य किया है, लेकिन सूक्ष्म निरीक्षण करने पर वह नितांत व्यक्तिगत द्वेष का उदाहरण बनकर रह जाता है। "लोकायतन" कार कलद्वार के अन्तर्गत द्वन्द्व शीर्षक उपखंड में जड़ीभूत गतानुगत मूल्यों के प्रतिनिधि के रूप में "माधो गुरु" को प्रस्तुत करके अप्रत्यक्ष रूप से एक कवि विशेष पर प्रहार करता है।

जैसे -

अश्विमा का करने अभिषेक सभी कुछ कर देते वह दान
स्वल्प निज संचय से हो शून्य सहज आकर्षित करते ध्यान
लोग समव्यथा दया से आर्द्र निछावर करते उन पर प्राण
बन गए माधो गूढ़ रहस्य नित्य जन बुनते नव आख्यान ।[1]

यह मात्र शंका नहीं है बल्कि इस शंका का सहज समाधान उस स्थल पर मिल गया है जबकि आगे पन्तजी "राम की शक्तिपूजा" का नाम लेकर उस कवि पर व्यंग्य बाणों की झड़ी लगा देते हैं । जैसे -

"शक्ति पूजा की जय सर्वत्र सत्य पूजा का अर्थ विनाश"[2]

"एकलव्य" में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगतियों का तालमेल किस प्रकार व्यक्ति को तोड़कर समूचे परिवेश को विश्रृंखलित कर डालता है - इस का वर्णन है । आर्थिक विषमता के कारण आचार्य द्रोण ने गुरुकुल को छोड़ कर राजकुल की शरण ली थी, साथ ही वे, भीष्म की राजनीति एवं तत्कालीन सामाजिक स्थिति से भी परिचित थे । यही कारण था कि एकलव्य के निवेदनों को उन्होंने प्रोत्साहन नहीं दिया । इसलिए निराश किए जाने के बावजूद जब एकलव्य धनुर्वेद की एकांत साधना का संकल्प करता है, तब वे पीड़ित होकर व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोल पड़ते हैं -

राजगुरु हूँ, विशेष पद की मर्यादा है
शिक्षा नीति राजनीति के पदों से चलती

---

1. लोकायतन - पृ. 338
2. एकलव्य - पृ. 126-127 (336)

शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में
गुरुकुल है कहाँ, यहाँ तो राजकुल है[1] ।।

इसमें सन्देह नहीं है कि "एकलव्य" महाकाव्य महाभारत की गाथा के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक विसंगतियों का उद्घाटन भी सहज भाव से करता चलता है -

"शिक्षा नीति राजनीति के पदों है चलती - तथा
शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में" -

आचार्य द्रोण से कहलवाकर कवि ने शिक्षा शास्त्री के आंतरिक दर्द को व्यंग्यपूर्ण अभिव्यक्ति दी है । वैसे ही द्रोण का पुनः यह स्वीकार करना कि मैं राज्याश्रय में पड गया हूँ, इसलिए अन्य किसी को शिक्षा कैसे दे सकूँगा, उनकी दर्द की व्यंग्यात्मक व्याख्या करता है -

"अन्य को मैं कैसे शिक्षा दे सकूँगा इच्छा से
गुरुकुल स्वामी नहीं, राजकुल सेवी हूँ"[2] ।

रामकुमार वर्मा ने इस महाकाव्य के माध्यम से ऐसी प्रत्येक स्थिति के व्यंग्य को उभारा है जो व्यंग्यास्पद है । यद्यपि एक प्राचीन कथा पर महाकाव्य लिखने की अपनी सीमा थी, फिर भी कवि का दृष्टिकोण पूर्णतः जागरूक रहा है ।

---

1. एकलव्य - पृ.126-27
2. वही पृ.222

गांधीजी की हत्या कर जाने से समस्त विश्व मानवता हिल गई । इस दारुण विडम्बना पर बच्चन ने "सूत की माला" में कई महत्वपूर्ण रचनाएं लिखीं । यह स्थिति विश्व जन-मानस को झकझोर देने वाली थी और इस का व्यंग्य भी करुण रस में सिक्त था ।

क्रूर हिंसा से अहिंसा का सफाया
क्या यही अब देश का होगा रवैया
एक युग तक जो किया था या कराया
हाय उस पर
आज पानी फिर रहा है[1] ।

बच्चन सदा ही जनता के कवि रहे हैं । निजी सुख-दुख के गीतों में भी उन्होंने जनसामान्य को अपनी पीडाओं एवं सुखों से असंपृक्त नहीं रहने दिया । यही कारण है कि बच्चन में सरकारी तंत्र, नौकरशाही, राजनीतिक भ्रष्टाचार, आधुनिक सभ्यता की विसंगतियों आदि पर उपहासयुक्त व्यंग्य मिलता है । भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की पुण्य स्मृति में रचित "ताशकंद" कविता में बच्चन ने लालबहादुर जी के महामानवत्व की अभिव्यक्ति के साथ साथ, शास्त्रीजी द्वारा "मुक्तिबोध के जीवन के अन्तिम दिनों में सरकार द्वारा प्रदत्त सहायता के प्रति भी आभार व्यक्त किया है । किन्तु बच्चन इस कविता में साहित्यकार, कलाकार एवं कवि के दैन्य पर व्यंग्य करने से चूके नहीं -

---

1. आधुनिक कवि : बच्चन - पृ. 102

अपने भारतवर्ष केलिए
कोई छोटी बात नहीं है
कलाकार, साहित्यकार, कवि
अंत समय पर,
मरने की साधारण सुविधाएं पा जाए ।[1]

सरकार के उच्च पद पर बने रहने एवं जीवन की सामान्य सुख सुविधाएं प्राप्त करने के बावजूद बच्चन ने युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों पर जितना व्यंग्य किया है, उसे संतोषप्रद कहा जा सकता है । इस संतोष का कारण यह है कि अन्य प्रौढ छायावादी कवि पहले तो व्यंग्य को अनुदात्त मानने के पूर्वाग्रह से ग्रस्त थे, एवं दूसरे सम्मान के जिस उच्च आसन पर वे विराजमान थे, उससे उतरकर जनसामान्य के दु:ख दर्द को व्यंग्य के माध्यम से वाणी देने, राज नीति की विसंगतियों की बखिया उधेड़ने के प्रति उन्होंने कोई विशेष कदम नहीं उठाया । इस दृष्टि से बच्चन का योगदान अनुल्लेखनीय नहीं है ।

"बुद्ध और नाचघर" कविता में बच्चन ने बुद्ध को संबोधित करके आज के युग की विडम्बना को उभारने का प्रयत्न किया है ।

बुद्ध भगवान
अमीरों के ड्राइंग रूम
रईसों के मकान
तुम्हारे विचारों से अनजान
सपने में भी उन्हें इसका नहीं आता ध्यान ।
शेर की खाल, हिरन की सींग,

---

1. उभरते प्रतिमानों के रूप - पृ.36

कला-कारीगरी के नमूनों के साथ तुम भी हो आसीन,
लोगों की सौंदर्य प्रियता को
देते हो तस्कीन
इसलिए तुम ने एक की थी आसमान जमीन[1] ।

प्रस्तुत कविता में कवि ने उन अमीरों एवं रईसों की आलोचना की है जो बुद्ध के सिद्धांतों एवं आदर्शों को समझे बिना अपने ड्राइंग रूम को सजाने केलिए शौकिया तौर पर बुद्ध की मूर्ति भी सजा लेते है । इस कविता में निहित व्यंग्य को स्वीकार करने के सम्बन्ध में दो प्रगतिशील आलोचकों डॉ॰रामविलास शर्मा एवं डॉ॰ नामवर सिंह में पर्याप्त मतभेद है । डॉ॰ रामविलास शर्मा जहाँ इस कविता के व्यंग्य और पूंजीवादी समाज व्यवस्था का खोखलापन प्रकट करने की इसकी प्रगतिशीलता से अभिभूत है,[2] वहाँ डॉ॰ नामवर सिंह इसे मात्र एक सपाट कथन मानते हुए लिखते हैं - "माना कि इस में अमीरों और रईसों की आलोचना है और इस दृष्टि से यह कविता प्रगतिशील भी कही जा सकती है किन्तु इस में व्यंग्य किधर से है : कला-कारीगरी के नमूनों के साथ बुद्ध के भी आसीन होने में या लोगों की सौन्दर्यप्रियता को तस्कीन देने में। किन्तु क्या "इसलिए तुमने एक की थी आसमान - जमीन" जैसा वाक्य सारे व्यंग्य का पटरा नहीं कर देता। व्यंग्य केलिए बच्चन ने जिस ठेठ हिन्दुस्तानी का प्रयोग किया है वह मोंडे हास्यरस के बाजारू कवियों की अँग्रेज़ी मिली हिन्दी से अधिक कलात्मक नहीं है"[3] । ऐसा कहकर डॉ॰ नामवर सिंह भी इस के व्यंग्य को समझते तो है; लेकिन उनका तर्क सर्वथा उचित है कि यह कविता सपाट कथन होकर रह गई है और

---

1. बच्चन : आधुनिक कवि - 7, पृ॰133
2. डॉ॰ आस्था और सौन्दर्य - डॉ॰ रामविलास शर्मा - पृ॰156
3. कविता के नए प्रतिमान - डॉ॰ नामवर सिंह - पृ॰40-41

उसमें निहित व्यंग्य उसकी कवित्वहीन भाषा के कारण छूमंतर हो गया है । लेकिन यह स्वीकार करने से इनकार नहीं किया जा सकता कि "बुद्ध एवं और नाचघर बच्चन की पर्याप्त चर्चित व्यंग्य कविता रही है ।

इसके बावजूद बच्चन ने युगीन विडम्बनाओं को उभारा है, तो व्यंग्य तीखा हो गया है एवं कहीं कहीं उन्होंने इन विसंगतियों पर बहुत हल्की एवं निरापद सी चोट की है । उनके संकलन "दो चट्टानें" में "26-1-63", "बाढ-पीडितों के शिविर में", "कुक-डूं-कूं", "गैंडे की गवेषणा", "श्रृगालासन", "काठ का आदमी", "दो बजनिए" आदि कुछ ऐसी कविताएं हैं जो या तो व्यंग्यात्मक हैं अथवा व्यंग्य प्रधान हैं । "26-1-63" में गणतंत्र दिवस की परेड में बंदूकें-घोडे, ट्रक-टैंक लेकर निकलने वाली सेना के नौजवानों का चित्रण है -

वे झंडों से सजी राजधानी के अन्दर
बैंड बजाकर बतलाते हैं -
ये सेना के नौजवान हैं
जो दुश्मन के मुकाबले में
नहीं टिक सके :
ये बन्दूकें, जिनके घोडे
अरि की बंदूकों की गोली की वर्षा में
नहीं दब सके ।

"बाढ पीडितों के शिविर में" कविता इस विडम्बना को उभारती है कि बाढ पीडित लोगों के शिविर में नेतागण भाषण तो दे जाते हैं, सरकार को बदल डालने, कानून भंग करने की सीख भी दे जाते हैं, पर उनकेलिए कोई आवश्यक मदद नहीं जुटाते । प्रस्तुत कविता में देश में पनप रही हर हाल में भाषण देने एवं कुछ न करने की मनोवृत्ति पर व्यंग्य है ।

---

1. दो चट्टानें - बच्चन - पृ.24

"कुक-ड़ू-कूं" में आत्म प्रशंसा में लीन मुर्गानुमा आदमियों की कुकड़ूं-कूं और "गेंडे की गवेषणा" में आधुनिक अहंवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। श्रीगालासन में ऊंचे नीचे पदों पर बैठे अयोग्य लोगों पर प्रहार है एवं "काठ का आदमी" में मानवीय क्लीबता एवं व्यक्तित्वहीनता पर व्यंग्य है।

कवि की मान्यता है कि आज का आदमी हाड-मांस के आदमी की तरह जीवन नहीं जीता, उसका कोई व्यक्तित्व नहीं रह गया है, न वह पूरी तरह सुखी हो पाता है न दुःखी। उसमें सृजन शक्ति नहीं है एवं उसकी नियति मात्र हाथ उठाना ही है। "दो बजनिए" में कवि ने नपुंसक बजनियों की करुण मनोभावना को उभारा है जो दूसरों के सुखों-शादियों में शामिल होकर गाते हैं, ऐसा करना ही जिनकी नियति है। ये दोनों बजनिए अपनी विडम्बना और करुणा का बखान करते करते यह संतोष भी कर लेते हैं कि कम से कम हम उन लोगों से तो बेहतर हैं, जो अपनी बारात का बाजा खुद बजाते हैं।

"बहुत दिनबीते" संग्रह की पहली कविता" एक प्रार्थना" व्यंग्य प्रधान है। कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि देश में काव्य कला, मूर्तिकला, संगीतकला आदि समस्त चौंसठ कलाओं का विकास हो, यहां तक कि चित्रकला के साथ विचित्र कला का भी विकास हो, पर "सिद्ध करने की कला" का विकास न हो, क्यों कि तब लोग खरे को खोटा, रात को दिन, हाथी को चींटी, सीटी को भोंपू, माले को पिन, लवे को बाज, तवे को परात एवं शवयात्रा को बरात सिद्ध करना सीख जाएंगे। यह कविता अपरोक्ष रूप से उन बुद्धिजीवी चतुरों पर व्यंग्य करती है जो इसी कला का सहारा लेकर यह सब कर रहे हैं। "भारत के सांप" कविता में सरकारी दफ्तर की सतही कार्रवाही पर व्यंग्य है जिसका परिणाम मात्र "ढाक के तीन पात" होता है। इस कविता में "भारत के सांप" को प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया गया है -

भारत की गरीब जनता तक
कैसे यह पुस्तक पहुचेगी ।
भारत की नंगी-भूखी जनता के आगे
खडी समस्यायें जितनी हैं
उनमें क्यों दी गई प्राथमिकता इसको ही,
वह सांपों का ज्ञान बढाए ।

जनता की उक्त प्रतिक्रिया पर कवि यह टिप्पणी करता है कि मैं आपकी बातों से सहमत नहीं हूं । भारत के इतिहास, धर्म, संस्कृति के पीछे सांपों की भूमिका निश्चय ही बहुत बडी है, पर विडम्बना तो यह है कि इस पुस्तक में भारत के सबसे ज्यादा जहरीले सांपों का कहीं जिक्र नहीं हैं, अर्थात् जिन्होंने भारत की संस्कृति एवं धर्म को डस कर मृत प्राय बना दिया है, पुस्तक में उन सांपों का जिक्र क्यों नहीं है। "बाढ" शीर्षक कविता में बाढ के प्रतीक से आधुनिक युग में आई अवमूल्यन, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार की बाढ में गुरु-गरू, भारी भरकम, लोह-ठोस, टन-मन वजनदार के डूब जाने एवं ऊपर ऊपर उतारने वाले किरासिन के खाली टिन, डालडा के डिब्बों, पोलवाले ढोल, डाल-डलिए-सूप, काठ-कबाड़-कतवार की विडम्बनापूर्ण स्थिति को उभारा गया है । आधुनिक युग की विसंगति को उभारने में यह कविता पर्याप्त सफल है । "खल युग का कोरस" में बच्चन ने आल्हा की ताल और ट्विस्ट की लय ग्रहण करते हुए गीत के माध्यम से युग की आपा-धापी, भ्रष्टाचार और गुंडा-गर्दी पर व्यंग्य करने के साथ साथ उन पर भी व्यंग्य किया है जो मौन तटस्थ भाव से बैठे हैं एवं इस जुल्म को गांधीजी के सिद्धान्तों की ओट में सह रहे हैं । "युग की बौद्धिकता" में दिशाहीन एवं विवेकहीन विद्रोह पर, तो "खोटा सिक्का" में आज की खोटा सिक्का चलाऊ मनोवृत्ति पर कटाक्ष है ।

इसके बावजूद बच्चन ने एक लंबी अवधि तक सरकारी तंत्र के भ्रष्टाचार, विवेकहीनता, नौकरशाही को देखा है । युग के विघटन, विखंडन एवं

काव्य संकलनों - "कटती प्रतिमाओं की आवाज़" एवं उभरते प्रतिमानों के रूप" में भी दिखाई देती है । "कटती प्रतिमाओं की आवाज़" की अधिकांश रचनाओं में वर्तमान व्यवस्था पर करारी एवं मारक चोट नहीं है, बल्कि चुहुल एवं हल्कि फब्तियों की शैली है । चर्चा, परिवार नियोजन, प्रायश्चित, दो नगी, नियमावलियां, नतीजे, नई लीक, दो पीढ़ियां, कविता और राजनीति, कवि और राजनीतिज्ञ - संकलन की ऐसी ही कविताएं है" ।

इस के अलावा बच्चन की "कवि बरबक्स मंत्रित्व" में थोड़ा आक्रोश-युक्त व्यंग्य है । इस रचना में भी आक्रोश ही अधिक है विडम्बना को उभारने का प्रयत्न बहुत कम । "उभरते प्रतिमानों के रूप" में कई कविताएं ऐसी हैं जिनमें सूझ भी है एवं व्यंग्य भी । "शुद्ध दूध", दो जंगम राजनीतिज्ञों की जड़मूर्तियों, "महान्गार, आदि कविताओं में बच्चन के व्यंग्य की तीव्रता को आंका जा सकता है । "जातंत्र बनाम परिवार तंत्र", "दोहा मूरत", "जवाहर जयंती पार्क", "आजमूदा नुस्खा", "पहेली", जैसी अनेक कविताओं में बच्चन ने नेहरू युग और वर्तमान राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया है । अपितु यह व्यंग्य आक्रोश का स्वर लिए हुए नहीं हैं, खैर इसमें हल्का - फुल्का हास्य, चुंहुल एवं फब्ती अवश्य मिल जाती है । "आज़मूदा नुस्खा" कविता में लिखते हैं -

भ्रष्टाचारी पकड़ी गई है।
मंत्री जी को
एक बड़ा अभिनन्दन ग्रन्थ
समर्पित कर दो ।
बिगड़ा सब कुछ बन जाएगा' ।

1· उभरते प्रतिमानों के रूप - पृ·93

प्रस्तुत कविता में युग की विसंगति अपने करुण रूप में न उभर कर सीधे सपाट और हल्के फुल्के रूप में उभरती है। यद्यपि बच्चन ने अपनी अधिकांश व्यंग्य कविताओं में लोकतंत्र, सरकार, राजनीति, नेतागिरी आदि की कलई उतारने का काफी परिश्रम किया है। इन की कविताओं से यह महसूस होता है कि युगीन समस्याओं एवं संदर्भों पर बच्चन के सोचने का ढंग क्या है। राज्य सभा में काफी समय रहने के बावजूद बच्चन ने कभी कभी कोई राजनीतिक बयान नहीं दिया, हाँ कवि रूप में ज़रूर कुछ न कुछ कहते रहे हैं।

निष्कर्ष यह है कि बच्चन के व्यंग्य की भाषा बोलचाल की है एवं उसमें लय की सहजता है। डॉ॰ नामवरसिंह द्वारा "बुद्ध और नाचघर" के सपाटपन पर की गई टिप्पणी बच्चन की अन्य बहुत सी व्यंग्य कविताओं पर भी पूरी उतरती है। बच्चन की व्यंग्यात्मक या व्यंग्य प्रधान कविताओं का मूल्यांकन जब हम उनकी उम्र के कवियों की रचनाओं के संदर्भ में करते हैं, तो यह पाते हैं कि बच्चन में अपने रचनाकार की क्षमता की सीमाओं के बिना विघटन, एवं उस पर व्यंग्य करने की ललक तो है। यहाँ जिनेन्द्र पाठक का कथन जोड़ना समीचीन है - "जब इस अवस्था में कवि या तो चूक जाते हैं या फिर दर्शन की उक्तियों से उस अभाव को भरने लगते हैं, तब भी बच्चन के पास कहने को बहुत कुछ है। जो रोमानियत को सही धरातल देने वाला रहा हो उसी का दृष्टिकोण एक दम गैर रोमानी हो चुका है। यह कम बड़ी बात नहीं है"[1]। बच्चन की व्यंग्य कवितायें निश्चय ही महत्त्वपूर्ण हैं।

1· जिनेन्द्र पाठक : धर्मयुग 21, जून 1970 - पृ·21

छायावादी काव्य की प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल हास्य व्यंग्य की धारा प्रवाहित करने में निराला का सर्वाधिक योगदान है। सन् 1935 -36 के पश्चात् निराला की काव्य रचना में एक ओर हास्य व्यंग्य की प्रधानता हो गयी है एवं दूसरी ओर अत्यन्त भावात्मक आत्मनिवेदन परक गीतों का निर्माण होने लगा है। ध्यान देने की बात यह है कि निराला की आरम्भिक कविताओं में प्रगतिशीलता एवं क्रांति के तत्व व्यंग्यात्मक शैली में व्यक्त नहीं हुए हैं। प्रगतिशील रचनाओं में व्यंग्य के प्रयोग निराला की मनःस्थिति के द्योतक हैं। आत्मविश्वास एवं क्रान्त्युन्मुखता के ओजस्वी स्वर व्यंग्य एवं विनोद की अपेक्षा क्षीण ध्वनियों में परिणत हो गए हैं। इस बदले हुए रूप को कुछ लोग निराला की यथार्थवादी प्रवृत्ति का आधार मानते हैं। वैसी स्थिति में यह भी मानना पड़ेगा कि निराला की इस यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति में शक्तिमत्ता की कमी हो गई है। कहा जा सकता है कि निराला के आरम्भिक काव्य में आए हुए प्रगतिशील तत्व उनकी भावुकता के परिचायक हैं। जब कि उनकी परवर्ती कविता में व्यंग्य के माध्यम से आई हुई सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं के चित्र अधिक अनुभव प्रवण हैं।

यह तो ठीक है कि कवि क्रमशः आशा और आस्था की भूमि से हट कर अपने अनुभवों के आधार पर अधिक व्यावहारिक हो गया है। एवं इसी व्यावहारिक एवं मानसिक कटुता की परिचायक उनकी व्यंग्य की शैली है जो उनकी प्रगतिशील रचनाओं में प्रयुक्त हुई है। यह भी संभव है कि निराला इन कविताओं द्वारा पाठकों में अधिक क्षोभ की भावना उत्पन्न करना चाहते हैं। इसलिए व्यंग्यों के विषयासक्त अस्त्र का प्रयोग करते हैं।

यह बात निश्चित है कि निराला के प्रगतिशील काव्य के इस उत्तरार्द्ध में सामाजिक अनुभवों की अधिक गहरी अनुभूति है। राष्ट्रगीतों एवं अन्य सांस्कृतिक रचनाओं को छोड़कर निराला की अधिकांश प्रगतिशील

कविता चलती हुई भाषा में लिखी गई है । भावानुरूप भाषा के सिद्धांत मर्म को जानने वाले कवि निराला केलिए यह स्वाभाविक था कि वे व्यंग्य विनोद की शैली को अपनाने के पश्चात तदनुरूप भाषा का भी अनुसंधान करते एवं यही उन्होंने किया भी ।

सामाजिक जागरण का यथार्थवादी दृष्टिकोण, प्रगतिशील शैली में व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति, जिस में जीवन की अनेकमुखी दशाओं पर व्यंग्य है, निराला ने अपने इस संग्रह में इसको बडी कुशलता से प्रस्तुत किया है । व्यंग्यप्रधान कविताओं में "कुकुरमुत्ता" सर्वश्रेष्ठ है । कुकुरमुत्ता विनोद की सृष्टि पैदा करनेवाली एक विशिष्ट प्रकार की काव्य रचना है । आचार्य पं॰ वाजपेयी ने कहा है कि "कुकुरमुत्ता" में विनोद की सृष्टि अतिरंजित वर्णनों द्वारा की गयी है । यत्र-तत्र यथार्थवादी चित्रण की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है[1] ।

समीक्षकों ने कुकुरमुत्ता को जो सर्वहारा वर्ग का प्रतीक मानकर उसकी व्याख्या की - उसकी प्रशंसा हुई और उन्हें प्रगतिवादी कहना ही पर्याप्त समझा । परंतु इस में व्यंग्य के भीतर व्यंग्य है एवं इस व्यंग्य के भीतर व्यंग्य है । असली मतलब तो यह है कि केवल सर्वहारा वर्ग ही जाति का आदर्श नहीं हो सकता । इस में सब से पहले तो स्वयंकुकुरमुत्ता संसार भर की मूल्यवान उपलब्धियों का सृष्टा अपने को बताता है ।

कुकुरमुत्ता को निराला ने दलन हीन शोषित जनता का प्रतीक माना है एवं गुलाब को शोषक अभिजात वर्ग का - इस रूपक में परंपरागत भाषा, संगीत, उपमाएं शब्दचित्र आदि सब विलीन हो गए है एवं एक नई कला का जन्म हुआ है । यह कला कुकुरमुत्ता के समान ही बंजर धरती की उपज है, इस में रूप, गंध, रस आदि की कमी है । उसकी सामाजिक उपदेयता

---

1. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य - भूमिका

भारतेन्दु के बाद निराला ही ऐसे कवि हैं जो व्यंग्य की दृष्टि से सर्वाधिक मनन करने योग्य हैं । "कुकुरमुत्ता" निराला की प्रख्यात रचना है । अन्योक्ति की शैली में कवि पूंजीपतियों एवं साम्यवादियों, दोनों पर करारा व्यंग्य करता है । "लखनोआ बोली" की तर्ज "कुकुरमुत्ता" के करारे व्यंग्य में चटपटी चटनी का काम करती है । कुकुरमुत्ता का ऐंठ भरा "अबे" संबोधन पाठक के दिल को भुरभुरा बना देता है । लेकिन हास्य के चटपटे आवरण के नीचे "कुकुरमुत्ता" विपन्न एवं तिरस्कृत मानवता की आवाज़ है और है छोटों का आत्मबोध । कुकुरमुत्ता संसार के उपेक्षितों का प्रतीक एवं दीनों के प्रति निराला का काव्य दान है । "कुकुरमुत्ता" में निराला का निराला व्यक्तित्व पूरी तरह उभर आया है - फटी हालत में भी अकड़ के साथ सीना फुलाए हुए बड़े ठाठ से झूमते झामते चले जाने की अनोखी अदा किस के हृदय में फुरेरी न उठा देगी।

आया मौसम, खिला फारिस का गुलाब,
बाग पर उसका जमा था रोबदाब,
वहीं गन्दे में देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठा सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता -
"अबे", सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तू ने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट,
कितनों को तू ने बनाया है गुलाम,
माली कर रखा, सहाया जाड़ा-धाम ।
हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर पर रख व' पीछे को भागा
जानिब औरत की, मैदाने-जंग छोड़,

तबेले को टट्टू जैसे तंग तोड़
शाहों, राजों, अमीरों का रहा प्यारा,
इसलिए साधारणों से रहा न्यारा,
वरना क्या हस्ती है तेरी, पोच तू,
कांटों से है भरा, यह सोच तू ।
कली जो चटकी अभी,
सूखकर कांटा हुई होती कभी,
रोज पडता रहा पानी,
तू हरामी खानदानी।
चाहिए तुझ को सदा मेहरून्निसा,
जो निकाले इत्र, ऐसी दिशा ।

इतनी करारी झाड के बाद कुकुरमुत्ता गुलाब के साथ अपनी तुलना पर उतर आता है । वह तो जीवन की धरती से उगा और बढा है; वह अपने स्वच्छंद व्यक्तित्व का स्वयं निर्माता है; पोषण रक्षण के लिए किसी की रंचक मात्र अपेक्षा नहीं । जीवन के मौलिक आस्वाद को वह पहचानता है एवं दूसरों को भी जीवन के वास्तविक आनंद की अनुभूति कराता है । उसके महत्त्व को न समझनेवाले नवाब जैसे जड़ मति, हीन सौन्दर्यबोध वाले मनुष्य अपनी समृद्धि पर अभिमान भले कर लें, परंतु वे गुलाब की तरह जब और जहाँ चाहे वहाँ कुकुरमुत्ता को उगा नहीं सकते । अपेक्षाओं में जन्म लेकर भी कुकुरमुत्ता अप्रतिहत आत्मचेतना से भास्वर है ।

देख मुझको, मैं बढा,
डेढ बालिश्त और हूं ऊंचा चढा;
और अपने से उगा मैं,
बिना दाने का चुगा मैं,
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता

तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक,
तू रंगा और मैं धुला,
पानी मैं, तू बुलबुला,
तू ने दुनिया को बिगाड़ा
मैं ने गिरते से उभाड़ा,
तू ने रोटी छीन ली, जनखा बना,
एक की हैं तीन दीं मैं ने, सुना।[1]

जनता की संस्कृति की ओर कवि की अपील है। हमारी ऊपर की श्रेणी की तहजीब देशी नहीं है। यह कुकुरमुत्ते की तहजीब और उसकी संस्कृति का व्यंग्य चित्र है। जिसे उसका स्वाद लगा कि विदेशी रस नीरस हो गए। बाहर इसी देशी संस्कृति का प्रतीक है।[2]

कुकुरमुत्ता केवल व्यंग्यात्मक कविता है। दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में प्रलाप से, जो पूंजीवादियों का प्रतीक है, सर्वहारा के प्रतीक कुकुरमुत्ता की बातचीत वर्णित है। इस में यह भी दिखाया गया है कि साम्यवाद के समर्थक बकवादी हुआ करते हैं। द्वितीय भाग में साम्यवादी सिद्धांतों पर घातक प्रहार किया गया है। गोली एवं बाहर की मित्रता मानवतावाद पर आधारित है। जिसमें मैत्री संभव नहीं हो सकती।[3]

लोगों का इस बात पर मत भेद रहा है कि निराला इस कविता में किस पर व्यंग्य करना चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है। जो युद्धकाल में उनकी विशेषताओं के छिप जाने के कारण

---

1. कुकुरमुत्ता
2. कवि निराला एक अध्ययन - रामरतन भटनागर - पृ.209-210
3. क्रांतिकारी कवि निराला - डॉ. बच्चन सिंह - पृ.144-145

हुई है । कुकुरमुत्ता उनके अद्वैतवाद की नकल हो सकता है, क्योंकि ब्रह्म की तरह वह बलराम के हल से लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभी में व्याप्त है । इसके साथ वह दीन वर्ग का भी प्रतीक हो सकता है और खाद का खून चूसने वाले गुलाब को कैपिटलिस्ट कहकर निन्दा भी करता है । लेकिन दुनिया से गुलाब उडा दिए जाएं, यह बात ठीक नहीं बैठती । उपयोगितावाद के विकृत रूप को स्वीकार करने पर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी । शायद निराला ने प्रगतिवाद को इसी तरह का उपयोगितावाद समझा था । इसलिए कुकुरमुत्ता का व्यंग्य जहां गुलाब को मारता है, वहां खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है"[1] ।

इसी प्रकार विद्वानों में मतभेद रहा है । व्यंग्यात्मक चित्रण की अनेक मुखता की बहुलता इस में लक्षित होती है ।

वास्तव में निराला की कुकुरमुत्ता ने द्विवेदी युग एवं छायावादी काल की गंभीरता को झटका दिया एवं यह झटका उन्होंने हल्के फुल्के प्रसंगों में नहीं, अपितु "सरोज स्मृति" जैसे शोकगीत में दिया -

वे जो यमुना के से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाए के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर गंध,
उन चरणों को मैं यथा अंध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूं ऐसी नहीं शक्ति ।

---

1. नया साहित्य (पत्रिका) लेख - निरंजन - पृ.62

ऐसे शिव से गिरिजा विवाह
करने की मुझ को नहीं चाह ।[1]

निराला ने अपने परवर्ती काव्य में, जिसका निर्धारण 1938-39 से किया है, निराला जी समाज की प्रत्यक्ष भूमिका का निरीक्षण एवं प्रयोग करते हैं । सामाजिक व्यवहार की कुरीतियों को उनके अनेक मुखी छल कपटों को निराला जी अपने कथा साहित्य में चित्रित करते हैं । डॉ॰ रामविलास शर्मा ने व्यंग्य प्रधान साहित्य को लक्ष्य करके कहा है -

"यहाँ हम रहस्यवादी कवि श्री निराला की प्रतिभा का एक दूसरा पहलू देखते हैं । कल्पना लोक के आदर्शों के साथ एक बार जब वे यथार्थ संसार को देखने लगते हैं, तो आदर्शवादी भावनाओं को कठोर धक्का लगता है । मनुष्य अभी इस आदर्श से कितनी दूर है, कम से देश के प्रचलित राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक विचार लेखक के व्यंग्य का लक्ष्य होते हैं । समाज, देश या संसार, संतोषजनक दशा कहीं नहीं है । फिर भी लोग अपनी क्षुद्रता को महत्ता समझकर उस पर संतोष ही नहीं, गर्व का भी अनुभव किए बैठे हैं । ऐसे शिष्ट व्यंग्य, सच्ची अर्न्तव्यथा से निकला हुआ, जो पढते ही सहृदय को प्रभावित कर सके, साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है"[2] ।

इस प्रकार व्यंग्य लिखने की प्रतिभा उन में असाधारण रही है । "परिमल" काल से ही उनका इस ओर ध्यान रहा है । पंचवटी प्रसंग में शूर्पणखा के चित्रण में गुप्त हास्य की जो झलक है, उनकी प्रतिभा का सुन्दर नमूना है ।

1· अनामिका [तीसरा संस्करण] पृ॰129-30

2· स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य - डॉ॰रामविलास शर्मा - पृ॰125

छूट जाता है धैर्य ऋषि मुनियों का
देवी-भोगियों की तो बात ही निराली है[1]।

उनकी अनामिका संग्रह में यत्र तत्र हास्य एवं व्यंग्य के पुट दिखाई देते हैं। "दान", "मित्र के प्रति", "सच है", "बन बेला", "हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र", "उक्ति", "ठूठ" आदि कविताओं में व्यंग्य चित्रों का सजीव अंकन हुआ है।

डॉ॰ बच्चन सिंह ने "अनामिका" की व्यंग्यात्मक कविताओं के सम्बन्ध में लिखा है - "इन में शुद्ध व्यंग्य तथा सामाजिक दृश्यों का चुभता हुआ चित्रण हुआ है"[2]। "प्रगतिवादी भूमिका को अपना कर निराला जी उसकी सैद्धांतिक सीमाओं से दूर रहे हैं। जन मन की समस्याओं का खुला चिट्ठा पेश तो किया है, परंतु उसके स्वरूप को आकर्षक बनाकर। यही आकर्षण उनका हास्य विनोदात्मक तथा व्यंग्यात्मक प्रयोग है[3]। डॉ॰बच्चन सिंह ने इनको व्यंग्य विनोद तथा यथार्थ चित्रण के रूप में रखा है।

इस काव्य क्रम का स्वाभाविक विकास कुकुर मुत्ता एवं नए पत्ते है। जो संगीत माधुरी निराला के छायावादी काव्य में थी, आज वह लगभग विलीन हो चुकी है। कवि ने आज कठोर, क्रूर यथार्थ का वरण किया है। स्वप्नों का श्रृंगार उसे कभी वांछित नहीं था, किन्तु वह अब कुरूप जीवन का आलिंगन करने से भी नहीं हिचकिचाता। निराला का नया काव्य धरती के अधिक निकट है"[4]।

---

1. परिमल - निराला - पृ॰220 - पंचवटी प्रसंग-3 (गंगापुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ)
2. क्रांतिकारी कवि निराला - डॉ॰बच्चनसिंह - पृ॰ 141
3. वही पृ॰ 141
4. डॉ॰ प्रकाश चन्द्र गुप्त "नया साहित्य" (निराला विशेषांक 51 वीं जन्मतिथि पर) - पत्रिका में प्रकाशित लेख॰

"कुकुरमुत्ता" के विषयादर्श पर ही "नए पत्ते" का निर्माण लक्षित होता है । निराला के सामाजिक विचारों के प्रति असंतोष की अभिव्यक्ति, उनका सौन्दर्य विरोधी दृष्टिकोण, प्राकृतिक वर्णनों में बदली हुई दृष्टि, प्रकृति में सौन्दर्य न देखकर उसका उबड़ खाबड़ स्वरूप, तदनन्तर भक्ति का आगमन, वैयक्तिक भूमिका पर भक्ति भावना का प्रारंभ, अतिकाल्पनिक दृश्यों (फान्टसी) का चित्रण, सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश आदि की उपज "नए पत्ते" है । इसमें जीवन के यथार्थ वादी दृष्टिकोण को नई काव्य शैली में प्रस्तुत किया गया है, जो जनसुलभ ग्राह्य पक्ष को प्रधानता देती है । इस मे समाज के बाह्य पक्ष को उसी के रूप में देखने का प्रयत्न किया गया है । अर्थात् व्यावहारिक जीवन की दिनचर्या को उसी के रूप में देखने का प्रयत्न किया है । जिस में हास्य के साथ साथ व्यंग्यों का प्राचुर्य है । इस में पददलित वर्गों के प्रति सहानुभूति का आदर्श है ।

"नए पत्ते" काव्य की भूमिका में निराला जी ने स्वयं कहा है "इस में हास्य- व्यंग्य की प्रचुरता, भाषा अधिक बोलचाल वाली । पढने पर काव्य की कुंजों के अलावा ऊँचे-नीचे फारस के जैसे टीले भी । अधिक मनोरंजन एवं बोधन की निगाह रखी गयी है" ।

वैसे ही प्रस्तुत संग्रह में हास्य एवं मनोविनोदपूर्ण शैली में सामाजिक व्यंग्यों को रखा गया है । गिरीशचन्द्र तिवारी ने विषय की दृष्टि से संपूर्ण संग्रह का विभाजन निम्न प्रकार से किया है ।

(1) सामाजिक एवं राजनैतिक व्यंग्य की कविताएं
(2) मार्क्सवादी विवेचन संबन्धी कविताएं
(3) सामान्य प्रकृति के चित्र रूप में कविताएं
(4) सांस्कृतिक कविताएं

"रानी और कानी", खजोहरा, मास्को डयलाग्स, खुश खबरी, दगा की पांचक, गर्म पकौडी, प्रेमसंगीत, छलांग भारता चला गया, डिप्टी साहब आए, मंहगू महगा रहा, आंख-आंख का कांटा हो गयी, थोडे के पेट में बहुतों को आना पडा, राजे ने अपने रखवाली की, चरखा चला तथा तथा तारे गिनते रहे, कविताएं निराला की हास्य व्यंग्य शैली के चुभते उदाहरण हैं जो स्वरूप में तथा प्रभाव में वजनदार हैं ।

"रानी और कानी" में लेखक का यथार्थवादी दृष्टिकोण है, जिस में सामान्य मानव के सुखात्मक एवं दुःखात्मक अनुभवों का चित्र उपस्थित किया गया है । इस में हास्य एवं मनोविनोद के सहारे जो व्यंग्य उपस्थित किया गया है वह मार्मिक है । कानी के रूप चित्रण की कुरूपता में रानी के हृदय की भावनाएं छिपी है, जो विवाह की समस्या बनकर उस की माँ को सदैव चिंता का कारण बन गई ।

चेचक के दाग, काली, नाक चिपटी,
गंजा सर, एक आंख कानी
रानी अब हो गयी सयानी
x x x
फिर भी माँ का दिल बैठा रहा
x x x
सोचती रहती दिन रात
कानी की शादी की बात ।[1]

---

1. रानी और कानी - निराला

यह समस्या सामान्य होते हुए भी विशिष्ट है । अतः व्यंग्य का सामाजिक तथा वैयक्तिक पक्ष यहाँ स्पष्ट होता है । इसी प्रकार "खजोहरा" में जिस रूपक के सहारे चित्र है, वह भी यथार्थ व्यंग्य को जाहिर करता है ।

दौड़ते हैं ये बादल काले-काले,
हाई कोर्ट के वकील मतवाले,
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे,
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पडे,
कह कहे लगाते हुए टूट पडे[1] ।।

यहाँ से आरंभ करके प्रस्तुत कविता घोर यथार्थवादी विषय में प्रवेश करती है । ग्राम के प्रांगण का समूचा चित्र दिया गया है । इस में हल्के हास्य का प्रयोग भी हुआ है । इसी प्रकार "मास्को डायलाग्स" उन समाजवादी नेताओं पर तीखा व्यंग्य है जो रूस को ही आधार मानकर सिद्धांतों का पिष्टपेषण करते हैं । पूंजीवादी जागे में "रूस के डालाग्स" पढना जिनका आदर्श है, समाज के सच्चे नेताओं को फंसाकर स्वार्थसिद्ध करना जिनका कर्म है, वह राजनीति के साथ साथ साहित्य को भी विकृत करना चाहते हैं । कविता में प्रारंभ से ही समाजवादियों की रीति-नीति पर व्यंग्य है ।

अंत तक निराला का विश्वास छिपा नहीं है । "अणिमा" की "उद्बोधन" (1941) शीर्षक कविता में वही कहा गया है जो "कुल्लीभाट" में कथा प्रसंग के माध्यम से । "गीत कुंज" (1953) में भी -

---

1. खजोहरा - निराला

बदला जीवन जग का, गंदला
जहा, देश, देखते कहाँ गया !
विद्या की आँखों नूतन कला,
    नए गीत, नये वाद विच्छुर
    नये यान, यात्री उनमें नये,
    नये प्राण, नई रेल-पेल के
    वैज्ञानिक साधन सब के लिए .....[1]

बेला की अंतिम कविता भी इस प्रकार है -

कैसी यह हवा चली । तरु तरु की खिली कली ।
लगने को कामों में जो लोग धामों में,
ग्रामों ग्रामों में चल पड़े बड़े बड़े बली ।
जान गए जान गयी, खुली जो लगी कलई,
उठे मसुरिया, बलई, भो बड़े बड़े छली ।
अपना जीवन आया, गई पराई छाया,
फूटी काया-काया, गूँज उठी गली गली[2] ।

सचमुच ज्ञान की आँखों से कवि ने भाव ही देखा है, अभाव नहीं, क्योंकि जहाँ ईश्वर है वहाँ अभाव कहाँ। इसलिए उसकी स्थिति मार्क्सवादी से भिन्न अध्यात्मवादी की दृष्टि है जो युगावतार श्री रामकृष्ण परमहंस की दृष्टि से भिन्न नहीं है -

---

1. गीत, 31, रचना तिथि 20.8.56
2. बेला - निराला - पृ. 111 कविता का नाम - कैसी यह हवा चली ।
तरु तरु की खिली कली
उन्हें न देखूंगा जीवन में

उन्हें न देखूँगा जीवन में ।
तुम्हीं मिले, भरा रहे मन में ।
जग के कामों में,
राहों में, ग्रामों में,
झोंपड़ियों में या धवल धामों में ।
तुम्हीं बंधी मूठोंवाले जन में ।
गली-गली हाथ पसारे
फिरते हैं जो मारे मारे
भिन्न-भिन्न भाव के किनारे,
तुम्हारे न हुए कभी धन में ।
धूल जहाँ सोने की,
गई बात रोने की
खुली जिन्दगी सुख होने की,
तनुता बढ़कर आई तन में ।

हल्के हाथ के लिखे गीतों में व्यंग्य के छींटे उड़े हैं, परन्तु मुद्रा अध्यात्म की ही प्रामाणिक है, जैसा "बेला" की ही तैंतीसवीं कविता से स्पष्ट है -

जिसको तुम ने चाहा, आँख से मिला ।
धूल से छुटा, उठकर फूल से खिला ।
ओस-लाज की भरी, आकाश की परी,
उड़ी हुई थक कर आकाश पर उतरा

---

1. बेला - निराला - पृ. 108 कविता का नाम - कैसी तर हवा चली ।
तर तरु की खिली कली
उन्हें न देखूँगा जीवन में

रात फूल से जो की बात, उर हिला ।
रवि के कर गही बाँह, वह चढी गगन,
यहाँ तक विचरने को विचरी सनयन,
निस्तरंग एक रूप रंग से झिला ।

निराला की कविता कष्णादलित वर्गों एवं दमित आकांक्षाओं के जीवन को भी अपना स्नेहदान देती चलती है । यह उनका "साहित्यिक सेवारंभ" है । अंत में उन्होंने अपनी वृत्ति को समेट लिया । "परिमल" की "वृत्ति" शीर्ष कविता में बहुत पहले से निराला की यह तटस्थ, अनाकांक्षी, अनाविल दृष्टि प्रकट है -

देख चुका जो जो आए थे
चले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए ।
क्षण भर की भाषा की,
नव नव अभिलाषा में,
उगते पल्लव की कोमल शाखा में,
आए थे जो निष्ठुर कर से
मले गए ।
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए ।
चिन्ताएं, बाधाएं,
आती ही है, आएं,
अंध हृदय है, बन्धन निर्दय लाएं,
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गए ।

1· बेला - निराला {33 वां पद्य} पृ·39

मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए ।[1]

यही वृत्ति साहित्य से जीवन में उतर कर कवि को "उन्मनी" बना देती है ।

"गरम पकौडी" में समाजिक व्यंग्य लगातार मौजूद है ।

गर्म पकौडी -
ऐ गर्म पकौडी,
तेल में भुनी,
नमक-मिर्च की मिली,
ऐ गरम पकौडी !
तू ने पहले मुझको खींचा,
दिल लेकर फिर कपडे सा फींचा,
तेरे लिए छोडी ब्रम्हन की पकाई -
मैं ने घी की कचौडी ।
ऐ गर्म पकौडी ![2]

वर्ण और जाति-व्यवस्था के सडे-गले स्वरूप पर "गर्म पकौडी" एवं प्रेम संगीत (जिस में ब्राह्मण का लौंडा घर में काम करने वाली कहारिन की लडकी पर फिदा है) धन का धमाका देती है, इस में सन्देह नहीं ।

---

1. परिमल - (वृत्ति शीर्षक कविता) निराला
2. गर्म पकौडी : निराला

"खजोहरा" एक हास्य कविता है जिस में व्यंग्य बिलकुल दबा हुआ है । सावन के दिनों में ग्रामीण जीवन का चित्र ही इस में सब से महत्वपूर्ण है । हाईकोर्ट के मतवाले वकीलों की तरह बादल भी ज़रूरत की जगह न बरसकर, जहाँ पानी भरा, वहीं कह कहे लगाते हुए टूट पड़े" । लोग ढोलक पर आल्हा गाते हैं एवं लड़कियाँ" झूलों पर सावन गाती हैं । सावन में भतीजा हुआ है इसलिए बुआ भी गाँव में आई है । ससुराल से फिर स्वच्छन्दता पाकर वह ताल में नहाने चली । टैगोर की "विजयिनी" की तरह वह पानी में उतरी, लेकिन कामदेव के बाणों के बदले "खजोहरा" ने उसका स्वागत एवं सत्कार किया ।

"मास्को डायलाग्स" उनकी वाद निरपेक्ष, विशुद्ध जीवन दृष्टि का स्वच्छ निदर्शन है । मृषा ख्याति के लोभी, धन के लालची, निहायत हीन स्तर वाले तथा कथित "इन्टेलेक्चुअल" समाज के उन्नायकों, लीडरों पर बड़ा तगड़ा व्यंग्य है "मास्को डायलाग्स" -

मेरे नाये मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी,
बहुत बड़े सोश्यलिस्ट,
"मास्को डायलाग्स" लेकर आए हैं मिलने ।
मुस्कराकर कहा, "यह मास्को डायलाग्स है,
सुभाष बाबू ने इसे जेल में मंगाया था,
भेंट किया था मुझको जब थे पहाड़ पर,
"35" तक, मुश्किल से पिछड़े हुए इस मुल्क में
दो प्रतियाँ आई थीं ।
फिर कहा, वक्त नहीं मिलता है,
बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है,
देख भाल करता हूँ ।

---

1. मास्को डायलाग्स - निराला

रोब डालने की हास्यास्पद एवं बौन चेष्टा इस में वर्तमान है । फिर श्रीयुत त्रिउवानी "प्रगतिवाद" का नकाब बिलकुल उठा देते हैं -

फिर कहा, "मेरे समाज में बडे बडे आदमी हैं,
एक से एक मूर्ख,
उनको फंसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का ।
उपन्यास लिखा है,
ज़रा देख दीजिए
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर,
मनमाना रुपया फिर ले लूं इन लोगों से,
नये किसी बंगले में एक प्रेस खोल दूं
आप भी वहीं चले ।
चैन की बंसी बजे[1] ।

निराला की स्फुट कविताओं में भी व्यंग्य का हल चल लगातार मौजूद है । अणिमा काव्य संग्रह में इन्होंने लिखा है -

चूंकि यहां दाना है,
इसलिए दीन है, दीवाना है ।
लोग है, महफिल है,
नग्में हैं, साज हैं, दिलदार है और दिल है,
शमा है, परवाना है,
x x x

1· मास्को डायलाग्स - निराला

अम्मा है बच्चा है,
झापड़ और गोल गप्पा है ।[1]

उपरोक्त कविता में पैसे पर व्यंग्य किया गया । निराला के काव्य में यथार्थवादी शैली का व्यावहारिक पक्ष दिखायी देता है जिस में समस्त वर्गों, जातियों, राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक विषमताओं को उनके खुले रूप में देखा गया है । निराला किसी सिद्धांत का सहारा ले कर चलने वाले नहीं थे । वे तो यथातथ्य को हँसकर कहने में विश्वास करते थे । निराला का परवर्ती काव्य इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है ।

शिष्ट एवं स्वस्थ व्यंग्य अधिकांश रूप में वैयक्तिक नहीं हुआ करते हैं, उन में प्रचछन्नता का गुण वर्तमान है । निराला के काव्यात्मक व्यंग्यों में हमें यह विशेषता बराबर मिलती है । सरल बोलचाल की भाषा में विषय का चौखटा तैयार करना जिससे उसकी अतिवादिता नष्ट हो जाय, यही निराला की विशेषता कही जा सकती है ।

निरूपण शैली में स्वच्छन्दता है, भाव-प्रयोग में केवल चुहल बाजी या "हास्य हास्य केलिए" का प्रयोग नहीं है । निराला की संवेदना का समाजीकरण, उनकी विचारात्मकता का सरलीकरण इन कविताओं में देखा जा सकता है ।

इन कविताओं को पढ़कर यदि निराला के समग्र साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्टतः ज्ञात होने लगता है कि कला की अलंकृति में अति सूक्ष्मता के कारण कवि यहाँ पर खुले प्रांगण में समाज की वायु का सेवन

---

1. अणिमा - निराला

करता है । यद्यपि विनोद पद्धति उनकी स्वाभाविक विचारण के प्रतिकूल दिखायी देती है, फिर भी अपनी निजी परिस्थितियों से बचने तथा उनके तीखे अनुभवों से साहित्यिक के उत्तरदायित्व को निभाने में निराला का यह परवर्ती रूप भी महत्वपूर्ण है । आख्यान शैली में लोकजीवन की समस्याओं को उसी के वातावरण में प्रस्तुत करना उनकी प्रतिभा का नया रूप कहा जा सकता है । यही कारण है कि इन कविताओं में शैलीगत भिन्नता लक्षित होती है । डॉ॰बच्चन सिंह ने लिखा है निषेधात्मक जीवन इनको व्यंग्यात्मक रचना करने की ओर ले जाता है । ये विनोद और व्यंग्यप्रधान सृष्टियाँ भाषा के नवीन और प्रचलित स्वरूप का दर्शन कराती है । यहाँ भाषा नवीन विनोदात्मक प्रयोगों के अनुकूल अवश्य है, किन्तु इनकी पूर्ववर्ती भाषा का मुकाबला नहीं कर सकती । जहाँ तक अनामिका की व्यंग्यात्मक कविताओं का सम्बन्ध है, कुछ में शुद्ध व्यंग्य तथा सामाजिक स्थितियों का चुभता हुआ चित्रण हुआ है । किन्तु कुकुरमुत्ता तक पहुँचते पहुँचते कवि प्रगतिवाद के विरोध में तर्क उपस्थित करने लगता है[1] ।

निष्कर्षत: उनके काव्यात्मक व्यंग्यों का मूल्य जातीय या वर्गीय न होकर मानवतावादी है, जिस में सामान्य दीन दु:खी व्यक्तियों की चर्या से लेकर पूंजीपतियों की चर्या तक का वर्णन मिलता है । सामान्य के प्रति क्रियात्मक सहिष्णुता का भाव है, परंतु विशिष्ट के प्रति कोई तीव्र घृणा नहीं दिखाई होती । उनके व्यंग्यों में गति है । वे किसी एक उद्देश्य से उलझे हुए नहीं हैं । निराला जी ने स्वयं लिखा है -"साहित्य में अनेक दृष्टियों का एक साथ रहना आवश्यक है, नहीं तो दिग्भ्रम होने का डर है । इसीलिए मैं ने तमाम भावों की एक साथ पूजा करने का समर्थन किया[2] । उनमें प्रगतिशीलता के प्रयोगों को प्राधान्य रहा है, जिन में

1• क्रांतिकारी कवि निराला - डॉ॰ बच्चन सिंह - पृ॰141

2• चयन - निराला - पृ॰68

बौद्धिक तुलना का वैशिष्ट्य दिखायी देता है, अर्थात् समीक्षात्मक दृष्टि का प्राधान्य है । परंतु निराला की यह आलोचनात्मक दृष्टि जीवन को अनावृत रूप में देखती है । किसी सिद्धांत की आड़ ले कर नहीं । इस में उनकी स्वाभाविक मनस्विता तथा रूढि-विद्रोह से भरे व्यक्तित्व के गुण मिलते हैं ।

निराला ने कुकुरमुत्ता, बेला और नए पत्ते नाम की तीन पुस्तकों में उर्दू के प्रयोग लिए । हिन्दी के कवियों का उर्दू की ओर उन्मुख होना कोई नई बात नहीं थी । लेकिन छायावादी काव्य में उर्दू की ओर झुकाव किसी भी कवि का नहीं दिखाई देता ।

सामाजिक जीवन मे ही धर्म की रूढियां व्याप्त रहती है । निराला ने इन रूढियों के विरुद्ध स्थान स्थान पर आवाज़ उठाई है । उनकी एक कविता बेला संग्रह में प्रकाशित हुई है । इस की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है -

पंडों के सुधर सुधर घाट है
तिनके की टट्टी के गठ हैं
यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं
कहते हैं, कितने तारे[1] ।

यहां धार्मिक अंधविश्वासों पर प्रच्छन्न व्यंग्य है । इसके मुताबिक निराला ने राजनीतिक गतिविधियों पर भी काफी व्यंग्य किए हैं । लोकगीत की धुन में लिखी गयी उनकी एक कविता इस प्रकार है -

---

1• बेला - कविता आ रे गंगा के किनारे - पृ•60

काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल
कैसे कैसे नाग मंडलाए, न आये वीर जवाहरलाल
बिजली फन के मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी
सर पर सरसर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल[1]।

यहाँ भारतीय परिस्थितियों के मेघाच्छन्न हो जाने पर भी जवाहरलाल मदद को नहीं आते, यही व्यंग्य है। इसी कविता में आगे लिखे हैं -

महँगाई की बाढ बढ आयी,
गाँठ की छूटी गाढी कमायी,
भूखे नंगे खड़े शरमाये,
न आये वीर जवाहरलाल
कैसे हम बच पाये निहत्थे,
बहते गए हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये,
न आये वीर जवाहरलाल[2]।

देश की आर्थिक दिशा खराब होती जा रही है। लोग अन्न वस्त्र हीन हो रहे हैं। फिर भी नेतागण किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं दिखाते। स्पष्ट ही यह राजनीतिक परिवेश पर व्यंग्य है।

---

1. बेला (निरुपण प्रकाशन, प्रयाग) निराला 38 वाँ पद्य
छाए आकाश में काले काले बादल देखे" पृ.44

2. बेला - निराला पृ.44 - 6।

निराला ने अपने परवर्ती काव्य युग में आर्थिक विषमता पर मार्मिक व्यंग्यात्मक कविताएं लिखी हैं । यह क्षेत्र निराला के निजी अनुभवों का भी रहा है । उनका संवेदन शील मानस गरीबों की विपन्नता पर द्रवित हो गया है । "बेला" संग्रह की "भीख मांगता है अब राह पर" कविता में कथानक का स्वरूप सामाजिक दृष्टि के विविध पहलुओं एवं भिखारी के संकेत पर खड़ा किया गया है । इस कविता में मुख्य समस्या यह है जो अर्थाभाव की प्रतीक कही जा सकती है; परंतु जिस पर समाज की प्रतिष्ठित और मान्य स्वीकृतियां उससे तुलना करके संतोष पाती है । निर्बल के अभावों से सबल को संतोष होता है । अर्थ दारिद्र्य से विलासों की तुलना होती है; मूल्यांकन होता है, इस प्रश्न को इस कविता में रखा गया है । कविता के कथानक का प्रेरक तत्व है -

भीख मांगता है अब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर[1]

इससे पूरी सामाजिक दृष्टि का लगाव है -

एक आंख आज के बानिज की
पराधीन होकर उस पर पड़ी
कहा कला ने, कल का यह वर ।
    एक आंख शिक्षा की हेठी से
    देखने लगी उसे अमेठी से
    कहा खुलकर छोटा मुंधर
एक आंख कारीगर की गड़ी,
कहा, आदमी को यह है छड़ी
छेदे कोई इसको लेकर ।

---

1. बेला - निराला - पृ.61

एक आँख पड़ी महाराज की,
कहा, देख ली है स्तुति ब्याज की,
मानव का सच्चा है यह घर ।
एक आँख तरुणी की जो अड़ी
कहा, यहाँ नहीं कामना सड़ी
इस से मैं हूँ कितनी सुन्दर[1] ।

इसी प्रकार की एक कविता "अणिमा" में आयी है जो भावात्मक न होकर व्यंग्यात्मक अधिक है । शीर्षक है "चूँकि यहाँ दाना है"

चूँकि यहाँ दाना है इसमें पूंजीवादी सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि पैसे पर ही धर्म पनपता है, प्रेम पल्लवित होता है, कविता प्रेषित होती है [उनका आशय सच्चे कवियों से नहीं, चारणों से है] माँ बाप का प्रेम भी अर्थाश्रित होता जा रहा है । पैसे वालों के घर उसके सासाले एवं ससुर भी रहने लगते हैं । इस प्रकार पैसा कितनी सामाजिक विकृतियों का कारण बनता है, इस का निदर्शन किया गया है । कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है -

चूँकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है, दीवाना है ।
लोग हैं महफिल है,
नग्में हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
शम्मा है, परवाना है
x x

---

1. बेला - निराला - पद्य सं. 45 - पृ. 61

अम्मा है, बच्चा है,
झापड़ है और गोल गप्पा है,
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
चूँकि यहाँ दाना है[1] ।

पूँजीवाद सभ्यता पर एक और अन्य व्यंग्य "गीत कुंज" पुस्तक में "मानव जहाँ बैल घोड़ा है" शीर्षक रचना में देखा जाता है । यह सन् '52 के अन्त की रचना है । वर्तमान आर्थिक वैषम्य के कारण मनुष्य के तन मन में, उसकी कथनी और करनी में महान अन्तर आ गया है । जीवन में कृत्रिमता आ गयी है । मनुष्य बर्बर हो चला है । यह अर्थवादी सभ्यता सावन के फोड़े की तरह मवाद से भर गई है । कदाचित इसी आर्थिक सभ्यता से त्रस्त होकर निराला इस संसार को अंधकार कहते हैं -

गगन है यह अंधकारा,
स्वार्थ के अवगुंठनों से
हुआ है लुण्ठन हमारा[2] ।

जड़ता की दीवार सब को घेर रही है । लोगों में एक दूसरे के प्रति सौहार्द नहीं रह गया । संसार की शोभा नष्ट हो गयी है । सूर्य, चन्द्रमा, तारे अस्तगत हो गए हैं । एक रुद्र गर्जन हो रहा है । इस से त्राण पाने केलिए निराला देश की वह नयी चेतना चाहते हैं जो उन्हें मानव जीवन के सच्चे आदर्शों से संलग्न रख सके ।

---

1. अणिमा - निराला : (रचना 43) पृ. 103
2. वही पृ. 65

नागार्जुन द्वारा प्रणीत काव्य का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हो सकता है -

(1) प्रकृति एवं प्रणय परक रचनाएं
(2) सामाजिक यथार्थवादी कविताएं
(3) व्यंग्य प्रधान रचनाएं
(4) देश प्रेम की भावना से ओत प्रोत काव्य
(5) विविध रचनाएं
(6) खण्डकाव्य - भस्मांकुर

प्रगतिवादी काव्यधारा के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं नागार्जुन । एक ओर वर्ग वैषम्य के शिकार पात्रों के प्रति तरल संवेदना तथा इस केलिए उत्तरदायी व्यवस्थाओं के विरुद्ध तीव्र आक्रोश है । दूसरी ओर स्वदेशी शासकों द्वारा किए जा रहे अनुचित कार्यों के प्रति प्रखर व्यंग्य की फटकार भी सुनाई पड़ती है । कवि ने हमेशा राजनीति पर सतर्क दृष्टि रखी है, इसलिए महत्वपूर्ण राष्ट्रीय - अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर सामायिक कविताओं की रचना की है, जिस का रूप प्रायः व्यंग्यात्मक है । इन सब के साथ उनके कवि ने प्रकृति नटी का श्रृंगार भी बड़ी तन्मयता से किया है । आंखों से पान किया हुआ कवि ही प्रकृति के विविध वर्णों रूप हृदय को कविता में चित्रित कर सकता है । अपनी धरती से अनुराग की परिचायक है नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताएं । इन कविताओं द्वारा नागार्जुन ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रगतिवादी कवि सिर्फ दुःख -दर्द एवं विद्रोह का ही कवि नहीं होता बल्कि अपने देश की मिट्टी से जुड़ा भी होता है ।

नागार्जुन के काव्य में देश प्रेम की तीव्र स्वर सांप्रदायिकता एवं प्रान्तीयता का विरोध रूप ले, एक राष्ट्रीयता की भावना का प्रसारक बन, निरन्तर ध्वनित होता रहता है । कहीं उन्होंने देश रक्षा केलिए जनता का आह्वान किया है तो कहीं आततायी शत्रुओं को मार भगाने का संकल्प भी किया है । जहां कवि भावुक अनुभूतियों से फिर उठा है । वहां उसने प्रणय गीत भी गाए हैं - पर ये वासनोत्पन्न नहीं वरन् इस के मूल में जीवन - संगिनि के प्रति जीवन भर साथ निभाने की आकांक्षा निहित है । कुछ विविध विषयों पर भी नागार्जुन ने कविताएं लिखी हैं ।

कुल मिलाकर उनके काव्य में हमें सामाजिक अव्यवस्था को समाप्त करने और स्वस्थ समाज के निर्माण की तैयारी दिखाई देती है । उनका आक्रोश पूंजीवाद एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध जोरदार है । अनुभूतियों का आवेग उन में तीव्रतम है । कल्पना कहीं विश्रृंखलित नहीं होती है ।

नागार्जुन की काव्य कृतियां - युगधारा, प्यासी पत्थराई आंखें, सतरंगी पंखोंवाली शीर्षक से प्रकाशित हुई है । ये फुटकर कविताओं के संग्रह है । इनके अतिरिक्त "खुन और शोले" "प्रेत का बयान" और "चना जोर गरम" अब तो बन्द करो है देवी यह चुनाव का प्रहसन" नामक लघु किताबें भी नागार्जुन से रचित देखने में आयी हैं । किन्तु ये सब कृतियां अनुपलब्ध है । नागार्जुन का एक खण्डकाव्य भी अभी अभी प्रकाशित हुआ है । जिसका नाम है "भस्मांकुर" । इस में काम-दहन के प्रसंग पर बरवे छन्द में 854 पंक्तियां कवि ने लिखी हैं ।

नागार्जुन 1930-'35 से कविता लिखने लगे किन्तु उन्होंने अपनी रचनाओं को सम्भाल कर रखने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया । ये घुमक्कड़ और अक्खड़ प्राणी प्रारंभ से रहे । इस प्रसंग में युगधारा के प्रकाशक का मन्तव्य विचारणीय है ।

"कुछ खो गई है, कुछ खो जाने की स्थिति में है, कुछ मित्रों के पास बिखरी पड़ी है और बाकी इस यात्री कवि के झोले में दरभंगा, पटना इलाहाबाद, दिल्ली, दिल्ली-इलाहाबाद-पटना दरभंगा सफर करती फिर रही है[1]।

नागार्जुन के साहित्यकार को पीड़ित जनता के कष्टों ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। उन्होंने देखा है कि निम्न वर्ग श्रमरत रहते हुए भी भरपेट भोजन नहीं जुटा पाता है। अभावों के पलने में झूलते तथा जीवन की कठिनाइयों से जूझते एवं टूटे रहते इस वर्ग को नागार्जुन ने चित्रित किया है। दूसरी ओर धनिक वर्ग है जो ऐश आराम में लिप्त है - कम काम एवं अधिक आराम यही उसके जीवन का ध्येय है। अर्थात् यह वर्ग शोषण पर टिका हुआ है। परिणाम स्वरूप उच्च वर्ग के प्रति गहरी कटुता के भाव नागार्जुन में है जो आक्रोश का रूप ले लेते हैं। नागार्जुन ने निम्न वर्ग के अभावों को स्वयं झेला है एवं उनकी दृढ़ता बहुत कुछ इन अभावों और अभियोगों से उत्पन्न रोष की मिली जुली प्रतिक्रिया ही है जिसने अपने प्रसार विस्तार में व्यंग्य की व्यूह रचनाकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर दिया है। "व्यक्तिगत दु:ख पर न रुक कर वे बार बार व्यापक दु:ख पर प्रकाश डालते हैं और यही सच्चे कवि की पहचान है। अत: धरती, जनता और श्रम के गीत गाने वाले इस युग के संवेदनशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदैव अमर रहेगा"[2]।

देश में व्याप्त वर्ग-वैषम्य के ये चित्र नागार्जुन द्वारा साम्यवादी विचारधारा में आस्था रखने के कारण व्यक्त हुए हैं। नागार्जुन का पीड़ित शोषित वर्ग फिर भी सतत् संघर्ष और श्रमरत रहा है। कवि को उनके अच्छे दिन लौट आने की पूरी आशा है।

1· युगधारा - भूमिका

2· नयी कविता नए कवि - विश्वंभर मानव

1962 के चीनी आक्रमण से पूर्व नागार्जुन के काव्य में इसी सामाजिक यथार्थवाद का समर्थन खूब मिलता है । इसमें चीन एवं रूस की प्रशंसा के स्वर तो हैं ही इन देशों को बुरा बताने वालों को भी नागार्जुन ने कोसा है, कहीं उसे लाल पताकाएं फहराती हुई दिखाई दी है :

"लाल पताकाएं फहराई; नील गगन मुस्काय"[1]

कवि भारत में भी कम्यूनिज़्म लाना चाहता है :-

चीन समूचा लाल हो गया
या
ज़ब है भारत की बाटी
चीन विरोधी बकवासों से हल होगा न सवाल ।[2]

पं॰ नेहरू पर भी छिछली व्यंग्यपूर्ण कविताएं नागार्जुन ने लिखी है । उनकी दृष्टि में सारे कांग्रेसी और खादी धारी चोट हैं और इन्हें कवि के व्यंग्य का निशाना बनना पड़ा है । किन्तु नागार्जुन के व्यंग्य ने हास्य का रूप नहीं लिया है । यों व्यंग्य मिश्रित कुछ मुस्कान कहीं कहीं अवश्य ही पाठकों के होठों पर खेल जाती है, लेकिन स्पष्ट हास्य का नागार्जुन में सर्वथा अभाव है, क्योंकि "व्यंग्य" परिहास की तरह कभी प्रयोजन हीन नहीं होता । इसकी शुद्धता सदैव संदिग्ध होती है । सोद्देश्य व्यंग्य कविता का प्राण है ।[3]

1· नयी कविता नए कवि - विश्वंभर मानव
2· जनशक्ति, जनवरी 1960, पटना
3· समकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य-विद्रूप: हरिनारायण मिश्र - नई कविता : सं॰ वासुदेवनन्दन प्रसाद सिंह - पृ॰96

नागार्जुन का व्यंग्य सर्वत्र प्रयोजन युक्त बनकर उपस्थित हुआ है । उनमें सोद्देश्यता इस रूप में परखी जा सकती है कि निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति सुधारने में अक्षम कर्णधारों पर वे जमकर व्यंग्य प्रहार करते हैं । देश के आर्थिक और सामाजिक ढांचे को बदलना उनका लक्ष्य प्रतीत होता है । व्यंग्य की सोद्देश्यता अमृतराय के विचारों में भी व्यक्त हो रही है । "व्यंग्य पाठक के क्षोभ या क्रोध को जगाकर प्रकारान्तर से उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने केलिए सन्नद्ध करता है"[1] । नागार्जुन के व्यंग्य का यही उद्देश्य है । शोषित जनता इन्हें पढकर राहत महसूस करती है, क्योंकि इस में कवि ने उसका अपना पक्ष लिया है, इसे उठ खडे होने की प्रेरणा दी है ।

नागार्जुन ने व्यंग्यपूर्ण रचनाओं में धार्मिक रूढ़ियों एवं सामाजिक अव्यवस्थाओं पर भी व्यंग्य किया है । लेकिन यह बात निःसन्देह है कि नागार्जुन की अधिकांश व्यंग्य रचनाएं राजनीतिक स्थितियों और नेताओं पर किए गए व्यंग्य से ओत प्रोत है । द्रष्टव्य है कि व्यंग्य नागार्जुन के काव्य का प्रमुख आकर्षण है ।

नागार्जुन की "चौराहे के उस नुक्कड़ पर" कविता में अन्ध-श्रद्धालुओं तथा उनकी श्रद्धा का दुरुपयोग करने वाले पाखण्डी साधुओं पर व्यंग्य स्पष्ट है । ये साधु अपने करतब दिखाकर भोली जनता की जेबें खाली करवा लेते हैं ।

काँटों पर नंगा सोया है
ठिठक गया मैं लगा देखने
उस औघड बाबा के करतब
x x x

---

1. नई कहानियाँ [संपादकीय] - अमृतराय - नवंबर 1969

और पाँच पैसे दस पैसे
जैसी श्रद्धा सिक्के वैसे
निकल रहे हैं जैसे तैसे
श्रद्धा का तिकड़म से नाता
जय हे भिक्षुक जन्म हे दाता
पियो सन्त हुगली का पानी
पैसे सच है दुनिया फानी ।[1]

नागार्जुन की व्यंग्य कविताओं में सामाजिक स्थितियों से भी सम्बन्धित कविताएं मिलती हैं । किन्तु कहीं कहीं इस प्रकार की कविताओं में राजनैतिक नेताओं पर भी व्यंग्य स्पष्ट है । सामाजिक अवस्थाओं पर किए गए व्यंग्य का उद्‌गम श्रोत दूषित राजनीति ही बनी है ।

कवि ने देखा है कि आज सच बोलना भी एक जुर्म हो गया है । सच बोलने पर हानि उठानी पड़ती है और झूठ बोलनेवाले मेवा-मिसरी चखते हैं । चापलूसों की इस बढ़ती हुई कद्र पर कवि ने व्यंग्य किया है, जिसमें सामाजिक अव्यवस्था स्पष्ट हो रही है । पर इसका मूल दूषित राजनीति ही है -

अपने में भी सच न बोलना, वरना पकड़े जाओगे
सच्चा लखनऊ - दिल्ली पहुँचो मेवा-मिसरी पाओगे
माल मिलेगा रेत सको यदि गला मंजूर किसानों का
हम मर भुक्खों से क्या होगा चरण गहो श्रीमानों का ।[2]

1· प्यासी पथराई आँखें - पृ·32

2· सच न बोलना [कविता] "हंस" जून 1948 - पृ·640

"तो फिर क्या हुआ" कविता में प्रज्ञाकर गुणनिधान प्राचार्य पर जो देश की बहुसंख्यक जनता की हानी पर कहते हैं - "तो फिर क्या हुआ, यह तो नाश और निर्माण के चक्र है - व्यंग्य किया गया है; क्योंकि यही प्राचार्य जी को लल्ला के शिकागो न जा सकने पर आसमान फीका दिखाई देने लगता है और इस पर कवि ने उनसे पूछ ही लिया - "तो फिर क्या हुआ"।

इस प्रकार सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य करते हुए "तो फिर क्या हुआ" एक सुन्दर कविता है । "जयति नरवरंजनी" कविताओं में आधुनिकताओं की उस फाशनपरस्ती पर व्यंग्य है जिस में मतदान के बाद उंगली पर स्याही लगने से सुन्दरता का नष्ट हो जाना समझा जाता है । इस में से पता चलता है कि आज़ादी के बाद देश का विकास किस और हो है - देश के प्रति प्रेम गौण हो रहा है एवं फेशन के प्रति आग्रह बढ रहा है । इस कविता से नए भारत में उदित हुए इस नए वर्ग की भूमिका का पता चलता है ।

"विज्ञापन सुन्दरी" और "प्लीस एक्सयूज़ मी" भी इसी प्रकार के व्यंग्य हैं जिन में आधुनिकताओं पर व्यंग्य किया गया है । झूठी मान दिखाने का आडम्बर आज समाज में कितना बढता जा रहा है और इस व्यर्थ प्रयास में महिलायें अपना स्तर कितना गिरा सकती है, इस का बोध इन से होता है ।

---

1. सतरंगी पंखोंवाली - पृ.35

"अजी धन्य हो कवि कोकिल तुम" शीर्षक कविता में भी युग बोध से दूर रहकर लिखनेवाले कवियों पर व्यंग्य किया गया है । ढलते दिनमान के तथाकथित छायावादी कवि पर व्यंग्य भी बडी उच्चकोटि का है[1] ।

नागार्जुन के व्यंग्य का सब से आकर्षक रूप राजनीतिक कविताओं में देखा जा सकता है, जिस में उन्होंने कहीं भ्रष्ट स्वदेशी शासकों, साम्राज्य वादी राज्याध्यक्षों, सर्वोदयी नेताओं आदि पर उन की अनैतिकता और कर्तव्यहीनता को देखकर व्यंग्य किया है । इस कवि ने इतनी अधिक राजनीतिक कविताएं लिखी हैं कि "नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में व्यंग्य" विषय पर स्वतंत्र रूप से एक शोध प्रबन्ध तैयार हो सकता है ।

नागार्जुन ने देखा है कि गांधीजी देश में रामराज्य लाने की कल्पना कर रहे थे । लेकिन उनके चेलों की करतूतों से देश में राम के स्थान पर रावण का नाच हो रहा है । देश व्यापी भ्रष्टाचार को रावण मानकर कवि ने करारा व्यंग्य किया है, जिसने अंतिम पंक्ति में आक्रोश का रूप ले लिया है -

> रामराज में अब की रावण नंगा होकर नाचा है
> सूरत शकल वही है भैय्या बदला केवल ढांचा है
> नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपने ही हाथों
> भारत माता के गालों पर कसकर पडा तमाचा है[2] ।

---

1. युगधारा - पृ.60-61

2. हंस, जून 1948 (रामराज कविता) पृ.493 पद क्र.7

यहाँ अवसरवादी नेताओं पर जमकर व्यंग्य किया गया है। नागार्जुन की व्यंग्यपूर्ण लेखनी के शिकार प्रायः कांग्रेसी नेतागण ही हुए हैं। इसी कविता में तत्कालीन भारतीय राजनीति में अमेरिकी हस्ताक्षेप एवं गांधीजी के बेशरमी पर भी व्यंग्य किया गया है। नेहरू सरकार की देशसेवा पर कवि को बड़ा सन्देह है। चुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवारों के कारनामे का वर्णन इन पंक्तियों में स्पष्ट हुआ है :

वोट मिलना लगता आसान
कहीं पर भोज नहीं गुन्गान
कहीं पर थोक नगद नगदान।[1]

इसी प्रकार पंचवर्षीय योजनाओं से निम्न वर्ग का समुचित विकास नहीं हुआ। सन् 1960 में आज़ादी के तेरह साल बीत जाने पर भी योजनायें कागज़ों पर ही रह गयीं। निर्माण कार्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार का नमूना बांध का स्वाधीन होता हुआ बालू बतला रहा है -

पाँच वर्ष की बनी योजना एक दो नहीं तीन
कागज़ के फूलों ने ले ली सब की खुशबू छीन
बलिहारी कागजी खुशी भी क्यों न बजायें बीन
फटे बांध से बालू बोले हम भी हैं स्वाधीन
अश्वमेध का घोड़ा दौड़ा चित है चारों ताल
कौन कहेगा आज़ादी के बीते तेरह साल।[2]

---

1. हंस, जनवरी 1952 - पृ.23
2. जनशक्ति [स्वतंत्रता दिवस विशेषांक] 14 अगस्त 1960

नेतागण आज गांधी के नाम का उपयोग वोट लेने केलिए कर रहे हैं । यह देखकर कवि ने उन पर तीखा व्यंग्य किया है । इस तिक्तता का आधार कवि की अन्तर्वेदना ही है जिसके कारण वह "महामानव" के नाम का दुरुपयोग और जनता का यह शोषण होते नहीं देख सकता । स्वराज्य प्राप्ति केलिए जनता ने बलिदान इसलिए नहीं दिया था कि

बेच बेच कर गांधीजी का नाम
बटोरा वोट
बैंक बेलेंस बढाओ
राज घट पर बापू की वेदी के आगे आंसू बहाओ[1] ।

इस में कवि ने बुलन्दी और दबंगता से कांग्रेसियों पर व्यंग्य किया है । "घूस का पुतला" एवं "कटाट वार्तिक" भी उच्चकोटि की व्यंग्य कविताएं हैं ।

"प्रेत का बयान" पुस्तिका में कवि ने पीच रोड़ पर नेताजी की मचलती हुई तीस हज़ारी कार पर व्यंग्य किया है । "चीलों की चली बारात" एवं "मास्टर" भी ऐसी ही व्यंग्यात्मक कविताएं हैं जिनमें आक्रोश, जनता की पीडा एवं नेताओं की कर्त्तव्याभिमुखता से उत्पन्न विचारों की मिली जुली प्रतिक्रिया है ।

"खून और शोले" में आक्रोश से भरकर कवि ने नेहरू सरकार को "नाजियों का बाप" तक कह डाला है । बी॰एन॰कोलेज, पटना में हुए पुलीस जुलम से क्षुब्ध कवि ने पुलीस अफसरों के "भूसा भरे दिमाग" पर व्यंग्य किया है[2] ।

1· युगधारा - पृ॰104-105

2· खून और शोले - पृ॰6

"खड़ी है यह ट्रेन" और "नेहरू" कविता में विदेशों में पंचशील का अलख जगाने, किन्तु देश के भीतर पुलीस जुल्म कराने का आरोप नेहरू पर लगाते हुए व्यंग्य किया गया है[1] ।

आज नेतागण भाषाओं के द्वारा अपनी सेवा भावना और कर्तव्यनिष्ठा के प्रदर्शन में खूब लगे हैं, पर उनके इन वक्तव्यों को रचनात्मक रूप मिलता नहीं दिखाई देता । यह विचार ठीक ही है कि "झंडा ऊंचा रहे हमारा" गीत गाने से झंडा ऊंचा नहीं होगा । पर यहाँ ऐसा ही किया जा रहा है । झंडे का ऊंचा होना तभी माना जा सकता है जब साधारण से साधारण व्यक्ति का जीवन भी ऊँचा उठ रहा हो ।

दस हजार दस लाख मरें, पर झंडा ऊँचा रहे तुम्हारा ।
कुछ हो कांग्रेसी शासन का डंडा ऊँचा रहे तुम्हारा[2] ।

"मैं हूं सब के साथ कविता में भी नागार्जुन ने कांग्रेसी कुशासन पर व्यंग्य किया है । "प्यासी पत्थराई आंखें" काव्य संग्रह में "भारती सिर पीटती है कविता में राजनीतिज्ञों द्वारा रुग्ण निराला के प्रति बरती गई लापरवाही पर व्यंग्य करते हुए कवि ने लिखा है :-

"राजनीतिक अकड़ में जड़ ही रहा संसद भवन[3]"

"वे तुम को गोली मारेगा" बड़ी सुन्दर व्यंग्यपूर्ण रचना है जिस पर पार्टी विहीन जनतंत्र में क्या स्थिति होगी पर व्यंग्य किया गया है :-

---

1. खून और शोले - 10-11
2. वही
3. प्यासी पथराई आँखें - पृ. 10-11

नभ से मुस्काएगा तब डाकू मानसिंह
वह जयप्रकाश पर पान-फूल बरसाएगा[1]।

जय प्रकाश बाबू पर मानसिंह का यह पुष्प समर्पण करना बड़ी भीतरी चोट पहुंचाने वाला व्यंग्य है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार पुलीस आतंक और जन धन की फिजूल खर्ची पर नागार्जुन ने खूब व्यंग्य किए हैं। "आओ रानी हम ढोएंगी पालकी" एवं "टके की मुस्कान", "करोड़ों का खर्चा कविताओं में रानी एलिजबेथ के भारत आगमन पर और यहां की सरकार द्वारा उसके स्वागत केलिए किए गए अपव्यय पर व्यंग्य किया गया है। रानी क्या आ गई है - हमारे देश के मिनिस्टर, संसद सदस्य आदि भाव-विभोर हो गए हैं।

सत्य को स्वीकार करने या अभिव्यक्त करने का साहस होना चाहिए, जिसका अभाव आज किसी न किसी रूप में दिखाई पड़ रहा है। चारों ओर "प्रशंसा की बिखरती फुहारें" के इस युग में नागार्जुन ही एक मात्र कवि दिखाई देते हैं जो स्पष्ट वक्ता के रूप में, निर्भयता से, अनुचित को अनुचित कहने का साहस कर रहे हैं। इस दृष्टि से उनकी कवितायें विशेष महत्व रखती हैं।

नागार्जुन की कतिपय कविताओं में, जहां वे व्यक्तिगत आरोपों पर उतर गए हैं, उनके व्यंग्य का स्तर बड़ा हल्का भी है। डॉ॰मदन के अनुसार "नागार्जुन का व्यंग्य कहीं कहीं अति तीक्ष्ण बनकर औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर बैठता है[2]।

1· प्यासी पथराई आंखें - पृ॰56
2· आधुनिक कविता का मूल्यांकन - डॉ॰ मदान - पृ॰62

यदि नागार्जुन अपनी व्यंग्य रचनाओं में थोड़ा सा संयम और रखते तो वे कहीं और अधिक सफल होते । ऐसा प्राय: उन राजनैतिक राजाओं केलिए जिन्हें कवि जनहित की ओर से बेखबर मानता है, किया गया है । इस के पार्श्व में नेताओं की स्वार्थपरता और पीड़ित - दलित वर्ग की दयनीय स्थिति तथा उनके प्रति उमड़ती हुई कवि की अन्तर्वेदना है । जनता का शोषण होते देख नागार्जुन की सहन शीलता जवाब दे गयी है, और उसने व्यंग्य, आक्रोश एवं क्षेम मिश्रित प्रहार करना प्रारंभ कर दिया है । यही कारण है कि नागार्जुन के व्यंग्य में पैनापन आया है ।

डॉ॰ रामविलास शर्मा की राय में "भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिन्दादिली पैदा की, नागार्जुन उसका समर्थ प्रतिनिधि है[1] । प्रो॰ प्रकाशचन्द्र गुप्त के अनुसार" रचना ऊबड़ खाबड़ तो है, पर चट्टान की भाँति मज़बूती भी रखती है । डॉ॰नामवर-सिंह लिखते हैं कि "हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा या नागार्जुन [और केदार] ने[2]।

नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तलखी भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद वक्रता का विलक्षण सामजंस्य है ।

नागार्जुन ने अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने केलिए काव्य में कई नवीन प्रयोग किए हैं । वस्तुत: वे सीधे सादे और खरी-खोटी बात सुनने वाले, प्रगतिशील विचारधारा के एक संपन्न कवि हैं । और इस का प्रभाव उनकी अभिव्यक्ति में सहज ही देखा जा सकता है । इसीलिए कहीं कहीं उनकी रचना में अभिधात्मकता आ गई है । यह सच है कि इन

1• डॉ॰हरिनारायण मिश्र "समकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य विद्रुप ग्रंथ-नई कविता - सं॰ वासुदेव नंदन प्रसाद सिंह - पृ॰100

2•

अभिधात्मक उक्तियों में कहीं साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव भी देख जा सकता है - इस के बावजूद प्रमुख व्यंग्यकार की दृष्टि से उन्होंने अभिनव प्रयोग भी किए है जो उनकी अभिव्यंजना-शक्ति के परिचायक हैं -

ओं शब्द ही ब्रह्म है
~~ओं शब्द ही ब्रह्म है~~
ओं शब्द और शब्द और शब्द
ओं प्रणव ओं नाद ओं मुद्रायें
ओं वक्तव्य ओं उद्गार ओं घोषणायें
ओं दालों में एक दल अपना दल ओं
ओं गद्दी पर आजन्म वज्रासन
ओं ट्रिब्यूनल, ओं आश्वासन
ओं गुटनिरापेक्ष सत्ता-सापेक्ष जोड़ तोड़
ओं छल छन्द ओं मिथ्या, ओं होड़म होड
ओं बकवास, ओं उद्घाटन
ओं मारण - मोहन ~~[illegible]~~ उच्चाटन[1] ।

इस में केवल कुछ शब्दों के द्वारा देश में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया गया है । यही बड़ी इंगित गर्भित कविता है । इस प्रकार अभिव्यंजना की दृष्टि से नागार्जुन कविता में नयी नयी टेकनिक अपनाना चाहते हैं । व्यंग्य को उन्होंने एक उत्कृष्ट रूप प्रदान किया है । कवियों की घिसी-पिटी अभिव्यंजना - विधि की वे आलोचना करते हैं ।

---

1. पाण्डुलिपि से ।

व्यंग्यात्मक शैली नागार्जुन काव्य का आकर्षण है । उनकी अधिकांश कविताएं इस शैली से ओत-प्रोत हैं । कहीं इस का प्रखर रूप उनके काव्य में दिखाई देता है । स्वदेशी नेताओं के भ्रष्टाचार, पूंजी-पतियों द्वारा मजदूरों का शोषण, अस्वस्थ रूढ परंपराओं आदि सब पर तीखे व्यंग्य उन्होंने किए हैं । इस व्यंग्य ने "रामराज्य के सपने टूटने पर तेवर बदलती हुई हिन्दुस्तानी जनता की रोषभरी फुफकार का रूप ग्रहण कर लिया है"¹ ।

नागार्जुन के व्यंग्य में कहीं मीठी चिकोटी एवं कहीं तिक्तता से युक्त आक्रोश का रूप हमें दिखाई देता है । स्वस्थ और मार्मिक व्यंग्य करने केलिए सच्चा अनुभव, तीव्र अनुभूति और मानसिक स्वस्थता एवं तटस्थता अनिवार्य रूप से अपेक्षित है, जिसके अभाव में व्यंग्य करने का प्रयास मात्र आक्रोश रह जाता है ।

नागार्जुन के काव्य में इन सब गुणों के साथ आक्रोश भी देखा जा सकता है, जो कवि ने अशिव शक्तियों पर व्यंग्य करते हुए व्यक्त किया है । तेजी और गर्मी ने नागार्जुन के काव्य में आक्रोश का रूप ले लिया है । प्राय: शोषितों की असहनीय पीडाओं को देख, उसकी तीव्र प्रतिक्रिया उत्तरदायी परिस्थितियों के विरुद्ध व्यंग्य मिश्रित आक्रोश का रूप ले नागार्जुन काव्य में उभरी है । नेताओं को जनहित की स्पष्ट अवहेलना करता एवं मात्र अपनी स्वार्थसिद्धि में संलग्न होता देख कवि ने "रामराज्य में रावण का नंगा नाच" निरूपित किया है ।

---

1. युगधारा [कवर] - डॉ. रामविलास शर्मा

व्यंग्यात्मक शैली के विविध रूप हमें नागार्जुन में दिखाई देते हैं। किसी किसी कविता में व्यंग्य, आक्षेप, हास्य, आक्रोश और प्रहार एक साथ दिखाई पड़ते हैं। व्यंग्य रचना केलिए नागार्जुन ने विविध शैलियाँ अपनाई है। "चना जोर गरम" के लटके की शैली से लेकर मुक्त वृत्त के आधुनिकतम रूप को उन्होंने व्यंग्य रचना का माध्यम बनाया है। इस में नाटकीय शैली बेहद सराही जा चुकी है। सौदा, प्रेत का बयान, मास्टर, अमलेन्दु एम॰एल॰ए॰ आदि इसी शैली की रचनाएं हैं, जिन्होंने व्यंग्य रचना के क्षेत्र में नवीन प्रतिमान प्रस्तुत किए है"[1]।

नागार्जुन के व्यंग्य की नाटकीय शैली के कारण ही कुछ रचनाएं अपना अलग आकर्षण रखती है; जैसे "फिजो दलाई" और "जयप्रकाश" के सम्बन्ध में लिखी व्यंग्य कविताएं"[2]।

इसी प्रकार "बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के" कविता में भी "चनाजोर गरम" वाले लटके की शैली अपनाई गई है। "चना जोर गरम" से "मंत्र" कविता तक व्यंग्य की विभिन्न शैलियाँ नागार्जुन काव्य में प्रयुक्त हुई है जिन में कवि ने विनोद वक्रता से लेकर पैनेपन तक का निर्वाह किया है।

यह अवश्य है कि नागार्जुन की कुछ व्यंग्य रचनाओं में नागार्जुन का कवि कहीं कहीं बड़ा उथला रूप भी लेकर उपस्थित हुआ है, जहाँ उन्होंने नेहरू आदि नेताओं के व्यक्तिगत नाम ले लेकर अपशब्द कहना आरंभ कर दिया है। व्यंग्य रचनाओं में सम्बन्धित का नाम न आना उसकी श्रेष्ठता की प्रमुख कसौटी है जिसे नागार्जुन कहीं कहीं भूल चले हैं फिर भी व्यंग्य में अन्य कवि नागार्जुन से पीछे है।

1॰ समकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य विद्रूप, ग्रन्थ नई कविता
हरिनारायण मिश्र : सं॰ वासुदेवनंदन प्रसाद सिंह - पृ॰102

निराला के बाद की पीढी के समर्थ श्रेष्ठ व्यंग्य कवि नागार्जुन की रचनाएं अधिकांशतः मैथिली में रचित है। मैथिली में नागार्जुन ने "यात्री" उपनाम से समान भाव से लगातार लिखा है। लगभग 1940 में मैथिली में लिखना शुरू किया। 1943 में "बूढवर" नामक व्यंग्य कविता लिखी है।

विष बुझे बाणों जैसा तीक्ष्ण है उनका व्यंग्य। चित्रा में संकलित उनकी कविताएं, यथा; बूढवर, लखिमा एवं द्वंद्व निश्चय ही उपलब्धि रचनाएं हैं। "बूढवर" में बूढे वर की हास्यास्पद और उसकी विवाहिता के अन्तर की करुण तसवीर है, तो लखिमा में विद्यापति की प्रेयसी तथा राजा शिवसिंह की रानी का मार्मिक अन्तर्द्वन्द है। इस रचना के माध्यम से कवि ने सामंती मनोवृत्ति और बहुपत्नी - प्रथा की विडम्बना पर करुण एवं तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया है।

"द्वन्द्व" में गाँव से शहर आ गए एक व्यक्ति का अन्तर्द्वंद्व पूरी तार्किकता के साथ उभरा है, जिस में गाँव के पिछडेपन, लोगों की दकियानूसी मनोवृत्ति पर व्यंग्य के साथ साथ पीछे की ओर न लौटने का दृढ निश्चय है। "द्वन्द्व" कविता निश्चय ही नागार्जुन की प्रारंभिक प्रगतिशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण है जिस में वह किसी भी प्रकार की रूढिवादी मान्यता को स्वीकार करते हुए नहीं पाए जाते।

नागार्जुन के व्यंग्य के विकास के विषय में प्रो॰हरिनारायण मिश्र के ये शब्द उल्लेखनीय हैं। "नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तलखी, भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद वक्रता का

1· चित्रा - नागार्जुन - पृ·30

विलक्षण सामंजस्य है । दूसरों से नागार्जुन की भिन्नता इस अर्थ में है कि जहाँ और लोग सोच विचार कर किसी रचना को व्यंग्य बहुल बनाते हैं वहाँ नागार्जुन में व्यंग्य एक जन्मजात संस्कार के रूप में अथवा यों कहे कि चुभोना इनका स्वभाव सा है कि वह रोजमर्रा का बन गया है"[1] ।

यह कहने में आपत्ति नहीं है कि व्यंग्य की स्वस्थ परंपरा नागार्जुन ने स्थापित की है । राजनीतिक घटनाओं एवं परिस्थितियों की विडंबनाओं पर व्यंग्य लिखे, इसके बाद सामाजिक और आर्थिक असंगतियों पर । नागार्जुन की व्यंग्य कविताओं को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं - राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक । राजनीति पर हावी सामंती प्रवृत्तियों एवं उनके अधीन देश में रानी एलिजाबेथ के सम्मान में खर्च किए गए करोडों रुपए नागार्जुन की जनवादी चेतना को साल साल जाते हैं । उन्होंने इस प्रसंग में दो तीखी कविताएं लिखीं - "आओ राणी हम ढोएंगी पालकी" तथा "टके की मुंस्कान", करोडों का खर्चा" । ये कविताएं गरीब देश में सामंती परंपरा की पोषक महारानी के साथ साथ देश के उन कर्णधारों पर भी कटाक्ष करती है जो इस सारी स्थिति केलिए जिम्मेदार हैं -

आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी
यही हुई है राय जवाहरलाल की
भूखी भारतमाता के सूखे हाथों को चूम ले
प्रेज़ीडेंट के लंच डिन्नर में
स्वाद बदल लो, झूम लो
पद्मभूषणों, भारत-रत्नों से
उनके उद्‌गार लो ।

---

1. नई कविता - प्रो.हरिनारायण मिश्र - सं. डॉ.वासुदेवनंदन प्रसाद

पार्लियामेंट के प्रतिनिधियों से
आदर लो, सत्कार लो ।
मिनिस्टरों से शेक हैंड लो
जनता से जयकार लो[1] ।

बेबस, बेसुध, सूखे तिनकों के टुकड़ों के समान भारतीय जनता को माध्यम बनाकर किया जाने वाली रानी का सम्मान सचमुच ही विडम्बनापूर्ण था । "टके की मुस्कान, करोड़ों का खर्चा" में कवि ने शिकार के शौकीन महारानी के महाराजा द्वारा किए गए शिकार को
शिकार के शौकीन महारानी के महाराजा द्वारा किए गए शिकार को
व्यंग्य का शिकार बनाया है ।

बीत गई सर्दी, बीत गया माघ
रानी के खसम ने मारा है बाघ
x x x x x
टके की मुस्कान करोड़ों का खर्चा
इस ताम झाम की कहाँ नहीं है चर्चा[2] ।

यहाँ व्यंग्य इस बात पर हुई है कि - शिकार के मामूली से व्यसन केलिए करोड़ों का खर्चा कर डालना भारत जैसे गरीब देश केलिए आश्चर्य का विषय है । वास्तव में ब्रिटन के ही कारण भारत गरीब हुआ । जब रानी एलिज़बेथ भारत आई एवं उनके स्वागत पर धन पानी की तरह बहाया गया तो कवि के मन में तीव्र आक्रोश उत्पन्न हुआ ।

1· मुक्त - सं·विश्वनाथ - मार्च 1961 - पृ·13
2· प्यासी पथराई आँखें - पृ·60

छोटी से छोटी नौकरी केलिए भरती करने के नियम होते हैं। प्रत्याशी की शैक्षणिक योग्यता कम से कम क्या है, उसकी आयु कितनी हो आदि आदि। मंत्री बनने केलिए इस प्रकार के कोई नियम नहीं है। कवि ने इस असंगति पर व्यंग्य किया है --

अभी अभी उस दिन मिनिस्टर आए थे
बत्तीसी दिखलाई थी, वादे दुहराये थे,
भाषा लपटाई थी, नैन शर्माये थे,
छपा हुआ भाषण भी पढ नहीं पाए थे,
जाते वक्त हाथ जोड़ कैसे मुस्कुराये थे[1]।

निष्प्रयोजन शिक्षा सिवाय बेकारी की फौज बढाने के और क्या कर रही है। शिक्षा की दुर्दशा बराबर होती चली आ रही है। विज्ञान की स्नातकोत्तर डिग्री लिए हुए नौजवान क्लर्की कर रहे हैं। मेडिकल के ग्राजुएट एवं इंजीनियर नौकरी पाने केलिए हड़ताल कर रहे हैं,

खून पसीना किया बाप ने एक जुटाई फीस
आँख निकल आई पढ-पढ के नम्बर पाए तीस
शिक्षा मंत्री ने सिनेट से कहा, "अजी शाबास"
जीना हो जाता हराम यदि ज्यादा हो तो पास
फेल पुत्र का पिता दुःखी है सिर धुनती है माता
जन गन मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता[2]।

1· प्रेत का बयान

2· वही

कवि ने "स्वदेशी शासक" में स्वदेशी शासकों की हठधर्मिता, कथनी - करनी के अन्तर पर भी कड़ा - प्रहार किया है । इस कवितामें जहाँ स्वदेशी नेताओं के बहुरूपियेपन पर व्यंग्य है, वहाँ जनता जनार्दन की करुण विडम्बना को बहुत ही तीव्रता से उभारा है । बात बनने, बहाने करने, गप्पें करने, जमाइयाँ लेकर ताज़ा ताज़ा माल चाँदी के मुँह एवं कंचन की जीभ से चटकर जाने, चाटुकार की चाटुकारिता से आसमान पर चढ बैठने वाले स्वदेशी शासकों को नागार्जुन ने इस प्रकार संबोधित किया -

पश्चिम के विज्ञानवाद की छौंक मारकर
वायुयान से वापस आओ
हमें सीख दो शांति और संयत जीवन की
अपने खातिर क रो जुगाड़ अपरिमित धन की
बेच बेच कर गांधीजी का नाम
बटोरो वोट
हिलाओ शीश
निपोड़ो खीस
बैंक बैलेंस बढाओ
राजघाट पर बापू की वेदी के आगे अश्रु बहाओ
तेरा धीके चह बच्चों में, अमरित की हौदी में बाबू खूब नहाओ
हमें छोड़ दो राम भरोसे
जिए तो भले मरे तो भले
क्या बिगडेगा अजी तुम्हारा ।
आमों की गुठलियाँ चूर कर
भट्ठी की सौंधी मिट्टी में उस चूरन को सान सूनकी
खा लेते हैं लोग, पेड़ की छालों का तीमन बनता है ।[1]

1· युगधारा - 103-104

आगे चलकर इस कविता में एक व्यापक झकझोर देने वाली करुणा उस समय दिखाई देती है जब कवि मलेरिया भैया, काला बुखार, पेचिश, संग्रहणी एवं यमदूत की जय जयकार करता हुआ कहता है कि तुम तो दीन जन बन्धु, दयासागर, करुणामय हो, तुम तो उस समय सुनते हो जब कहीं कोई नहीं सुनता -

'हमें, हमारे घरवालों को, पडोसियों को दो छुटकारा
शीघ्र मुक्ति दो उस रौख से
जहाँ न भरता पेट, देश वह कैसा भी हो महानरक है ।
घर-बाहर भर गया तुम्हारा
रत्ती भर भी हुआ नहीं उपकार हमारा
व्यर्थ हुई साधना, त्याग कुछ काम न आया
कुछ ही लोगों ने स्वतंत्रता का फल पाया ।

स्वाधीनता के बाद राष्ट्र को प्रगति के पथ पर बढाने केलिए पंचवर्षीय योजनाएं बनती रही एवं देश कछुए की गति से प्रगति के पथ पर बढता रहा, नेता चैन की वंसी बजाते रहे । इसी विडम्बना पर नागार्जुन का व्यंग्य यहाँ उल्लेखनीय है -

आज़ादी की कलियाँ फूटी
पांच साल में होंगी फूल
पांच साल में फल निकलेंगी
रहे पन्त जी झूल झूल

---

1. युगधारा - पृ.105-106

पाँच साल कम खाओ भैया
गम खाओ दस-पन्द्रह साल
अपने ही हाथों तुम झोंको
यों अपनी आखों में धूल[1]।

"संत बिनोबा" कविता में नागार्जुन ने संत विनोबा के भू-दान आन्दोलन की इस विडम्बना पर कि दान देने वाले भी खेती-योग्य भूमि दान में नहीं दे रहे हैं तथा गाँवों में बेदखली का जाल अभी भी फैलाया जा रहा है, मीठा, तीखा और करुण व्यंग्य किया है -

सर्वोदय के संत, तुम्हारे मीठे-मीठे बोल -
सत्य अहिंसा जमींदार के दिल में देंगी घोल।
लो, वे कोसी का कछार करते हैं तुम को दान।
यहीं रहो तुम, मिल-जुल हम उपजावें खेडी धान[2]।

बिहार में "कोसी" नदी प्राय: हर वर्ष अपना मार्ग बदलती है एवं हज़ारों गाँव काल के कराल हाथों में समा जाते हैं। संत विनोबा के मीठे मीठे बोलों से प्रभावित जमीन्दार कोसी का कछार दान कर दें, तो कवि यही कह सकता है कि विनोबाजी आप भी अब यहीं रहिए, हम लोग मिलजुल कर मूंग और धान उगाएंगे। कहना न होगा कि इस कविता में कवि ने विनोबाजी के कार्य के प्रति पूर्ण आदर एवं श्रद्धा दिखाते हुए भी ज़मीन्दारों की जाडों में व्याप्त शोषण की प्रवृत्ति पर प्रहार किया है एवं विनोबाजी से भी यह बात समझने का अनुरोध किया है।

---

1. नई कविता - सं. वासुदेवनंदन प्रसाद - पृ.100
2. युगधारा - पृ.119

नागार्जुन की कविता में पौराणिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है । सामाजिक गति-विधि पर उन्होंने एक तीक्ष्ण व्यंग्य "वचन विसर गए" शीर्षक कविता में लिखा -

सीता हुई भूमिगत, सखी बनी सूर्पनखा
वचन विसर गए; देर के सबेरे के
बन गए साहूकार, लंकपति विभीषण
पा गए अभयदान, शाबन कुबेर के
जी उठा दसकंधर, स्तब्ध हुए मुनिगण
हावी हुआ स्वर्ण मृग, कंधों पर शेर के
बुद्ध भ्रम की लीला है, काम के रहे न राम
शबरी न याद रही, भूले स्वाद बेरके[1] ।

निष्कर्ष यह है कि निराला के बाद व्यंग्य का जोर दार हस्ताक्षर नागार्जुन का ही है । सभी प्रकार के व्यंग्य इनकी कविताओं में वर्तमान है; जो प्रशंसनीय है ।

प्रगतिशील एवं यथार्थवादी चित्रण कर्ताओं में "दिनकर" का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । दिनकर के काव्य रचनाकाल का आरंभ लगभग सन् 1930 से माना जाता है । दिनकर की कविता विभिन्न दिशाओं में चली, किन्तु सामाजिक एवं राजनीतिक पाखण्डों पर व्यंग्य करने में भी वे कभी पीछे नहीं रहे । वास्तव में व्यंग्य कविता का विकास स्वाधीनता के बाद पर्याप्त मात्रा में हुआ ।

---

1. वचन विसर

"मैं ने कहा, लोग यहाँ तब भी है मरतें" शीर्षक कविता, जो सन् 1945 के साप्ताहिक "योगी" [पटना] में प्रकाशित हुई थी एवं कालांतर में "नीम के पत्ते" नामक पुस्तक में संग्रहीत हुई थी। कवि ने छद्म नाम का संबल सम्भवत: इसलिए लिया हो कि वे उन दिनों सरकारी सेवा में थे, लेकिन उन्होंने आक्रोश को व्यक्त अवश्य किया। इस रचना में दिनकर के व्यंग्य कौशल की बानगी देखते ही बनती है[1]।

यहाँ सरकारी उदासीनता एवं विदेशी सरकारी तंत्र द्वारा की गई कागज़ी कार्रवाई पर यह कड़ा व्यंग्य है। महामारी के समय उभरी हुई मार्मिक परिस्थितियों को तो दिनकर ने इस कविता में व्यक्त किया ही है, साथ ही दिनकर जी नकली एवं सतही आधुनिकता के भी शुरू से विरोधी रहे हैं। किसी आधुनिकता परस्त पर किया गया दिनकर जी का यह व्यंग्य बहुत तीखा है -

आधुनिकता की बही पर नाम अब भी तो चढ़ा दो,
नायलन का कोट हम सिलवा चुके हैं
और जड़ से नोच कर बेली चमेली के द्रुमों को
केक्टसों से भर चुके हैं बाग हम अपना[2]।

दिनकर के व्यंग्य के विषय में यह अवश्य कहा जा सकता है कि आक्रोश को व्यक्त करने केलिए दिनकर जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह परुष तो होती ही है, परंतु उनकी वक्रता भी बींध बींध जाती है। डॉ॰ सावित्री सिन्हा ने दिनकर के व्यंग्य पर विचार करते हुए कहा है "किसी की धज्जियाँ उड़ाने केलिए भी दिनकर के पास चित्रों की काफी

---

1. नीम के पत्ते पृ॰8
2. सामधेनी पृ॰20 - 1946 में रचित

पूंजी है । उनके मन में आक्रोश और उपहास जिन व्यंग्य चित्रों द्वारा व्यक्त होता है, उनकी प्रभावात्मकता "शंकर" के कार्टूनों से कम नहीं है। कार्टूनों की टेढी-सीधी, उल्टी, वक्र रेखाओं से चित्र उभारने में भी उतने ही कुशल है जितने रूप, श्रृंगार और कोमल भावनाओं के चित्र खींचने में[1]।

वास्तव में उनका व्यंग्य हमारे हृदय को कचोटता है एवं गुदगुदाता भी, कहीं उनका व्यंग्य प्रच्छन्न है और कहीं अप्रच्छन्न भी, लेकिन ऐसे स्थलों पर हमारे जीवन की किसी न किसी त्रुटि या समाज की किसी न किसी दुर्बलता का दिग्दर्शन स्पष्ट रूप में होता है ।

सन् 1945 के साप्ताहिक "योगी (पटना)" में प्रकाशित हुई थी । कलांतर में "नीम के पत्ते" नामक पुस्तक में संग्रहीत हुई थी, आद्योपांत तीव्र व्यंग्य प्रधान है जिस में कवि ने देश के उन सामाजिक और राजनीतिक नेताओं पर प्रखर व्यंग्य बाणों की वर्षा की है जो सन् 1945 में उत्तर बिहार की हैजा-मलेरिया ग्रस्त जनता के दुःख देख कर "घड़ियाली" आंसू बहाते और जनसेवी होने का स्वांग करते थे ।

15 अगस्त 1948 के प्रति लिखी "पहली वर्षगांठ" शीर्षक कविता में उन्होंने उन मंत्रियों या नेताओं पर व्यंग्य बाण बरसाए हैं जो "मुह में राम बगल में छुरी" रखते हैं -

आज़ादी खादी के कुरते की एक बटन,
आज़ादी टोपी एक नुकीली तनी हुई ।
फैशन वालों केलिए नया फैशन निकला
मोटर में बांधो तीन रंगवाला चिथडा ।
ओ" गिनो कि आंखें पड़ती है कितनी हम पर,
हम पर यानी आजादी के पैगम्बर पर[2] ।

---

1. युगाचरण - पृ.265

अँग्रेज़ों के समय में खुशामदियों की एक फौज एकत्रित हो गयी थी, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मंत्रियों के चाटुकारों की भी इसी तरह से एक फौज तैयार होने लगी थी। जिन लोगों का जीवन त्याग एवं तपस्या का रहा था वे ही अपने आदर्शों को तिलांजली दे भ्रष्ट हो चले थे। ऐसे लोगों पर श्वान के प्रतीक से व्यंग्य किया गया है -

रामजी तुम्हारा श्वान है,
कोढी है, अपाहिज है, बडा बेईमान है।
अयश में डालता है तुम को,
बकिए के सामने हिलाता सदा दुम को।
जूठी पतलें भी चाट लेता है,
राही जो मिले तो भोंकता है काट लेता है।
x x x x x x
नरक में चौकडी है भरता,
औघड है वमन का ध्यान नित्य करता।
नाक दबी, गलने को कान है,
रोम झरे जा रहे जो पाप का निशान है
तुलसी के पास चल सोता है,
श्वान भी ढकोसलों में तेज बडा होता है
प्रेम पुचकार सुनता नहीं,
जूते खाए बिना किसी की भी सुनता नहीं
राम ! मेरी जूतियों की ताल दो
इस के गले में या चिकोटी एक काट दो[1]।

---

1. चाणक्य - पृ. 1

यहाँ कवि ने जहाँ युग सत्य की अभिव्यक्ति की वहाँ उन्होंने सार्वकालिक सत्य की भी व्यंजना की है । कवि ने अनुशासन हीन छात्रों को जो भावी नेता है और कर्तव्यच्युत ड्राइवरों को अपने व्यंग्य बाण से विद्ध किया है --

है कहाँ तुम्हारी आज़ादी· क्या स्कूलों में
अनुशासन लौंडा हुआ जहाँ बिल लाता है·
हड़ताल, कर्ण भेदी प्रचण्ड कोलाहल में
है जहाँ गर्क भावि नेताओं के समूह·
या उस इंजिन पर जिसे ड्राइवर खड़ा छोड़
है चला गया बाजार कहीं सुरती लाने·[1]

गांधी के नाम का उनके तथाकथित भक्तों ने बहुत दुरुपयोग किया । उनके बताए सिद्धान्तों को छोड़ अपनी स्वार्थ-सिद्धि केलिए उनकी ख्याति का दुरुपयोग करना आरंभ कर दिया । दिनकर जी ऐसे व्यक्तियों को लक्ष्य बनाकर "नए सुभाषित" में लिखते हैं -

गांधी को उल्टा घिसो
और जो धूल झरो,
उसके प्रलेप से
अपनी कुण्ठा के मुख पर
ऐसी नक्काशी गढ़ो कि,
आखिर बापू की और क्या बात करते हैं·[2]

1· पहली वर्षगांठ

2· नए सुभाषित - पृ·13

कवि के व्यंग्य बाणों ने उन गांधीवादी नेताओं के आचार विचार एवं वेशभूषा की धज्जी उड़ा दी है जो गांधी टोपी धारण करते हैं। लेकिन चोर बाजारी करने से बाज नहीं आते -

अथवा मुट्ठी भर उन नोटों के बंडल में
हो रहे देखकर जिन्हें चांद-सूरज अधीर।
टोपी कहती है, मैं थैली बन सकती हूं।
कुरता कहता है, मुझे बोरिया ही कर लो।
ईमान बचा कर कहता है, आँखें सब की,
बिकने को हूं तैयार, खुशी हो जो दे दो[1]।

गांधीजी के आचरण की नकल न कर जो वेश-भूषा में उनकी नकल कर गांधी बनने की चेष्टा करते रहे हैं उन पर दिनकर ने लिखा -

कुर्ता टोपी फेंक कमर में गले बांध लो
पांच हाथ की धोती घुटनों के ऊपर तक
अथवा गांधी बनने के आकुल प्रयास में
आगे के दो दांत डाक्टर से तुड़वा लो[2]।

नेता अनैतिक हो गए। निधड़क होकर भ्रष्टाचार करने लगे। धन लिप्सा की मात्रा इतनी बढ़ गयी कि वे अन्धे हो गए -

---

1. पहली वर्षगांठ
2. नाए सुभाषित - पृ.45

अथवा मुट्ठी भर उन नोटों के बंडल में,
हो रहे देखकर जिन्हें चांद-सूरज अधीर।
टोपी कहती है, मैं थैली बन सकती हूं ।
कुरता कहता है, मुझे बोरिया ही कर लो ।
ईमान बचाकर कहता है आंखें सब की
बिकने को हूं तैयार, खुशी होकर जो दे दो[1] ।

"कवि का मित्र" में कविता में मित्र जब आता है तब "कोई है" कह कर पुकारता है । उसके चरणों की आहट पहचान कर कवि के प्राण कांपने लगते हैं, हालांकि वे यमदूतों से भी, यदि काम पड़े तो, नहीं डर सकते । मित्र आकर फिर शीघ्र जाने का नाम नहीं लेता -

मेरी कुरसी खींच, बैठकर बहुत पूछता हाल,
(कह दूं, आहट सुनी तुम्हारी और हुआ बेहाल।)
उलट-पुलट कविता की कापी देने लगता राय,
कहां पंक्तियों शिथिल हुई हैं। वहां हुई असहाय।
देता है उपदेश बहुत, देता है नूतन ज्ञान,
मेरी गन्दी रहन-सहन पर भी देता है ध्यान ।
सब कुछ देता, एक नहीं देता अपने से त्राण
x x x x
सब सिगरेट खत्म कर कहता, एक और दो भार,
बक्से खोल, दराज खोलता रह-रह विविध प्रकार ।
एक नहीं खोलता कभी बाहर जाने का द्वार[2] ।

1· नीम के पत्ते - पृ·18

2· कवि का मित्र

वह पान खा-खाकर तरह तरह की सुन्दर बातें कहता है, लेकिन जाने की बात नहीं करता । वह अनमोल समय की याद दिलाता है और कहता है कि तुम गप्पों में बहुत वक्त बर्बाद करते हो -

जब देखो तब मित्र पडे हैं डट कर आठों याम ।
इस प्रकार कब तक चल सकता है लेखक का काम।
आशा कितनी बडी लगा तुम से बैठा है देश ।
और इधर तुम बकवासों में समय रहे कर शेष ।
सिर्फ सुनाता ही है, सुनता स्वयं नहीं उपदेश ।[1]

कवि सिर खुजलाते हैं या मुद्रा मलीन करते हैं, कलम पकड सिर थाम कर कल्पना में लीन हो जाते हैं या जितना भी नाट्य करते हैं, लेकिन मित्र किसी तरह की मुद्रा से अधीर नहीं होता -

कहता - हाँ तुम लिखो, इधर मैं बैठा हूँ चुपचाप ।
मैं कहता, मन ही मन, बाकी अभी बहुत है पाप;
लिखे खाक, जब तक दिमाग पर चढे हुए है आप ।[2]

"एनार्की" नामक कविता में कवि की पैनी दृष्टि सर्वत्र पहुंचती है एवं यहाँ लेखक के व्यंग्य का तरीका प्रशंसनीय भी है :-

लोग हैं आज़ाद बिल लाने को।
नेता हैं आज़ाद जहाँ चाहें, वहाँ जाने को ।
अफसर परम स्वतंत्र हैं ।
मंत्री जी हज़ार पढें, लगते न मंत्र हैं ।
साहब तो खुद परेशान है ।
चपरासी देते उन्हें पानी न तो पान हैं ।
अजब हमारा यह तंत्र है ।

नकली दवाइयों का व्यापारी स्वतंत्र है ।
पुलीस करें जो कुछ, पाप है ।
चोर का चाचा जो है, पुलिस का भी बाप है ।
अखबार मुफ्त है चुपाने को,
विज्ञापन दाताओं का मरम छुपाने को[1] ।

इसके मुताबिक लेखक ने मंत्री मंडल पर भी प्रखर व्यंग्य बाण छोडा है । जैसे -

जहाँ भी सुनो, यही आवाज़ है,
भारत में आज, बस, जीभ का स्वराज है ।
और मंत्री भी न अमुख हैं ।
एक केबिनट के यहाँ अनेक मुख हैं ।
एक कहता है, हाहाकार है,
दाम में लगाम कसो, देश की पुकार है ।
दूसरे की मति अति शुद्ध है,
कहता है, नीति यह धर्म के विरुद्ध है[2] ।

कवि जनता को "नेता" नामक कविता द्वारा उपदेश देते हैं । यह भी व्यंग्य के उदाहरण के सिल सिले में प्रस्तुत कर सकता हूँ -

नेता का अब नाम नहीं ले,
अन्धेपन से काम नहीं ले,
हवा देश की बदल गयी,

---

1. एनार्की - दिनकर
2. वही

चांद और सूरज, ये भी अब
छिप कर नोट जमा करते हैं ।
और जनता नहीं अभागे
मन्दिर का देवता चोर बाजारी में पकड़ा जाता है।
फूले इसे पहलाएगा तू
अपना हाथ घिनाएगा तू।[1]

दिनकर की विनोद प्रवृत्ति केलिए "दिनचर्या" नामक कविता मशहूर है । उन्होंने आरंभ में अपने पर व्यंग्य किया है -

सब से पहले दर्पण में निज को देखा करता हूं,
इस विचार से नहीं कि मेरा मुख सब से सुन्दर है ।
(अब सौन्दर्य कहां। आंखों के पास मेघ छाए हैं,
गालों पर गंगा - यमुना के श्रोत निकल आगे है)[2]

और आगे कवि लिखते हैं -

तब तक आती डाक, भीड़ से अलग छूट पड़ता हूं,
बंडल पर भूखे मनुष्य के सदृश टूट पड़ता हूं ।
किन्तु रोज ही सब्जी कम, कम्पोस्ट अधिक होते हैं,
बन्द लिफाफे विरल, खुले बुकपोस्ट अधिक होते हैं ।
और खोलिये उन्हें अगर तो वही एक क्रन्दन है,
"बन्धु ! यहां उंचे कवियों का भारी सम्मेलन है ।
निश्चय ही, इस बार आप, आशा है, दर्शन देंगे,
वह भी बतलाइए, फीस, कम से कम कितनी लेंगे।[3]

---

1. नेता - दिनकर
2. दिनचर्या
3. वही

दिनकरजी के खण्डकाव्य एवं महाकाव्यों में भी स्थल-स्थल पर व्यंग्य की मार्मिक व्यंजना है । जब कृपाचार्य देख लेते हैं कि यदि अर्जुन कर्ण से लड़ेगी तो अवश्य हार जाएगा तब कूटनीति से काम लेते हैं और कर्ण से उसकी जाति पूछते हैं । यह सुनकर कर्ण तथाकथित कुलीन वंशियों पर व्यंग्य बाण बरसाता है, और कहता है -

बाहर-बाहर टीम-टाम, भीतर काले के काले,
शरमाते हैं नहीं जगत में जाति पूछने वाले।[1]

जब इन्द्र छद्मवेश में कर्ण से कवच कुण्डल मांगता है तब कर्ण एक से एक प्रखर व्यंग्य बाण छोड़ता है -

पर कहता हूँ मुझे बना निस्त्राण छोड़ते हैं क्यों।
कवच और कुण्डल ले करके प्राण छोड़ते हैं क्यों।
यह, शायद, इसलिए कि अर्जुन जिए, आप सुख लूटे,
व्यर्थ न उसके शर अमोघ मुझ पर टकरा कर टूटे
उधर करें बहु भांति पार्थ की स्वयं कृष्ण रखवाली,
और इधर मैं लड़ूं लिए यह देह कवच से खाली ।
तनिक सोचिये, वीरों का यह योग समर क्या होगा।
एक बाज का पंख तोड़ कर करना अभय अपर को,
सुर को शोभे, भले, नीति यह नहीं शोभती नर को[2] ।

वास्तव में हम जिसे हस्तबल से नहीं जीत सकते, उसे छल से मारना उचित नहीं, क्योंकि सचाई पर हार कर भी मनुष्य हारता नहीं एवं वीरता की पहचान युद्ध है तथा चूंकि इन्द्र ने असत्य के मार्ग पर चल कर ही विजय-श्री पायी है, इसलिए उसकी जीत भी हार ही है । यही कारण है, कर्ण उसे और उसके पुत्र अर्जुन को एक ही व्यंग्य बाण से ही विद्ध करता है -

---

और पार्थ यदि बिना लड़े ही जय केलिए विकल है,
तो कहता हूं इस जय का भी एक उपाय सरल है ।
कहिए उसे, मोम की मेरी एक मूर्ति बनवाये,
और काटकर उसे जगत में कर्ण-जयी कहलाए ।[1]

कर्ण जब अर्जुन को मारने केलिए बाण निकालता है तब अश्वसेन नामक भुजंग उस से निवेदन करता है कि मैं अर्जुन का शत्रु हूं और तुम यदि मुझे धनुष पर चढा लोगे तो मैं उसका प्राणांत कर दूंगा । यह सुनकर कर्ण हंसता है, उसे फटकारता है एवं मानव भुजंगों पर व्यंग्य बाण बरसाता हैं -

हे अश्वसेन ! तेरे अनेक वंशज हैं छिपे नरों में भी,
सीमित वन में ही नहीं, बहुत बसते पुर-ग्राम-घरों में भी ।
ये नर-भुजंग मानवता का पथ कठिन बहुत कर देते हैं,
प्रतिबल के वध केलिए नीच साहाय्य सर्प का लेते हैं ।[2]

इस के मुताबिक 1945 के लगभग उन्होंने विषमता एवं विडंबना को अपने ढंग से व्यक्त किया । 1945 ई॰ में उत्तर बिहार में हैजा एवं मलेरिया बडे जोरों से उठे । देश के समस्त नेता तथा सामाजिक कार्यकर्ता जेलों में बंद थे । बिहार की जनता ने सरकार से अपील की कि राजेन्द्र बाबू को रिहाकर दे ताकि वे जनता की सेवा कर सकें । लेकिन सरकार ने ऐसा नहीं किया । उन दिनों में सरकार का मुख्य कार्यालय रांची में था । रिलीफ संगठन तो पटना में हो रहा था । इस कारण रांची और पटने के बीच नेताओं और अफसरों का आवागमन तो खूब बढा पर जनता को कोई राहत न पहुंच सकी । संक्षेप में कहा जाए तो सहायता

---

1. रश्मिरथी
2. वही

कागज़ पर ज्यादा एवं व्यवहार में कम कामयाब हुई. । दिनकर ने उस समय बाबा "अगिन गिरी" के नाम से पटना के विख्यात साप्ताहिक में कविता लिखी। दिनकरजी के छद्म नाम का संकेत "मैं ने कहा, लोग यहां तब भी हैं मरते", इसलिए लिया हो कि वे उन दिनों सरकारी सेवा में थे, पर उन्होंने आक्रोश को व्यक्त अवश्य किया। इस रचना में दिनकर के व्यंग्य कौशल की बानगी देखते ही बनती है[1]।

सरकारी उदासीनता और विदेशी सरकारी तंत्र द्वारा की गई कागज़ी कार्रवाई पर यह बडा व्यंग्य है । महामारी के समय उभरी हुई मार्मिक परिस्थितियों को तो दिनकर ने इस कविता में व्यक्त किया ही है, साथ ही दिनकर नकली और सतही आधुनिकता के भी शुरू से विरोधी रहे हैं । किसी आधुनिकता परस्त पर किया गया दिनकर जी का यह व्यंग्य बहुत तीखा है -

आधुनिकता की वही पर नाम अब भी तो चढा दो,
नायलन का कोट हम सिलवा चुके हैं
और जड़ से नोच कर बेली चमेली के द्रुमों को
केक्टसों से भर चुके हैं बाग हम अपना[2] ।

दिनकर के व्यंग्यों के विषय में निष्कर्ष रूप से यह अवश्य कहा जा सकता है कि आक्रोश को व्यक्त करने केलिए दिनकर जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह परुष तो होती ही है, परंतु उनकी वक्रता उल्लेखनीय है । डा॰ सावित्री सिन्हा ने दिनकर के व्यंग्य पर विचार ~~विचार~~ करते हुए यहां तक कहा है - "किसी की धज्जियां उडाने केलिए भी दिनकर के पास चित्रों की काफी पूंजी है उनके मन का आक्रोश और उपहास जिन व्यंग्य चित्रों द्वारा व्यक्त होता है, उनकी प्रभावात्मकता "शंकर" के कार्टूनों से कम नहीं है । कार्टूनों की टेढी सीधी, उल्टी, वक्र, रेखाओं से चित्र उभरने में भी उतने ही कुशल हैं जितने रूप, शृंगार और कोमल भावनाओं के चित्र खींचने में"[3] ।

उपरोक्त व्यंग्यों के अलावा राजनीतिक व्यंग्य ही अधिक लिखे हैं जिन में ढोंग, पाखंड और कृत्रिमता की विशेष रूप से खबर ली गयी है। दिनकर जी की स्वाधीनता पूर्व की रचनाएं एक आक्रोशवान प्रगतिशील कवि की रचनाएं थी, जो नए जागरण का मंत्र फूंकता हुआ पीढी और पुरानी पीढी दोनों को जगाने के प्रति प्रतिबद्ध था, इसलिए उन्होंने दारुण स्थितियों के व्यंग्य को उभारा; लेकिन स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उभरे ढोंगे और मिथ्याचार पर दिनकर ने अत्यन्त सटीक और सच्चे व्यंग्य किए हैं।

हरिवंशराय बच्चन ने "मधुशाला", "मधुबाला" के गीतों से कवि का जीवन आरंभ करके अपने काव्य संसार को व्यापक बनाया था। इस सब में बच्चन को विरोध का सामना भी करना पडा। कवि मधुबाला, मधुबाला का प्रयोग प्रतीक के रूप में कर रहे थे। लेकिन यह सब समझने की अपेक्षा उनके आलोचकों ने उन प्रतीकों पर ही आक्रमण आरंभ कर दिया। इन आक्रमणों का उत्तर बच्चन ने "मधुकलश" के कुछ गीतों में दिया है। व्यंग्य करने एवं उसे उभारने की प्रवृत्ति बच्चन में इसी काल से आरंभ हुई। जब लेखक पर आरोप लगाए जा रहे थे कि बच्चन अपनी कविताओं के माध्यम से छिछली वासना का प्रचार करते हैं। उनके विरुद्ध काफी दूषित एवं पूर्वाग्रहयुक्त वातावरण तैयार हो गया। तब बच्चन ने अपनी वेदना एवं पीडा को अपने उत्तरों में प्रतिध्वनित किया। "कवि की वासना" गीत में उन्होंने आलोचना पर व्यंग्य किया -

वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी।
मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधु समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल रहित व्यवहार मेरा।

यह संसार बूढ़ी है और ईर्ष्यावश इसे मेरी क्षणिक जवानी भी अखर रही है । इस संसार के समस्त जाने माने लोगों के समान यदि मैं ने भी अपनी दुर्बलताओं को छिपाया होता, तो ये भी मुझे साधु समझते, क्योंकि मेरा व्यवहार निष्कलुष तथा छल रहित था, इसलिए वह मेरा शत्रु बन गया है । इस गीत में बच्चन ने अपने समस्त विरोधियों और आलोचकों को अत्यधिक स्पष्ट उत्तर देने के साथ उन पर व्यंग्य भी कर दिया है ।

निजी पीडाओं, दुःखों, विरह-मिलन को गीतों के माध्यम से व्यक्त करने में निपुण बच्चन के कवि-व्यक्तित्व का दृष्टिकोण सर्वदा ही अन्तर्मुखी नहीं रहा, अवसर आने पर वह समाजोन्मुखी भी हुआ । "बंगाल का काल" में बच्चन की निजी पीडा-संवेदना मानो लाखों भूखों मरते बंगालवासियों के क्रन्दन और पीडा में लीन हो गई । स्वयं बच्चन ने कहा है कि "जीवन का एक पक्ष व्यर्थ है, इस से तो इनकार नहीं किया जा सकता । बहुत सी घटनाओं की एक सामूहिक प्रतिक्रिया होती है । व्यक्ति के एकांकी रहने का अधिकार तभी पूर्ण सुरक्षित रह सकता है, जब उस समूह में रहने से भी इनकार न हो । जहाँ समूह ने मुझ से माँग की है, मैं ने अपनी वाणी का बल उसे दिया है[1] ।

बंगाल के अकाल के समय बच्चन आदि कवियों ने ऐसी ही माँग की थी एवं स्वयं बच्चन ने अपनी वाणी का बल "बंगाल का काल" रचना में दिया था । लेखक कीवस से पहले की रचनाओं में जहाँ मधुशाला, मधुबाला एवं मधुकलश की रुबाइयों अथवा गीतों का अनन्य महत्त्व है, वहाँ बंगाल का काल अपनी सार्वजनीन दृष्टि और व्यापक संवेदना के कारण निश्चित ही

---

1. आधुनिक कवि - 7 , बच्चन - पृ.10

एक ऐतिहासिक कृति है । यही नहीं, पैंसठ पृष्ठों की उस लंबी कविता में व्यंग्य, आक्रोश और विद्रोह से युक्त बहुत सी सामग्री मिलती है, जापानी कवि योन नागूची ने भारत में देश की अकर्मण्यता को देखकर कभी कहा था कि तुम्हें अपने देशवासियों को भूख का अर्थ बताना है । बच्चन को अकाल के समय यह बात याद हो आई और इस सन्दर्भ भी में उन्होंने तत्कालीन स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया -

यदि मुझे हो आई सहसा
एक पते की बात पुरानी
हुए दस बरस,
जापानी कवि योन नगूची
भारत में था,
देख देश की अकर्मण्यता
उसने यह आदेश किया था -
"यू हेवटु गिव योर पीपुल
दि सेंस आफ हंगर" -
"अपने देशवासियों को है तुम्हें बताना
अर्थ भूख का"
जब कि हंसा था,
जहाँ करोड़ों, दिन-भर-खप
आधा पेट नहीं भर पाते,
एक बार भी जो जीवन में
नहीं अघाते,
और जहाँ का नेता-नेता
नहीं भूलता है दुहराना
नेता भाषण,
स्टारविंग मिलियन -
भूख अनगिन,

वहाँ सुनाना,
"अपने देशवासियों को है तुम्हें बताना
अर्थ भूख का"
कितना उपहासास्पद, सच है,
कवि ही ठहरे,
जल्प दिया जो जी में आया[1]।

प्रस्तुत कविता में बच्चन ने तत्कालीन अकर्मण्यता, भूख के मारे त्राहि-त्राहि करती बंग-जनता, नेताओं की भाषण-प्रियता की विडम्बना पर पैना व्यंग्य किया है। यह एक अत्यंत करुणा एवं अवसादयुक्त स्थिति थी जिस से बच्चन की मनःस्थिति का आभास भी मिल जाता है। ऐसा नहीं है कि समूह की माँग की पूर्ति बच्चन ने इसी कविता में की हो, उन्होंने अपनी परवर्ती रचनाओं में इस माँग को भरपूर व्यंग्य के साथ पूरा किया है।

अश्क जी यद्यपि कथाकार एवं नाटककार के रूप में ही अधिक प्रतिष्ठित हैं; यथापि उनका काव्य-सृजन पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है, विशेषतः उनका परवर्ती काव्य सृजन।

दीप जलेगा [1948] अश्क की प्रारंभिक स्फुट कविताओं का समग्र संकलन है। इस के बावजूद "चाँदनी रात और अजगर" और "सड़कों पे ढले साये" इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनकी एक महत्त्वपूर्ण पद्य-कहानी है "बरगद की बेटी" इस में बहुत कम व्यंग्य देखने को मिलता है। इज्जत के संबन्ध में कवि का कहना है :

---

1. बंगाल का काल - पृ.47-48 [बारहवाँ संस्करण] 1976

इज्जत क्या धनवानों की है,
निर्धन का कुछ मान नहीं।
निर्धन का अपमान भला था
निर्धन का अपमान नहीं।

चरवाहे निर्धन हैं तो क्या
प्यारा उनको मान नहीं।
संकट में हो मान, रहे तब
जीवन का कुछ ध्यान नहीं[1] ।

"तुम कहते हो आज दुःखी मैं" में लेखक ने बड़ा सूक्ष्म व्यंग्य किया है । दुनिया के दुख को अपना दुःख मान गया है -

तुम कहते हो, "आज दुःखी मैं !
आँख उठा कर देखो, जग में,
कौन, नहीं जिसने दुःख पाया।
कौन, नहीं जिसके नयनों पर
पड़ी अचानक दुःख की छाया[2] ।।

"नीम से" यह एक रूमानी कविता है । कहीं कहीं हल्का व्यंग्य दृष्टिगोचर है ।

इस तेरी छिदरी छाया ने,
दो बंधे हुए मन देखे हैं
गत-आगत जिनका भाग बनें,
कुछ ऐसे भी क्षण देखे हैं ।

1· बरगद की बेटी - पृ·61 {द्वितीय संस्करण} 1963
2· दीप जलेगा - पृ·130

जिन के बदले में ठुकरा दूं,
मैं शत शत जीवन, देखे हैं । ओ नीम[1]

दलदली दिन में भी कवि का व्यंग्य दृष्टि गोचर है -

किवाडों को न खोलो, बन्द रहने दो,
जगावो मत उनींदें लैम्प -
खिडकियों पर छोड़ दो पर्दे -
ज़रा सा यह उजेला भी बदल जाये अंधेरे से[2]।

इसी प्रकार का व्यंग्य मात्र इनकी कविताओं से प्राप्त है । राजनीतिक व धार्मिक व्यंग्य इन की कृतियों में विरले हैं । तो भी रूमानी व्यंग्य ही इन में मुख्य है ।

प्रसाद की कामायनी "1935" में व्यंग्य के उदाहरण सहज ही उपलब्ध हैं । कामायनी में व्यंग्य प्रहार की भाषा में उत्पन्न किया गया है ।

ओ चिंता की पहली रेखा,
अरी विश्व बन की व्याली;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली[3]।

---

1. दीप जलेगा - पृ.149
2. सडकों पे ढले साये - पृ.55
3. कामायनी [दशम संस्करण] पृ.5

यहाँ चिन्ता को "विश्व वन की व्याली" कहकर कवि ने चिंता पर व्यंग्य किया है । अपने बल-वैभव का डंका बजा-बजाकर पूर्णतः नष्ट हो जाने वाले देवताओं केलिए मनु द्वारा कहे गए निम्नांकित शब्द प्रहारात्मक व्यंग्य का सटीक उदाहरण है -

अरे अमरता के चमकीले पुतलो ! वे तेरे जयनाद,
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानो दीन विषाद[1] ।

प्रस्तुत सर्ग में मनु द्वारा आत्म व्यंग्य के रूप में जिस करुणा की सृष्टि हुई है, वह निश्चय ही हिला देने वाली है । देव-जाति के स्वर्णिम युग और वैभव को नष्ट कर डालने वाले प्रलय की याद के उपरांत जब मनु स्वयं पर दृष्टि डालते हैं तो अपने को जीवित पाने की प्रसन्नता के स्थान पर उन्हें ग्लानी ही अधिक होती है । अमरता को दंभ मानकर असीम वेदना से छटपटाते हुए मनु ने स्वयं को निम्नांकित आत्मव्यंग्य के माध्यम से छील-छील डाला है -

आज अमरता का जीवित हूँ मैं वह भीषण जर्जर दंभ
आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्रमय-सा विष्कंभ[2] ।

यहाँ भोगविलास में लिप्त देवजाति के सर्वनाश की सत्यकथा कहने का कार्य भार नियति ने इसी "विष्कंभ" पर तो डाला है । नाटक के पहले ही अंक में अधम पात्रमय विष्कंभ की उपस्थिति कितनी वेदना पूरित हो सकती है, इसकी कल्पना सरलता से की जा सकती है ।

---

1. मामायनी [दशम संस्करण] पृ. 7
2. वही पृ. 18

प्रसाद की कविताएं अपने व्यंग्य केलिए आलोचकों का ध्यान प्राय: आकर्षित नहीं कर सकी है । वैसे ही प्रसाद जी विनोदी स्वभाव के थे । जिससे खुल जाते उस से तो मज़ाक करते ही, उसके समक्ष अपनी हंसी उडाने से भी नहीं चूकते । रायकृष्णदास ने एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है : उन्नीस सौ छत्तीस के अन्त में लखनऊ में एक धूम धामी प्रदर्शनी हुई थी । जब प्रसाद वहां जाने का मंसूबा बांध रहे थे, एक दिन काशी के खादी-भंडार में सुनहले रंग की एक बडी सुंदर रेशमी छींट दिखाई दी । उसको मुझे दिखाकर कहने लगे - आओ, हम-तुम इसका रूईदार ओवर कोट और कंटोप बनवारे और वही पहनकर प्रदर्शनी में निकलें । लोग प्रदर्शनी देखना भूल-भालकर हम को ही देखने लगेंगे[1] ।

"तार सप्तक" में परिचय देते हुए रामविलास शर्मा के संबध में कहा गया है "रामविलास जी पहले आलोचक हैं, फिर कवि । कविता उन्होंने कम लिखी है, इसका कारण वे यह बताते हैं कि उसमें मेहनत पडती है, पर असल में कारण यही है कि उन्हें आलोचना का चस्क है, और इसका अवसर पा कर वे लेखनी या मसी की प्रतीक्षा अनिवार्य नहीं समझते । मौखिक आलोचना और कटाक्ष पूर्ण शब्दावली उनकी विशेषता है[2] । उक्त परिचय को ध्यान में रखते हुए रामविलास जी की कविताओं का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुंचा जा सकता है कि यदि रामविलास जी ने कविता को अपनी साहित्यिक साधना का मुख्य क्षेत्र बनाया होता तो व्यंग्य के मामले में वे हिन्दी में दूसरे नागार्जुन होते ।

---

1. युगप्रवर्तक जयशंकर प्रसाद - रायकृष्णदास - प्रकाशन विभाग भारत सरकार] पृ.17

2. तारसप्तक : "द्वितीय संस्करण] पृ.229

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने अधिक व्यंग्य रचना अपने छद्म नामों [1] (गोरा बादल, या अजिया वेताल) से लिखी है।

व्यंग्य के संदर्भ में उनकी "सत्यं", शिवं, सुन्दरम्" जो तार सप्तक में संकलित है, अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है। कविता में शुद्ध कलावादियों पर प्रभावशाली व्यंग्य किया गया है -

शुद्ध कला के पारखी, कहते हैं उस पार की
इस दुनिया की कौन कहे, भव सागर में कौन बहे
जै हो राधारानी की, या जिस ने मनमानी की
राधा या अनुराधा से, छिप कर अपने दादा से
कैसी बढ़िया चाल की, बलिहारी गोपाल की
उसके भक्तों में से हम, सत्यं शिवं सुन्दरम् [2] ।

प्रस्तुत कविता गीतात्मक शैली में रचित है और यहाँ तक कि इसे व्यंग्य कोरस के रूप में गाया भी जा सकता है। इसमें द्वितीय महायुद्ध के समय भारत में व्याप्त राष्ट्रीय अकर्मण्यता, विदेशीपन की मनोवृत्ति पर पैना तथा सहज व्यंग्य है :-

हाथी घोड़ा पालकी
जै कन्हैया लाल की
हिन्दु हिन्दुस्तान की
जै हिटलर भगवान की ।

1• हिन्दी साहित्य में हास्य रस - डॉ॰ बरसनेलाल चतुर्वेदी - पृ॰307
2• तारसप्तक

जिन्ना पाकिस्तान की
टोजो और जापान की
बोले बंदे मातरम्
सत्यं शिवं सुन्दरम् ।।

रामविलास शर्मा की व्यंग्य कविताओं में आलोचना एवं प्रहार के बाद भी एक अदम्य आस्था प्रायः मौजूद है । यही उनकी प्रगतिशीलता है । व्यंग्य की कचोटनेवाली धार के बावजूद उनमें मानवीय दुर्बलताओं को समझने की तत्परता है । लेखक का कम कविताएं लिखने का निर्णय हिन्दी की व्यंग्य कविता केलिएनिश्चय ही लाभदायक नहीं रहा, अन्यथा उनसे हम और भी सम्पन्न व्यंग्य कविताओं की आशा कर सकते थे ।

नयी कविता का इतिहास लगभग 30 वर्ष पुराना है । किसी भी साहित्यिक विधा का आरंभ किस दिन एवं किस घडी में हुआ, ठीक उंगली रखकर इसका निश्चित विवरण देना संभव नहीं । सामान्यतया सन् 1943 ई॰ में प्रकाशित एवं "अज्ञेय" द्वारा संपादित "तारसप्तक" को प्रयोगशील नई कविता की प्राथमिक अभिव्यक्ति माना जाता है । अपितु "तार सप्तक" एक नई काव्यात्मक क्रांति का अग्रधावक नहीं बल्कि उसकी कुछ आरंभिक प्रवृत्तियों की सामूहिक अभिव्यक्ति मात्र है । नयी कविता के दौरे में कुछ प्रपद्यवादी कविताएं भी लिखी गयी हैं । प्रपद्यवादी कवि स्वयं को "नकेनवादी" कहते हैं । बिहार के नलिन विलोचन शर्मा, केसरीकुमार तथा नरेश (संक्षेप में "नकेन" जो नलिन विलोचन शर्मा के "न" केसरी कुमार के "के" और नरेश के "न" को मिलाकर बनाया गया है) की कविताओं का एक संकलन "नकेन के प्रपद्य" के नाम से प्रकाशित हुआ था । इस संकलन की कविताओं को कविता न कह कर संकलित कवियों ने "प्रपद्य" कहना अधिक उपयोगी समझा और संकलन की भूमिका में जिसे उन्होंने

---

1. तारसप्तक - पृ॰252-253

"पत्पशा" कहा अपने काव्य की आवश्यकता और रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डाला । अपने काव्यान्दोलन को उन्होंने विशुद्ध प्रयोगवादी काव्यान्दोलन के रूप में विज्ञापित किया और अज्ञेय के प्रयोगवाद को केवल प्रयोगशील कविता के रूप में ही स्वीकार किया "तार सप्तक" की भूमिका में "अज्ञेय" ने संकलित कवियों द्वारा काव्य के क्षेत्र में प्रयोग करने का उल्लेख किया है । इन प्रयोगवादी रचनाओं की कतिपय समीक्षकों द्वारा तीव्र भर्त्सना की गयी । "अज्ञेय" ने "दूसरा सप्तक" में "प्रयोग" शब्द की सफाई में लम्बा वक्तव्य दिया और प्रयोग के वाद से अपना पल्ला झाड़ना चाहा । बहुत से लोगों को "अज्ञेय" की यह सफाई स्वभावत: मुद्दाअलेह की तरदीद [खण्डन साध्य] जान पड़ी । "नकेन" ने "नकेन के प्रपद्य" की भूमिका में "अज्ञेय" के प्रयोगवाद संबन्धी वक्तव्यों का कूट परीक्षण किया और कहा कि "अज्ञेय" और उनके साथी जो सिद्धान्त प्रतिपादित कर रहे हैं वह प्रयोगवाद है ही नहीं क्यों कि "अज्ञेय" और उनके साथ के अन्य प्रयोगशील कवियों ने "कविता को प्रयोग का विषय मान कर भी स्पष्ट शब्दों में प्रयोग को मात्र साधन घोषित करने की सावधानी बरती थी जब कि प्रपद्यवादियों के प्रयोग के संबन्ध में स्पष्ट घोषणा है कि प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवादी साध्य । स्वयं को असली प्रयोगवादी मानते हुए भी "नकेन" ने अपने को प्रयोगवादी न कहकर प्रपद्यवादी कहना उचित समझा क्योंकि वस्तुत: जब अज्ञेय प्रवर्तित काव्यान्दोलन केलिए उनके प्रतिवाद के बाद भी प्रयोगवाद नाम चल निकला तो बिहार के कवित्रयी ने अपनी पहचान अलग रखने एवं नए काव्य के संपूर्ण दायित्व को स्वीकार करने की नीयत से प्रपद्य नाम की शरण ली ।

1• प्रो• केसरीकुमार, "अवन्तिका" काव्यालोचनांक, जनवरी 1954 पृ•25।

नई कविता के इतिहास का प्रारंभ अज्ञेय की काव्यकृतियों से होता है । समय की दृष्टि से अज्ञेय का रचनाकाल सन् 33 से आज तक विस्तृत है । अज्ञेय की प्रारंभिक कृतियों - भग्नदूत और चिन्ता में छायावादी धूमिलता, गीतों का रूमान एवं प्रणय की अतिशय भावुकता दिखाई पड़ती है । स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में रची जाने के कारण क्रांतिकारी जीवन से संबन्धित भावुक स्मृति खण्ड हैं जिन में क्रांतिकारी गतिविधि का और विरह जनित वेदना का वर्णन अधिक है ।

इत्यलम् सन् 1946 में प्रकाशित हुई जिन में अधूरे सपनों की कुण्ठा का स्वर मुखरित है, घिसे हुए परंपरागत भावों के स्थान पर "कुछ और" कहने की उत्कण्ठा है । सन् 1949 में प्रकाशित "हरी घास पर क्षण भर" एक सहज उल्लास में परिपूर्ण है जिसमें पहली बार निरर्थक भटकने के बाद अज्ञेय की कविता को एक महत्वपूर्ण मोड मिला । "बावरा अहेरी" 1945, "इन्द्र धनु रौंदे हुए ये" 1957, अरी ओ करुणा प्रभामय" 1959, आंगन के द्वार पर 1961, और कितनी नावों में कितनीबार 1967 अज्ञेय की नई कविता के काव्य संग्रह हैं ।

भावबोध एवं कटु यथार्थ का चित्रण करने वाली पंक्तियां जो व्यंग्य का उदाहरण है, तारसप्तक में उपलब्ध होती है ।

बांस की टूटी हुई टटटी, लटकती
एक खम्भे से फटी-सी ओढनी की चिन्दियां दो चार !
निकट-तर-धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टांगों पर खड़ा नत-ग्रीव
धैर्यधन, गदहा ।[1]

---

1. तारसप्तक [द्वितीय संस्करण] पृ.279

नई कविता सामान्यवस्तुओं एवं नित्यप्रति की परिचित परिस्थितियों से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है, जीवन मूल्यों एवं स्थिति-सन्दर्भों के आडंबर एवं खोखलेपन को उद्घाटित करने केलिए व्यंग्य एवं विद्रूप का सहारा लेती है, बौद्धिकता के आधार पर प्रत्येक भावस्थिति का विवेचन करती है तथा सामान्य भाषा का काव्यात्मक व्यवहार करती है ।

"हरि घास पर क्षण भर" में"सवेरे-सवेरे", "हमारा देश", "एक आटोग्राफ" - रचनाएं व्यंग्य से भरपूर है । "सबेरे-सबेरे" में बदली हुई सुबह के रंगों एवं जीवन की विडंबना पर व्यंग्य है । कवि कहता है कि -

सबेरे सबेरे
नहीं आती बुलबुल
न श्यामा सुरीली
न फुदकी न दंहगल
सुनाती हैं बोली
नहीं फूलसुंघनी,
पतेना-सहेली
लगाती हैं फेरे ।
  जैसे ही जागा
  कहीं पर अभागा
  अड़ड़ाता है कागा -
  कांय ! कांय ! कांय !

1· पूर्वा - अज्ञेय - पृ·225

इस कविता का व्यंग्य स्पष्ट है कि जब मनुष्य को सुबह-सुबह ही कांय-कांय का सामना करना पडे तो उसमें कोमल एवं उदात्त भाव किस प्रकार जन्म ले सकते हैं ।

"हमारा देश" में देश के सब से बडे अंश - ग्रामों - की दुर्दशा का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है -

इन्हीं तृण-फूस-छप्पर से
ढके ढुलमुल गंवारू
झोपडों में ही हमारा देश बसता है[1] ।

"एक ऑटोग्राफ" रचना ज़रा फक्कडपन लिए है जिस में जीवन की उलझनों से मुक्त होने केलिए मात्र निठल्ला बैठे रहने की कामना पर व्यंग्य दिखाई पड़ता है -

अल्ला रे अल्ला
होता न मनुष्य मैं, होता करमकल्ला ।
रूखे कर्म-जीवन से उलझता न पल्ला ।
चाहता न नाम कुछ
मांगता न दाम कुछ
करता न काम कुछ, बैठता निठल्ला -
अल्ला रे अल्ला[2] ।

शोषक भैया" कविता में शोषक भइया को संबोधित इन पंक्तियों का व्यंग्य सन्तुलित भी है

---

1. पूर्वा - पृ. 227
2. वही

"डरो मत, शोषक भय्या,
पी लो ।
मेरा रक्त ताजा है
मीठा है
दूध है ।
पी लो, शोषक भैया,
डरो मत ।
शायद तुम्हें पचे नहीं -
अपना मेदा तुम देखो, मेरा दोष है ।
मेरा रक्त मीठा तो है, पर पतला या हल्का भी हो
इस का जिम्मा मैं तो नहीं ले सकता,
शोषक भैया।[1]

अत्यंत करुण एवं आक्रोशयुक्त कथन होते हुए भी इस में कहीं भी आवेश नहीं बल्कि एक तार्किक दृष्टि है -

डरो मत :
मुझ से क्या डरना।
वह मैं नहीं, वह तो तुम्हारा - मेरा सम्बन्ध है
जो तुम्हारा काल है ।
शोषक भैया[2] !

1· बावरा अहेरी - पृ·42
2· वही पृ·43

"दफ्तर : शाम" के व्यंग्य के साथ विडम्बना के भी दर्शन होते हैं। दफ्तर में काम करने वालों एवं दफ्तरों की दयनीय स्थिति का व्यंग्यपूर्ण चित्रण इस कविता में हुआ है -

"बाहर देख आया हूँ
(और भी जाते हैं
बीड़ी, सिगरेट फूंक आते हैं
या कि पान खाते हैं
और जिस देह में है खून नहीं, रसना में रस नहीं
उसकी लाल पीक से दीवार रंग आते हैं)[1]

अंत में कवि दफ्तर की मशीन में पिस रहे व्यक्ति की दुर्दशा से जुड़ कर कहता है -

यंत्र हमें दलते हैं
और हम अपने को छलते हैं,
थोड़ा और खट लो, थोड़ा और पिस लो -
यन्त्र का उद्देश्य तो बस शीघ्र अवकाश
और अवकाश, एक मात्र अवकाश है[2]।

उपर्युक्त "अवकाश" अवकाश नहीं, मृत्यु है जिसके भीतर ही एकमात्र अवकाश छुपा है।

1• बावरा अहेरी : अज्ञेय - पृ•48
2• वही पृ•48

प्रस्तुत अध्याय में सन् 1930 से 1960 ई॰ तक विरचित मुख्य काव्यकृतियों में विद्यमान व्यंग्य का विवेचन किया गया है । छायावादी कवि निराला ने जिस व्यंग्य काव्य सूत्र का प्रारंभ किया वह प्रगतिवादी कवि नागार्जुन में आकर अत्यंत विकास पाता है । हास्य और विनोद की तीखी शैली को लेकर निरालाजी ने समाज की विसंगतियों का कठोर व्यंग्य किया । उनके शब्दों में वह तीखापन मुखरित होता है । जब चारों तरफ असंतुलित इने-गिने नेता कहलानेवाले तथा उच्च पदों के व्यक्ति अत्यंत गर्हणीय कार्य में संलग्न दिखायी देते हैं तो निराला की अतिभावुकता परमार्थ के पथ की ओर विराजमान होती है । तथापि उनकी व्यंग्य कविताओं में काव्यगत कौशल एवं संगीत सौन्दर्य था । नागार्जुन में आकर वह परमार्थ के कण कण को उद्घाटित करनेवाले तीखे शर में परिणत हो गया । नागार्जुन स्वातंत्र्योत्तर कालीन सरकार तथा नेताओं की खिल्ली उडान में सदैव अपनी तूलिका चलाते हैं । कोई भी ऐसा क्षेत्र उनसे अछूता नहीं रहा जहाँ उनकी तीखी लेखनी अत्यंत क्रूर आलोचक के रूप में तेज़ी से चलती है और अत्यंत भारी आघात पहुंचाती है । शायद यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कालीन हिन्दी काव्यकारों में निराला और नागार्जुन व्यंग्यकाव्य के मील स्तंभ हैं ।

बच्चन एवं दिनकर में भी बीच-बीच में व्यंग्य की स्फुट रेखा दर्शित होती है । चारों तरफ की बेहूदी परिस्थिति का खरापन अनुभव करके उनकी लेखनी व्यंग्यबाण छोड़ने लगती है । जिन दु:खद एवं विसंगत दृश्यों को देखे बिना छोड़ना असंभव हो जाता है उनको ये कवि व्यंग्य का विषय बनाते हैं । दोनों के व्यंग्य में काव्य की माधुरी अवश्य रहती है

और व्यंग्य की चोट भी करारी है । किन्तु अज्ञेय के व्यंग्य में एक दूसरी विशेषता अनुभूत होती है । जिस खुले क्षेत्र में निराला और नागार्जुन व्यंग्य शर बरसाते हैं तथा जिस समाज के दु:खद दृश्यों के आधार पर बच्चन और दिनकर व्यंग्य काव्य रचते हैं उससे भिन्न एक व्यंग्य काव्य मार्ग को ही अज्ञेय अपनाते हैं । उनके व्यंग्य में एक आंतरिक चोट अवश्य रहती है । कहीं कहीं उनकी भाषा और शब्दावली की मर्यादा को तोड़कर चलती है क्योंकि यथार्थ के धरातल को अनुभव किये बिना व्यंग्यकार अपनी रचना कर नहीं पाता । अज्ञेय के प्रयोग में ऐसा व्यंग्य है जो बेजोड़ है ।

एक प्रकार से यह कहना उचित होगा कि स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी काव्य का मुख व्यंग्यपूर्ण है । तारसप्तक के सभी कवियों में व्यंग्य का पुट रहता है । इस का एक कारण है कि यह आधुनिक कविगण अपने जीवन का भोग करते हुए चारों तरफ के समष्टि जीवन को अपने काव्य का विषय बनाना चाहते थे । यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि कबीर के युग के बाद अत्यंत भारी प्रहार करनेवाला व्यंग्य इसी युग में विरचित हुआ ।

...

सप्तम अध्याय

व्यंग्य के लक्ष्य, उद्देश्य तथा उपसंहार

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने नवरसों में एक रस के रूप में हास्य रस को स्वीकार किया है। उन्होंने हास्य रस का विवेचन भी पर्याप्त मात्रा में किया है। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने हास्य रस के वस्तु पक्ष पर ही अधिक ध्यान दिया है। पाश्चात्य पंडितों ने हास्य रस के व्यंजना पक्ष पर भी विचार किया। हास्य रस के व्यंजना पक्ष पर जोर देने वाले पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों ने उस के पांच प्रमुख भेदों - ह्यूमर (हास्य) विट (वाग्वैदग्ध्य) सटायर (व्यंग्य) ऐरनी (वक्रोक्ति) फारस (प्रहसन) में व्यंग्य की स्वीकृति की है। भारतीय पंडितों ने हास्य के विविध भेदों में व्यंग्य को भी स्वीकार किया है। पाश्चात्य विद्वानों ने विस्तृत एवं विशद परिभाषाएं बांधकर व्यंग्य को हास्य से भिन्न अस्तित्ववाला सिद्ध कर दिया है। हास्य का स्थाई भाव "हास" है।

उससे मुख्यतया हास्य की ही सृष्टि होती है । किन्तु व्यंग्य की यह दशा नहीं है । व्यंग्य से मात्र हास्य की सृष्टि नहीं होती । उससे करुणा, अमर्ष, क्रोध, आदि भावों की सृष्टि भी होती है । व्यंग्य में हास्य की सृष्टि अनिवार्य तो नहीं है, लेकिन हास्य में उस का होना अनिवार्य है । निष्प्रयोजन हास्य व्यंग्य की सीमा को कभी पहुँच नहीं सकता । इस प्रकार व्यंग्य का स्वरूप हास्य से अलग हो जाता है । व्यंग्य का प्रयोजन भी अलग है । ऐसी दशा में व्यंग्य को हास्य का एक भेद मात्र मानना उसके अर्थ एवं परिभाषा को सीमित एवं संकुचित कर देना होगा । आधुनिक काल में आकर व्यंग्य इतने विशाल एवं विस्तृत दायरे में व्यवहृत होने लगा है कि इस का अलग से अस्तित्व स्वीकार करना वांछनीय ही नहीं अनिवार्य हो गया है ।

वि + अंग = व्यंग्य - व्यंग्य की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है । यह शब्द अंग्रेज़ी के सटायर के पर्याय के रूप में अब प्रचलित है । जब किसी व्यक्ति वस्तु या देश की बुराई या विसंगति को सीधे या स्पष्ट शब्दों में न कहकर उल्टे या वक्र ढंग से व्यक्त किया जाता है तभी व्यंग्य की सृष्टि होती है । व्यक्ति एवं समाज की दुर्बलता विसंगति अन्याय आदि पर कुठार आघात करने का व्यंग्य जबरदस्त माध्यम होता है । कभी अन्यायों पर आघात किया जाता है । उनकी हंसी उड़ाई जाती है, लेकिन व्यंग्य से उद्भूत हंसी में हंसी या आनन्द की मात्रा बहुत कम रहती है । उसमें तिक्तता, कटुता और वेदना ही अधिक रहती है । नैतिक बोध व्यंग्य का अनिवार्य अंग जब बन जाता है तभी वह उसका परिनिष्ठित रूप बन जाता है । व्यंग्य का उद्देश्य मात्र हंसी नहीं उसका और महत्व पूर्ण प्रयोजन होना अनिवार्य है । मात्र मनोरंजन व्यंग्य का प्रयोजन नहीं । इसका उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज का सुधार होता है ।

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने काव्य के प्रयोजन पर बल दिया है। निष्प्रयोजन काव्य नहीं हो सकता। उसका कोई न कोई प्रयोजन अनिवार्य है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रयोजनों में "शिवेतरक्षति" को भी एक प्रयोजन माना है।[1] यह "शिवेतरक्षति" (अमंगल का नाश) व्यंग्य के द्वारा सुचारू रूप से हो सकता है। व्यक्ति एवं समाज के अमंगल को दूर करने का व्यंग्य सशक्त शस्त्र है। आचार्य मम्मट के अनुसार तो यह कार्य "कांता सम्मित-तयोपदेश" (जैसे पत्नी का उपदेश हो) के रूप में नहीं होता। यह तो मधुर या आनन्द दायक नहीं रहता। इस में अमंगल की क्षति के मूल में पीडा या कसक काम करती रहेगी। जहां काव्य प्रयोजन की बात आती है वहां व्यंग्य का काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण असंदिग्ध रूप से सिद्ध होता है। व्यंग्यात्मक कविता का उद्देश्य कभी मनोरंजन नहीं रहेगा। उस में व्यंग्यात्मक ढंग से उचित उपदेश का मर्म अवश्य रहेगा। काव्यप्रयोजन के प्रसंग में कविवर मैथिलीशरण गुप्त जी की वाणी यहां सार्थक सिद्ध होती है[2]।

व्यंग्यकार की जीवन दृष्टि सर्वथा उदात्त रहती है। युक्ति युक्त, स्पष्ट, जीवन दृष्टि के अभाव में कवि उदात्त एवं मंगलकारी व्यंग्य लिखने में असमर्थ रह जाता है। जिस साहित्यकार की जीवन दृष्टि उदात्त एवं उच्चकोटि की रहती है उसके साहित्य का व्यंग्य उतना ही उदात्त, क्रांतदर्शी एवं मर्मस्पर्शी रहता है। अनुदात्त व्यंग्य उच्चकोटी का व्यंग्य नहीं माना जाएगा। व्यंग्य का मनोवैज्ञानिक आधार अक्षुण्ण है। ईर्ष्या, क्रोध, अमर्ष, हीनता ग्रन्थी, जैसी मानसिक अवस्थाओं में लोगों को व्यंग्य करते देखे जा सकते हैं। निरंतर आर्थिक संघर्षों से जूझते रहने और समाज में सम्मान न प्राप्त होने के कारण व्यक्ति अपनी विफलता के कारणों पर

---

1. काव्यम् यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
   सद्यः परनिर्वृतये कांता सम्मित तयोपदेश युजे ।।

2. केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए

व्यंग्यात्मक प्रहार करता है । आत्महीनता, क्रोध, अमर्ष जैसी अवस्थाओं में व्यंग्य किया जाना स्वाभाविक है । लेकिन ये व्यंग्य उतनी उच्च कोटी के नहीं रहते । विसंगति ही व्यंग्य को जन्म देने वाली सब से महत्वपूर्ण स्थिति होती है । व्यंग्य सृष्टि में सब से अधिक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार विसंगत परिस्थितियां ही होती है । साहित्य में यत्र तत्र विद्यमान व्यंग्य के अंश इस के निस्तुल्य निदर्शन हैं ।

प्रेरणा एवं प्रभाव के आधार पर व्यंग्य के कई प्रकार हो सकते हैं । वैयक्तिक व्यंग्य के मूल में प्रेरणा का हाथ रहता है । वैयक्तिक स्थितियों में व्यक्ति अपने साथ साथ दूसरों पर भी सीधे व्यंग्य का प्रहार करते हैं । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक विसंगतियों पर व्यंग्य निर्वैयक्तिक व्यंग्य है । व्यंग्य पाठकों पर जैसा प्रभाव पैदा करता है उस प्रभाव के आधार पर भी व्यंग्य के भेद हो सकते हैं । इस आधार पर हास्ययुक्त व्यंग्य, यथार्थ से युक्त व्यंग्य, करुण व्यंग्य आदि भेद हो सकते हैं ।

व्यंग्य में स्थित उदात्तता, संवेदन शीलता, गंभीरता, बौद्धिकता, सांकेतिकता और तटस्तता व्यंग्य को उदात्त एवं श्रेष्ठ बनाती हैं । वास्तव में व्यंग्य वह पद्यात्मक या गद्यात्मक रचना हो सकता है, जिसमें विसंगतियों एवं विडंबनाओं का मजाक उड़ाया जाता है । सोद्देश्य व्यंग्य की अपनी महत्ता है ।

वैदिक काल से ही लेकर साहित्य में व्यंग्य की अजस्रधारा बही है । 'ऐसे तो व्यंग्यात्मक आवेश वेदों में मिल सकते हैं, किन्तु नाट्यशास्त्र में व्यंग्यात्मकता के स्पष्ट संकेत हैं । सिद्ध साहित्य में पूजा पाठ करने वाले पंडितों, गंगास्नानादि को पुण्य कर्म माननेवाले

पौराणिक धर्मावलंबियों पर व्यंग्य किए गए है[1] । हिन्दी साहित्य के इतिहास का सिंहावलोकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर लगातार व्यंग्य का प्रभाव रहा है । पृथ्वीराजरासो, खुमान रासो, बीसलदेव रासो जैसे रासो ग्रन्थों में व्यंग्य के कतिपय प्रसंग उपलब्ध हैं । महात्मा कबीरदास सच्चे अर्थ में व्यंग्यकार थे । आपने सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों की तीखी आलोचना की । इस के लिए आपने अपनी कविता में व्यंग्य का माध्यम स्वीकार किया । आप के व्यंग्य की यही महत्ता है कि आप ने कविता का संबन्ध यथार्थ से जोड़ दिया और सुधार की भावना को कविता में सर्वोपरि स्थान दिया जो कि व्यंग्यकाव्य का प्रमुखतम लक्षण है । तुलसी, सूर जैसे सगुण भक्त कवियों के काव्यों में भी परिनिष्ठित उदात्त व्यंग्य की झलक यत्र-तत्र प्राप्त होती है। रीति काव्य में भी व्यंग्य का भण्डार खुला पड़ा है । केशवदास के संवाद प्रसंग इसके स्पष्ट प्रमाण हैं । रीतिकाल के कवि बिहारी ने भी अपने काव्य में व्यंग्य का प्रचुर प्रयोग किया है । साहित्यिकता और संक्षिप्तता जैसे व्यंग्य के अनिवार्य गुण भी बिहारी के दोहों में मौजूद हैं । आधुनिक काल व्यंग्य केलिए सर्वाधिक उपयुक्त काल रहा है । भारतेन्दु युग राष्ट्रीय नवजागरण का युग था । यह वही काल है जब अंग्रेज़ी राज्य अंग्रेज़ों की नीति के विरुद्ध क्षोभ और क्रोध की आवाज़ बुलंद होने लगी थी । तत्कालीन कवियों व लेखकों ने तत्कालीन शासन के अत्याचारों विसंगतियों और पाखण्डों पर तीखे व्यंग्य किए । वास्तविक एवं परिनिष्ठित अर्थ में सिलसिला बद्ध व्यंग्यरचना की शुरुवात भारतेन्दु युग से ही परिलक्षित होती है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पं॰प्रतापनारायण मिश्र जैसे कवियों ने इस काल में अपने युग की विसंगतियों एवं कमज़ोरियों को मंजे और सधे हुए व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया । भारतेन्दु युग के व्यंग्य में

1· हिन्दी साहित्य कोश - भाग-1, रामखेलावन पाण्डे - पृ·74।

हास्य की मात्रा अधिक रही । द्विवेदी युग में आकर शनैः शनैः व्यंग्य ने हास्य को छोड़कर प्रहारात्मकता और करुणा को भी स्वीकार किया । इस युग की कविता के व्यंग्य में गंभीरता प्रकट होती है । स्वयं द्विवेदी जी ने व्यंग्य कवितायें लिखीं और अपने साथियों को इस ओर प्रेरित भी किया । ईश्वरी प्रसाद शर्मा, नाथूराम शंकर, जैसे कवियों ने ब्राह्मणों, पोंगापंथियों, अंग्रेज़ों के रंग में रंगे हुए भारतीयों और फाशन के पुजारियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए । तत्कालीन परिस्थितियों की अभिव्यंजना करने वाला आक्रोशयुक्त व्यंग्य द्विवेदी युग की देन है ।

छायावादी कवि भी सजग व्यंग्यकार रहे । छायावादी कवियों की कृतियों में व्यंग्य तो अवश्य है; लेकिन वह व्यंग्य भी रोमान्टिक गंभीरता के परदे पहने हुए हैं । कामायनी में आत्मविडंबनाओं के प्रति प्रहारात्मक व्यंग्य अभिव्यक्त हुआ है और महादेवी की कविता में भी नियति की निष्ठूरता और प्रियतम को दिए गए तानों के साथ अभिव्यक्त व्यंग्य में हल्के एवं गहरे व्यंग्य के दर्शन मिलते हैं । पंत जी की कोमल, कांत पदावली में विशेषकर सामाजिक कविताओं में यत्र तत्र व्यंग्य दृष्टिगत होते हैं । व्यंग्य की दृष्टि से अन्य छायावादी कवियों की तुलना में महाप्राण निराला का योगदान उल्लेखनीय है । समग्रतः विचार करने पर ज्ञात होगा कि छायावादी कवियों की दृष्टि अपेक्षाकृत आत्मकेन्द्रित रही है । निराला, छायावादी युग के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हैं जिन्होंने सरोजस्मृति जैसे शोक काव्य में भी गंभीर एवं तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया । प्रगतिवादी युग में सामाजिक यथार्थ को अधिक उभारने का मौका मिला तो यह काल व्यंग्य केलिए भी उपयुक्त भूमि रही । प्रगतिवाद के मूल में मारक्सवाद काम करता रहा । प्रगतिवादी कवियों ने शोषक एवं शोषितों के बीच के संघर्ष के रूप में तीखे व्यंग्य को अपनाने का मौका पाया । वर्ग संघर्ष सामाजिक समस्यायें और विकट परिस्थितियों के कारण प्रगतिवादी कवियों की

रचनाओं की अभिव्यक्ति में तिक्तता और व्यंग्य उभर कर आया। सामाजिक यथार्थ को व्यंग्य के माध्यम से नागार्जुन, पंत जैसे कवियों ने अभिव्यक्त किया। तारसप्तक (1943) के प्रकाशन के साथ साथ प्रयोगवादी युग का प्रादुर्भाव माना जाता है। तारसप्तक में पर्याप्त मात्रा में व्यंग्य परिलक्षित होता है। भारतभूषण अग्रवाल की अहिंसा, रामविलास शर्मा की "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, प्रभाकर माचवे की "निम्न मध्य वर्ग", कविता क्या है, जैसी कविताओं में व्यंग्य का सुन्दर निदर्शन होता है। प्रयोगवाद तक आकर हिन्दी कविता के भाव एवं रूप ने नये क्षितिजों को चूम लिया तो व्यंग्य ने भी नए नए द्वार खोल लिए। सचमुच प्रयोगवाद ने व्यंग्य की महत्ता को स्वीकार कर उसे यथेष्ट मात्रा में अपना लिया।

सन् 30 से 60 तक के तीन दशकों की अवधि में महाकाव्यों, खण्डकाव्यों तथा मुक्तक काव्यों में व्यंग्य का परिपुष्ट रूप मिलता है। नूरजहाँ (गुरुभक्त सिंह "भक्त") सिद्धार्थ (अनूपशर्मा) कृष्णायन (द्वारिका प्रसाद मिश्र) कामायनी (प्रसाद) आर्यावर्त (मोहनलाल महतो) जैसे महाकाव्यों, गंगावतरण, उद्धवशतक (जगन्नाथ रत्नाकर) आत्मोत्सर्ग, उन्मुक्त (सियाराम शरण गुप्त) तुलसीदास (निराला) जैसे खण्डकाव्यों में व्यंग्य के कई प्रसंग उपलब्ध हैं। मुक्तक काव्य में व्यंग्य की गुंजाइश अधिक रही है। इन तीन दशकों में असंख्य छोटी-मोटी कविताएं ऐसी रची गई जिन में व्यंग्य की मात्रा पर्याप्त दृष्टिगोचर होती है। माखनलाल चतुर्वेदी की कैदी और कोकिला, जय तुम्हारी जय जैसी रचनाएं गंभीर आक्रोश युक्त व्यंग्यात्मक

---

1. कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
   कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
   कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
   कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त (सतरंगे पंखोंवाली-
   x x x x नागार्जुन-पृ.30
   शव को दें हम रंग रूप आदर मानव का
   मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का (आधुनिक कवि सुमित्रानंदन पंत -पृ.71)

गीतों से भर पूर है । छायावादी कवियों में व्यंग्य की छोटी छोटी कवितायें लिखने में महाप्राण निराला अपना सानी नहीं रखते। दिनकर, बच्चन, शिवमंगल सिंह "सुमन" जैसे कवियों ने अपनी छोटी रचनाओं में व्यंग्य का निर्वाह सफल रूप से किया है ।

भिन्न भिन्न छंदों में कई व्यंग्य रचनाएं विरचित हुई । मुक्तक छंद में भी व्यंग्य रचनाएं खूब रची गयीं । मुक्तक छंद की रचनाओं में व्यंग्य की दृष्टि से निराला की कुकुरमुत्ता और नए पत्ते की कवितायें, बच्चन का बंगाल का काल, नागार्जुन की कविताएं तथा तार सप्तक के समस्त कवियों की व्यंग्य कविताओं की गणना होती है ।

सन् 30 से 60 तक की हिन्दी कविता में व्यंग्य यथेष्ट मात्रा में परिलक्षित होता है । तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों ने व्यंग्य केलिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करने में आवश्यक योगदान दिया है । वर्ण व्यवस्था, छुआछूत, नारियों की दयनीय दशा, बालविवाह, विधवा विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किया गया । सन् 30 से 47 तक की कविता में विदेशी शासन एवं अंग्रेज़ों के अत्याचारों पर तीखा प्रहार हुआ है तो उस के बाद स्वतंत्र देश में मानव की विसंगतियों कुण्ठाओं आदि पर । धर्म सबन्धी, साहित्य संबन्धी राजनीति संबन्धी तथा मानवीय दुर्बलता संबन्धी विसंगतियों पर भी व्यंग्यात्मक कविताएं इस काल में रची गईं । वेद-पाठ, तीर्थ स्थान, कर्मकाण्ड जैसे धार्मिक पाखण्डों के विरुद्ध व्यंग्य कविता अब लिखी गई । कंजूसी, लालच, यशलिप्सा, छल, झूठी प्रतिष्ठा का मोह जैसी मानवीय दुर्बलतायें भी व्यंग्य कविताओं का आधार बनीं । राजनीतिक नेताओं का चहल-पहल उनकी करामातें, अत्याचार, पक्षपात की नीति आदि पर राजनीतिक व्यंग्य करता गया । महाप्राण निराला द्वारा विरचित राजनीतिक व्यंग्य ने परवर्ती नए कवियों का मार्गदर्शन किया ।

आधुनिक जीवन की सब से बड़ी विडम्बना है अपना जीवन अपनी इच्छाओं के अनुसार न जी पाना। आज के प्रायः सभी संवेदनशील साहित्यकार इस विडंबना से परिचित हैं। हिन्दी काव्य में आत्म-विडंबना को पूरी निर्ममता से व्यक्त करने की प्रवृत्ति नई कविता में मुखरित हुई है। इस प्रकार की व्यंग्यरचनाओं में हास्य केलिए रत्ती भर भी अवकाश नहीं है। ये रचनाएं संवेदना को झकझोर करने वाली उदात्त करुणा से भरपूर है।

सन् 30 से 60तक की व्यंग्य कविता ने भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, लौकिक आदि सभी विषयों को आधार रूप में अपना लिया। समाज में प्रचलित विभिन्न कुरीतियों के खिलाफ व्यंग्य ने लड़ाई लड़ी है। विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफाश करके उनके निर्मूलन करने में व्यंग्य का अपना योगदान महत्वपूर्ण है।

व्यंग्य रचनाओं की मुख्य प्रवृत्ति सुधारवादी रही है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक अनाचारों को दूर करने के लिए व्यंग्यकारों ने सफल प्रयास किया है। समाज की व्यापक विसंगतियों पर प्रहार करके उनकी राजनीतिक आर्थिक एवं सामाजिक गांठों को खोलने की भरसक कोशिश सन् 30 से 60 तक के तीन दशकों के व्यंग्यकारों ने की है। आजकल के युग में जब कि मानवमूल्य गिरता जा रहा है इन दशकों के काव्य के व्यंग्य में मानव मूल्यों को स्थापित करने की ललक अवश्य है। नष्ट होते हुए मूल्यों को पुनः स्थापित करने केलिए तथा नवीन जीवन मूल्यों वैयक्तिक एवं आर्थिक स्वातंत्र्य आदि की संस्थापना केलिए इस काल के व्यंग्यकारों ने प्रयत्न किया है। कभी-कभी इन कवियों के विद्रोह का स्वर तीखा एवं आक्रोश भरा हो गया है। किन्तु वह भी मानव-विरोधी नहीं कहला जा सकता। अपने व्यंग्य लेखन में भी इन कवियों ने जिस तटस्थता, जागरूकता एवं बौद्धिकता को अपनाया है, वह सचमुच श्लाघनीय है।

तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिवेशों के अनुकूल रचना करके इन कवियों ने युग बोध को भी अपनाया है । सचमुच अपने युग-बोध को स्पष्ट करने में उपर्युक्त तीन दशकों के व्यंग्यकार सफल रहे हैं ।

व्यंग्यकार का व्यक्तित्व अपनी व्यंग्य रचनाओं में प्रकट होता है । व्यंग्य रचयिता का व्यक्तित्व निश्चय ही सशक्त रहता है । उसे साहसी होना है । जो साहसी है उस में ही विसंगतियों पर आक्रमण करने की क्षमता रहती है और अपनी कमियों का मज़ाक उड़ाने का साहस होता है । व्यंग्य करने केलिए यथार्थतः एक साहसी व्यक्तित्व की अनिवार्यता है - "भाई जान मैं अपनी घरवाली को भी अप्रसन्न करना नहीं चाहता, इसलिए उनको या उनके परिवार को लेकर ही कुछ लिखने का साहस नहीं होता है । यही बात शासकों और मठाधीशों को लेकर कही जा सकती है । हलवे-माँडे का प्रश्न है । आज के बेकारी के युग में सोचना पड़ता है और जहाँ एक बार सोचा, व्यंग्य-विनोद ऐसे गायब हो जाते हैं जैसे गधे के सिर से सींग[1] । नागार्जुन ने नेहरू, गाँधी, विनोबा, कृपालानी जैसे नेताओं पर तथा रघुवीर सहाय ने नेहरू, मोरारजी जैसे व्यक्तियों पर तथा निराला ने "मास्को डायलाग्स" में गिडवानी नामक व्यक्ति पर व्यंग्य किए हैं । यह व्यंग्यकारों की साहसी मनोवृत्ति के द्योतक है । यही नहीं प्रभावशाली व्यक्तियों पर व्यंग्य करने से व्यंग्य की मार्मिकता भी बढ जाती है ।

भाव पक्ष में व्यंग्य रचनाओं ने जिस प्रकार की क्रांति मचायी उसी प्रकार उसने शिल्प जगत में भी क्रांति मचाई । निश्चय ही आधुनिक युग में युगानुरूप आधुनिक कविता का शिल्प ही बदल गया था । व्यंग्य के प्रसंग में तो शिल्प का महत्व और भी बढ गया ।

---

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : व्यंग्य विनोद विशेषांक, विष्णु प्रभाकर मार्च-67, पृ. 12

व्यंग्यकारों ने अपनी रचना केलिए साधारण बोलचाल की भाषा अपनाई । अपने चारों ओर की जगत को संदेह की दृष्टि से देखने वाले इन कविगणों के सामने प्रश्न चिह्न बढते गए । एक प्रकार का नगण्य बोध भी इन में आ गया । इस कारण इन की भाषा में अनगिनत नगण्य शब्द आ गए । डॉ॰ नामवर सिंह ने ठीक ही कहा है - "कभी-कभी शब्दों की इस नगण्यता को कृत्रिमता की हद तक भी पहुँच दिया जाता है - एक विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करने केलिए । यह प्रवृत्ति कविता और कहानी दोनों में देखी जा सकती है । इस के साथ ही प्रभामण्डित बडे शब्दों का परहेज भी साफ है । निश्चय ही सर्वत्र ऐसा नहीं हो सका है, लेकिन जहाँ ऐसा हुआ है, वहाँ नगण्य शब्दों के जरिए भी ऐसे भयावह वातावरण की सृष्टि कर दी गयी है जो बडे-बडे शब्दों के वश के बाहर है । छोटे-से-छोटे शब्द से बडे-से-बडे विस्फोटक प्रभाव उत्पन्न करके युवा लेखकों ने दिखला दिया है कि साहित्य के अन्दर भी परमाणु-युग आ गया[1] । श्रद्धा का तिकडम से नेता, जय है भिक्षुक जय है दाता, पिचक गया है पूरा देश, जैसे शब्द प्रयोग करके व्यंग्यकारों ने एक ओर तीखे व्यंग्य का प्रयोग किया है तो दूसरी ओर "तिकडम-जय है पिचक जैसे शब्दों का प्रयोग करके सचमुच शब्द प्रयोग में भी क्रांति कर दी है । "घासलेट" "जरायमपेशा" जैसे नए शब्दों का प्रयोग भी इन व्यंग्य कवियों द्वारा हुआ है । ऐसा करके व्यंग्यकार बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने सचमुच समालोचकों के अनर्गल एवं मूर्खतापूर्ण शब्द प्रयोग पर मार्मिक व्यंग्य किया है। व्यंग्यकारों ने संस्कृत के तत्सम-तद्भव, ग्राम्य, उर्दू-फारसी तथा कहीं कहीं अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भाषा गत तथा अभिव्यक्तिगत अनिवार्यता केलिए किया है । कहीं कहीं शब्दों का भिन्नार्थ में प्रयोग भी इन कवियों ने किया है । ऐसी भाव भंगिमा और कलाबाजी के साथ ये "उत्तम" शब्द का प्रयोग करते हैं कि अन्ततः उस का अर्थ "अधम" निकलता है । दर असल इन व्यंग्यकारों ने शब्द एवं भाषा की विस्फोटक शक्ति का प्रयोग स्वीकार किया है ।

---

1. आलोचना : जनवरी - मार्च 1968, पृ॰21

कतिपय व्यंग्यकार भाषा, छंद आदि के बंधन को अस्वीकार करने वाले हुए हैं। शायद अपनी व्यंग्याभिव्यक्ति को मुख्य स्थान देने के कारण होगा, इन की दृष्टि में छंद की महत्ता गिर गयी है। बच्चन, नागार्जुन, नीरज जैसे कवियों ने अपने व्यंग्य गीतों में लोकधुनों का प्रयोग किया है। ऐसा करके आपने कविता के शिल्प को नई गठन दी है।

अपनी व्यंग्याभिव्यक्ति केलिए कतिपय कवियों ने सीधा-सादा मार्ग अपनाया तो कभी-कभी व्यंग्यकारों ने व्याप्रस्तुति का सहारा भी लिया है। नई कविता में प्रतीकों और बिंबों की जो प्रचुरता है वह व्यंग्य रचनाओं में नहीं के बराबर है। शायद व्यंग्याभिव्यक्ति केलिए प्रतीक एवं बिंब उचित माध्यम नहीं रहते। डा॰ नामवर सिंह की राय में "आज की कविता अपनी प्रकृति में अब-तब की बिम्ब प्रधान कविता से सर्वथा भिन्न है अथवा उसका झुकाव बिम्ब-भिन्न है। कवियों का संभवतः कुछ ऐसा विश्वास हो चला है कि बिम्ब सीधे सत्य कथन केलिए बाधक है"। अपने व्यंग्य की सफल अभिव्यक्ति केलिए व्यंग्यकारों ने सपाट बयानी का मार्ग चुना। इस प्रकार व्यंग्यकारों ने सभी अनाचारों एवं विसंगतियों पर खुल्लम खुल्ला प्रहार किया है। सपाट बयानी को मात्र फूहड वक्तव्य न बनाने की कोशिश भी व्यंग्यकारों ने की है। उसे सरस बनाने केलिए व्यंग्यकारों ने कभी एकालाप शैली अपनाई है तथा कभी कभी संवाद शैली अपनाई है। "गीतफरोश" की एकालाप शैली तथा "अंधायुग" की संवाद शैली व्यंग्य को निखारने में सफल निकली है। फन्टसी {परिकल्पना} का प्रयोग भी व्यंग्यकारों ने यत्र तत्र किया है। यह भी आधुनिक व्यंग्य रचनाओं की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस में कवि किसी ऐसे चरित्र की कल्पना करता है, जो उसके कथ्य के अनुकूल होता है और फिर उसके माध्यम से स्थितियों को प्रकट करता है। समय देवता {रामदरश मिश्र} मोची राम {धूमिल} लुकमान अलि {सौमित्र मोहन} जैसी कवितायें फन्टसी या परिकल्पना के प्रस्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करने वाली कवितायें हैं। सत्याभिव्यक्ति की अभिलाषा ने शिल्प के क्षेत्र में क्रांति मचाई, छंदों का रूप बदल

दिया, अलंकारों को अप्रधान बनाया तथा भाषा को सर्वथा साधारण बनाया । इसी तरह "मिथक" के द्वारा भी कई कवियों ने व्यंग्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो व्यंग्य को मार्मिक तथा आकर्षक बनाता है ।

इसलिए कि समाज सुधार एवं क्रांतिकारी परिवर्तन केलिए व्यंग्य एक सफल माध्यम है, व्यंग्यकार को सदैव सजग रहना चाहिए । कौन कौन सी परिस्थितियां तथा परिवेश व्यंग्यास्पद हैं तथा किन किन पर व्यंग्य करना है इस की पूरी पहचान व्यंग्यकार केलिए अनिवार्य है । क्रोध की सीमा तक पहुंचने वाली तीखी आलोचनात्मक व्यंग्य शैली से अधिक शिष्ट सभ्य संवेदनाशील व्यंग्य के प्रयोग की ओर व्यंग्यकारों को उन्मुख रहना चाहिए । व्यक्ति, समाज, देश तथा उसके द्वारा लोकमंगल ही व्यंग्यकारों का लक्ष्य रहना चाहिए ।

****

ग्रंथ - सूची

ंचल	पद्मसिंहशर्मा "कमलेश"
नामिका	निराला, लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं·2015
नुराग रत्न	नाथूराम शंकर
परा	निराला, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
रस्तू,का काव्यशास्त्र - अनु·डॉ·नगेन्द्र	
री ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय
ांगन के पार द्वार	अज्ञेय
ांधी के पांव और घुंघरू	मधुर शास्त्री
ाज का हिन्दी साहित्य	प्रकाशचन्द्र गुप्त
ात्मकथा	डॉ· राजेन्द्र प्रसाद
ाधुनिक कवि	रामकुमार वर्मा
•	सुमित्रानंदन पंत
•	हरिवंशराय बच्चन
•	विश्वंभर मानव
ाधुनिक कविता का मूल्यांकन	डॉ· मदान
ाधुनिक काव्यधारा	डॉ·केसरीनारायण शुक्ल
ाधुनिक साहित्य	श्रीकृष्णलाल
•	नंददुलारे वाजपेयी
ाधुनिक साहित्य और साहित्यकार-डॉ· गणपतिचन्द्र गुप्त	
ाधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	नामवरसिंह
ाधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ· नगेन्द्र	
ाधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य	प्रेमनारायण टंडन
•	बरसानेलाल चतुर्वेदी
ाधुनिक हिन्दी साहित्य	डा· लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
ाधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास-डॉ· श्रीकृष्णलाल	
ाधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि-डॉ· भोलानाथ	

उदवशतक	रामकुमार वर्मा
कवि निराला	डॉ० रामरतन भटनागर
कवि निराला	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, वाराणसी वितान प्रकाशन
कवितावली- तुलसीदास	सं० श्रीकान्तशरण
कबीर	डॉ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
कबीर	सावित्री शुक्ल
कबीर एक विवेचन	डॉ० सरनामसिंह शर्मा
कबीर एक विश्लेषण	डॉ० शिवँध्यानसिंह चौहान
कबीर ग्रंथावली (सटीक)	प्रो० पुष्पपालसिंह
कबीर वचनावली	अयोध्यासिंह उपाध्याय
काका की कचहरी	काकाहाथरसी
काका के करतूत	काका हाथरसी
कामायनी	जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
काव्यचर्चा	लालताप्रसाद शुक्ल
काव्यचिंतन	डॉ० नगेन्द्र
काव्य दर्पण	रामदहिन मिश्र
कुकुरमुत्ता	निराला
कुरुक्षेत्र	रामधारीसिंह दिनकर
क्रांतिकारी कवि निराला	बच्चन सिंह
गीताफरोश	भवानीप्रसाद मिश्र
गांधी और मार्क्सवाद	श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
गुंजन	पंत, भारती भण्डार, प्रयाग
गुप्तजी की काव्य कला	डॉ० सत्येन्द्र
ग्रामवधू	सुमित्रानंदन पंत, भण्डार, प्रयाग
ग्राम्या	सुमित्रानंदन पंत, भारती भण्डार, प्रयाग
गीतिका	निराला, भारती भण्डार, इलाहाबाद

घनानंद चयनिका	सं० कृष्णचन्द्रवर्मा
चिड़ियाघर	हरिशंकरशर्मा
चिन्तामणि भाग-1 खण्ड 2	रामचन्द्रशुक्ल
चित्रा	नागार्जुन
छायावाद के प्रतिनिधि-कवि	डॉ० विजयपाल सिंह
छायावादी काव्यदर्शन	जे०रामचन्द्रन नायर
छायावाद	उदयभानुसिंह - सामयिक प्रकाशन, दिल्ली
छेड़छाड़	बनारसीदास चतुर्वेदी
जयशंकर प्रसाद	नंददुलारे वाजपेयी
जूझते हुए	सुरेन्द्र तिवारी
जो नितांत मेरी है	बालस्वरूप राही
तर्जे मजाह	गुलाह अहमद फुरकते
तारसप्तक	अज्ञेय
तुलसी ग्रंथावली (पहला खण्ड)	माताप्रसाद गुप्त
तुलसी रसायन	डॉ० भगीरथ मिश्र
दीपशिखा	महादेवीवर्मा
दूसरा सप्तक	सं० अज्ञेय
द्विवेदीयुग का हिन्दी काव्य	रामसकलराय शर्मा
नई कविता	सं०डॉ० वासुदेवनन्दन प्रसाद
नई कविता के प्रतिमान	लक्ष्मीकांत वर्मा
नई कविता स्वरूप और समस्याएं	डॉ० जगदीश गुप्त
नई कविता नए कवि	विश्वंभर मानव
नए पत्ते	निराला
नए प्रतिमान पुराने निष्कर्ष	लक्ष्मी कान्त वर्मा
नकेन के प्रपद्य	नकेन
नया साहित्य : नये प्रश्न	नंददुलारे वाजपेयी
निराला	डॉ० रामविलास शर्मा - शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।

निराला : जीवन और साहित्य	सं॰मधुकर गंगाधर
नीम के पत्ते	दिनकर
पंचवटी	मैथिलीशरण गुप्त
पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत	शान्तिस्वरूप गुप्त
पूर्वा	अज्ञेय
पूर्वापर	उदयशंकर भट्ट
प्रगति और परम्परा	डा॰ रामविलास शर्मा
प्रयोगवाद और अज्ञेय	शैलसिन्हा
प्रयोगवादी काव्यधारा	डा॰ रमाशंकर तिवारी
प्रलय सृजन	शिवमंगल सिंह "सुमन"
प्रसाद जी की कला	डा॰ गुलाब राय
प्रियप्रवास	हरिऔध
फूल नहीं रंग बोल रहे हैं	केदारनाथ अग्रवाल
बच्चन : कवित्व और कृतित्व	जीवन प्रकाश जोशी
बरगद की बेटी	उपेन्द्रनाथ अश्क
बंगाल का काल	बच्चन
बावरा अहेरी	अज्ञेय
बालकृष्णशर्मा नवीन:व्यक्ति एवं काव्य - लक्ष्मीनारायण दूबे	
बिहारी बोधिनी	लाला भगवानदीन
बेढब की बहक	बेढब बनारसी
बिहारी मीमांसा	रामसागर त्रिपाठी
बिहारी सतसई	देवेन्द्रशर्मा "इन्द्र"
भगवती चरण वर्मा	अमृतलाल नागर
भडौवा - संग्रह	नकछेदी तिवारी
भारत - भारती	मैथिलीशरण गुप्त
भारतीय अर्थशास्त्र का विवेचन	ओमप्रकाश केला
भारतेंदु - ग्रंथावली ××। तथा 2 भाग	
महन्तरामायण	ईश्वरीप्रसाद शर्मा

भारतीय परंपरा — प्रो॰ हुमयूं कबीर

मध्यदेश : ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन - डॉ॰ धीरेन्द्रवर्मा

महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डॉ॰ उदयभानु सिंह

यामा — महादेवी वर्मा

युग और साहित्य — शांतिप्रिय द्विवेदी

युग कवि निराला — गिरजाशरण अग्रवाल

युग प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद — रायकृष्णदास

युगाचरण — माखनलाल चतुर्वेदी

युग ांत — पंत

युगधारा — नागार्जुन

रंगों से मोह — भगवती चरण वर्मा

रश्मिरथी — रामधारिसिंह दिनकर

रससिद्धांत — डॉ॰ नगेन्द्र

रसिकप्रिया — प्रियाप्रवासतिलक - टीकाकार - विश्वनाथ मिश्र

रामधारी सिंह दिनकर — सं॰ मन्मथ नाथ गुप्त

रामचरित मानस — गोस्वामी तुलसीदास

राम भरोसा सब जाय — बालमुकुन्दगुप्त

रिमझिम — डॉ॰ रामकुमार वर्मा

विस्मृति के फल — भगवतीचरणवर्मा

वीभत्स रस और हिन्दी साहित्य - डॉ कृष्णदेवझारी

संत कबीर — डॉ॰ रामकुमारवर्मा

संस्कृति के चार अध्याय — रामधारी सिंह दिनकर

सत्यार्थ प्रकाश — स्वामी दयानन्द

सदाचार का ताबीज [कैफियत] — हरिशंकर परसाई

समकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य विद्रूप - डॉ॰ हरिनारायण विद्रूप

साकेत — मैथिलीशरण गुप्त

साकेत : एक अध्ययन — डॉ॰ नगेन्द्र

सात गीत वर्ष — धर्मवीर भारती

साधारणीकरण, सम्प्रेषण और प्रतिबद्धता - डॉ॰ तारकानाथ बाली
सामधेनी दिनकर
साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य डॉ॰ रघुवंश
साहित्य की मान्यताएं भगवती चरण वर्मा
सीढ़ियों पर धूप में रघुवीर सहाय
सुमित्रानंदन पंत बच्चन - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
सूर पंचरत्न सं॰ लाला भगवानदीन
सूर सागर {दो खंड} सं॰ नन्द दुलारे वाजपेयी
हम विषपायी जनम के बालकृष्ण शर्मा "नवीन"
हास परिहास सं॰ बेढव बनारसी, सुधाकर पाण्डेय
हास्य कवि सम्मेलन सं॰ गोपालप्रसाद व्यास
हास्य के सिद्धान्त जगदीश पाण्डे
हिन्दी कविता में युगांतर डॉ॰ सुधीन्द्र
हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचय - उपेन्द्रनाथ अश्क
हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां डॉ॰ रघुवंश
हिन्दी की प्रगतिशील कविता डॉ॰ रणजीत
हिन्दी की लोकप्रिय हास्य कविताएं - श्री॰ राकेश शा पुष्प
हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य डॉ॰ गोविन्दरामशर्मा
हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
हिन्दी साहित्य की भूमिका डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य कोश, भाग1, 2 डॉ॰ धीरेन्द्रवर्मा
हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां - डॉ॰ शिवकुमार शर्मा
हिन्दी साहित्य में हास्य रस डॉ॰ बरसानेलाल
हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - प्रेमनारायण टंडन
हिन्दुस्तान की कहानी जवाहरलाल नेहरू
हिन्दुस्तान की समस्याएं "
हिम किरीटिनी माखनलाल चतुर्वेदी
हिमतरंगिनी "

पत्र - पत्रिकाएं

आलोचना

चकल्लस

धर्मयुग

नागरी प्रचारिणी पत्रिका

रसवन्ती

वीणा

समीक्षा

सरस्वती

साप्ताहिक हिन्दुस्तान

हंसोड मासिक

हिन्दी प्रदीप

संस्कृत ग्रंथ

अग्निपुराण	
काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट
काव्यानुशासन	आचार्य हेमचन्द्र
काव्यालंकार	भामह
काव्यालंकार	रुद्रट
काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	वामन
तैत्तरीय उपनिषद	
नाट्यशास्त्रम्	चौखंभा संस्कृत सीरीज, 1972
महाभारत	
रसगंगाधर	जगन्नाथ पण्डित
वाल्मीकि रामायण	
श्रीमद्भगवद्गीता	
श्रीमद्भागवतम्	

ENGLISH BOOKS

An essay on Comedy — Meridith

An introduction to dramatic theory - A. Nichol

Autobiography — Jawaharlal Nehru

Economic History of India — Ramesh Chandra Datt

Encyclopaedia Brittanica

English Satire — James Sutherland

Laughter — Henry bergson

Notes on English Verses Satire — Satire Humbert Wolfe

Oxford English dictionary

The corresponds on Alexander Pope - Edt. by. George Shebbern

The discovery of India — Nehru

The diea of comedy — Meridith

The political philosophy of Mahatma Gandhi - Gopinath Dhavan

The world and the west — Arnold Tobubee

Websters third new international - dictionary

— G 2019 —

UNIVERSITY LIBRARY COCHIN